Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

111315

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1960

Naya Jiwan

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

…या जीवन

6-11-59

RT-0971

GURUKULA KANGRI LIBRARY HARDWAR

अक्तूबर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कागज़ के एक छोटे पुर्ज़े पर
महात्मा गांधी ने आश्रम के
एक रोगी को रात में दो
बजे एक हिदायत लिखी थी।
अब यह पुर्ज़ा एक कीमती संस्मरण है!

विदेश के एक अज्ञात कवि
द्वारा लिखा एक पुर्ज़ा मिला
उसके मरने के बरसों बाद
वह उसी से अमर हो गया;
उस पर उसकी एक कविता लिखी थी।

कागज के बिना न
शास्त्र मिलते न साहित्य।
कागज हमारी सभ्यता की
एक पवित्र धरोहर है!

श्रेष्ठ स्वदेशी कागज़ों के निर्माता

स्टार पेपर मिल्स लि०

सहारनपुर : उत्तर-प्रदेश

मैनेजिंग एजेन्ट्स—बाजोरिया एण्ड कम्पनी, कलकत्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

111315
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
111315

सहयोग का चमत्कार

सहयोग, मेहनत और लगन हो तो कुछ भी असम्भव नहीं। उत्तर प्रदेश के सेहानी गांव में चार औरतों ने कुआं खोद कर कमाल कर दिखाया है।

इस गांव में पानी की बड़ी दिक्कत थी। औरतों को मीलों दूर से पानी लाना पड़ता था। अतः एक दिन उन्होंने मिल कर घर के पास कुआं खोदने की योजना बनाई। पुरुषों ने इसे अनहोनी बात समझ कर टाल दिया पर चार स्त्रियां खुदाई के काम में कमर कस कर जुट गईं। ६० फुट की गहराई पर जब पानी चमक आया तो स्त्रियों की बाछें खिल गईं और पुरुष दांतों तले अंगुली दबाने लगे।

सेहानी की स्त्रियों की बहादुरी की कहानी से आस-पास के सभी गांवों में उत्साह की लहर दौड़ गई।

मिल-जुल कर काम करके अपने लिए सुख-सुविधाएं बढ़ाई जा सकती हैं और समाज कल्याण के कार्य किए जा सकते हैं। यही नहीं इससे राष्ट्र की प्रगति में भी मदद मिलती है।

योजना की सिद्धि आपकी समृद्धि

DA—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्मियों की समाप्ति के साथ ही अध्ययन-अध्यापन का आरम्भ होता है

आपको अपने पसन्द की पुस्तकें चुनने में सुविधा हो इसके लिए नीचे हमारे हाल के प्रकाशित कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों की तालिका प्रस्तुत है।

हिन्दी प्रकाशन

पुस्तक के नाम	लेखक के नाम	पृष्ठ	मूल्य
संघर्षकालीन नेताओं की जीवनियाँ	स्वतन्त्रता संग्राम इतिहास समिति द्वारा संकलित	३००	१.००
वाजिदअली शाह और अवध का पतन	श्री परिपूर्णानन्द वर्मा	३१४	४.५०
स्वतन्त्र भारत की एक झलक	श्री बाबूराम मिश्र	२६३	४.५०
गदर के फूल	श्री अमृतलाल नागर	२९२	४.५०
चन्द्रसखी के लोकगीत और भजन	स० श्री प्रभूदयाल मित्तल	११२	२.००
उत्तर प्रदेश के लोकगीत	श्री विद्यानिवास	२६६	२.५०
समाजवाद	डा० सम्पूर्णानन्द	४२	०.७५
भारतीय बुद्धिजीवी	डा० सम्पूर्णानन्द	३२	०.७५
अन्तरिक्ष यात्रा	डा० सम्पूर्णानन्द		०.७५
दो वैज्ञानिक कहानियां	डा० नवल बिहारी मिश्र, श्री विजयकुमार मिश्र	४४	०.५०
उत्तर प्रदेश के लोक नृत्य	संकलित	२६	१.००
उर्दू हिन्दी शब्दकोष	श्री मुहम्मद मुस्तफाखां मद्दाह	८००	१६.००
भारत का भाषा सर्वेक्षण	सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन, अनु० डा. उदयनारायण तिवारी	४००	७.००
भारत का संगीत सिद्धान्त	श्री कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति		६.५०

अंगरेजी प्रकाशन

पुस्तक के नाम	लेखक के नाम	पृष्ठ	मूल्य
फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश भाग १, २ और ३ अंगरेजी	डा० एस० ए० ए० रिजवी, डा० मोतीलाल भार्गव	५१४	१०.००
लीव्ज फ्राम ए गवर्नर्स डायरी	श्री वी० वी० गिरि, राज्यपाल, उत्तर प्रदेश	२४४	४.००
म्युजिशियन्स आई हैव मेट	श्री एस० के० चौबे	११२	३.००
थाट्स आन एजूकेशन एंड सम एलाइड प्रोब्लेम्स	डा० सम्पूर्णानन्द	९६	३.००
इन्डियन इन्टेलेक्चुअल्स	डा० सम्पूर्णानन्द		०.७५
साइन्टिफिक फाउन्डेशन आफ अस्ट्रालाजी	डा० सम्पूर्णानन्द		०.२५
स्पेस ट्रैवल	डा० सम्पूर्णानन्द		०.७५

उर्दू प्रकाशन

पुस्तक के नाम	लेखक के नाम	पृष्ठ	मूल्य
कौमी डायरी के सौ साल	श्री अलीजवाद जैदी	४३२	५.००

उपयोगिता, मुद्रण एवं मूल्य की दृष्टि से इन्हें आप महत्वपूर्ण पायेंगे।

प्राप्ति का स्थान—१. सूचना विभाग, रायल होटल बिल्डिंग, लखनऊ।

२. सूचना साहित्य, फरीदी बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महापुरुषों के संस्मरण
उन पद् चिह्नों के समान हैं
जिन पर चलकर
सामान्य लोग
जीवन और उसके उद्देश्यों का संधान
कर सकते हैं
सस्ता साहित्य मंडल
द्वारा प्रकाशित
यह जीवनी तथा संस्मरण - साहित्य
सब के लिए
सर्वोत्तम मार्गदर्शक है :

आत्मकथाएँ :

१ आत्मकथा (महात्मा गांधी)
संपूर्ण (अजिल्द) ४ ००
,, संक्षिप्त (अजिल्द) १ ००
२ मेरी कहानी (जवाहरलाल नेहरू)
संपूर्ण ८ ००
,, ,, ,, संक्षिप्त २ ५०
३ आत्मकथा (डा. राजेन्द्रप्रसाद) ८ ००

जीवनियां :

१ गांधी की कहानी (लुई फिशर) ४ ००
२ एक आदर्श महिला
(विनायक तिवारी) १ ००
३ लोकमान्य तिलक
(पां. ग. देशपांडे) २ ५०
४ श्रेयार्थी जमनालाल
(हरिभाऊ उपाध्याय) संपूर्ण ६ ५०
,, ,, ,, संक्षिप्त २ ००

संस्मरण-साहित्य :

१ मेरे समकालीन (महात्मा गांधी) ५ ००
२ दक्षिण अफरीका का सत्याग्रह
(महात्मा गांधी) ३ ५०
३ देशसेवकों के संस्मरण (म. गांधी) १ २५
४ अमिट रेखाएँ (सत्यवती मल्लिक) ३ ००
५ एक क्रांतिकारी के संस्मरण
(बनारसीदास चतुर्वेदी) ० ७५
६ मानवता के झरने
(ग. वा. मावलंकर) १ ५०
७ मेरे संस्मरण ,, ,, २ ००
८ मील के पत्थर (रामवृक्ष बेनीपुरी) २ ००
९ मेरी जीवन यात्रा
(जानकीदेवी बजाज) २ ००
१० मैं भूल नहीं सकता
(कैलाशनाथ काटजू) २ ५०
११ विनोबा के साथ सात दिन
(श्रीमन्नारायण) ० ५०
१२ साधना के पथ पर
(हरिभाऊ उपाध्याय) २ ५०
१३ बा, बापू और भाई
(देवदास गांधी) ० ५०
१४ बापू की कारावास कहानी
(सुशीला नैयर) १० ००
१५ बापू के आश्रम में
(हरिभाऊ उपाध्याय) १ ००

इन तथा अन्य पुस्तकों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिये और सत्साहित्य के प्रसार में अपना हाथ बटाने के लिये हमें लिखिये

सस्ता साहित्य मण्डल, (सत्साहित्य के प्रणेता, प्रकाशक और प्रसारक)
कनाट सरकस, नई दिल्ली—१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजन, भवन, भेषभूषा

सभ्यता के तीन बड़े स्तम्भ हैं

भोजन सात्विक, भवन स्वच्छ, भेष स्वदेशी

नागरिकता के तीन बड़े चिन्ह हैं

तीनों को सदा ध्यान में रखिए !

★

खड्डियों तथा दूसरे उपयोग में आने वाला
१० नं० से ४० नं० तक का बढ़िया सूत

एवं

भारत भर में प्रसिद्ध, कोरा-धुला-लट्ठा, धोती
चादर, मलमल व रंगीन कपड़ों के

निर्माता:—

लार्ड कृष्णा टैक्सटाइल मिल्स

सहारनपुर :: उत्तरप्रदेश

संचालक
सेठ आनन्द कुमार
फोन—२१६, ३६४, १६०

संचालक
सेठ सुशील कुमार
तार—'टैक्सटाइल्स'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेश आत्मनिर्भरता की दिशा में

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद उत्तर प्रदेश में खाद्योत्पादन बढ़ाने के लिए किये जाने वाले प्रयासों को बराबर प्राथमिकता दी गई है। सन् १९५१ में जब प्रथम पंचवर्षीय आयोजन का प्रारम्भ हुआ, प्रदेश में खाद्यान्नों का वार्षिक उत्पादन लगभग १०७ लाख टन था। यह यहाँ के निवासियों के लिए पर्याप्त नहीं था। प्रथम आयोजन की समाप्ति तक प्रति वर्ष लगभग १० लाख टन खाद्यान्न और पैदा करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्नत किस्म के बीज बाँटे गए और उन्नत किस्म की खाद का प्रबन्ध किया गया। सन् १९५०-५१ की तुलना में सन् १९५५-५६ में लगभग ७ लाख मन उन्नत बीज अधिक बांटे गए। इसी प्रकार अच्छी किस्म की खाद का महत्व समझते हुए लगभग २ लाख २५ हजार टन विभिन्न प्रकार के उर्वरक का भी वितरण किया गया। नगर खाद उत्पादन योजना के अन्तर्गत जो प्रयत्न किए गए उनके फलस्वरूप इस तरह की खाद का उत्पादन ३ लाख ३८ हजार टन से बढ़ कर ४ लाख ४१ हजार टन हो गया। अतः यह स्वाभाविक था कि खाद्योत्पादन बढ़ाने का निर्धारित सम लक्ष्य आयोजनावधि समाप्त होने तक पूरा कर लिया गया।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना के अन्तर्गत भी इस तरह के प्रयत्न किए गए। सन् १९५६-५७ में कुल १ करोड़ २० लाख टन खाद्यान्न का उत्पादन करने का लक्ष्य था। इसकी तुलना में वास्तविक उत्पादन १२१·०८ लाख टन था। सन् १९५७-५८ और ५८-५९ में उत्पादन १०७·६८ लाख टन एवं १३१·७२ लाख टन था। इन दोनों वर्षों में लक्ष्य क्रमशः १२५·२५ लाख और १३१·१० लाख टन था। इन सफलताओं के मूल में भी उन्नत किस्म के बीज और खाद का समुचित वितरण रहा। सन् १९५६-५७ में रबी की फसलों के लिए २३२ लाख मन उन्नत बीजों का वितरण हुआ और सन् १९५७-५८ में २९६ बीजक प्रसार केन्द्र और ३२५ बीज गोदाम खोले गए। रबी और खरीफ अभियानों से भी खाद्योत्पादन बढ़ाने में सहायता मिली. किन्तु इन सफलताओं का अर्थ यह नहीं कि हमारी सभी आवश्यकताएँ पूरी हो गई हैं। सन् १९६०-६१ तक हमें वार्षिक खाद्योत्पादन लगभग १ करोड़ ४० लाख टन तक पहुँचाना है। आशा है समय रहते हम इस लक्ष्य की पूर्ति भी कर सकेंगे।

सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामू और श्यामू दो सगे भाई,
रामू स्वभाव का कड़वा,
श्यामू शान्त सज्जन,
दोनों का परिवार समृद्ध !

एक दिन रामू ने क्या कुछ कहा,
कि श्यामू भी बेकाबू होगया,
दोनों में मुकदमेबाजी छिड़ी,
और दोनों बरबाद हो गए !

स्वभाव का मिठास जीवन का वरदान है!
सदा मीठे रहिए !

★

श्रेष्ठ चीनी के निर्माता

गंगा शूगर कारपोरेशन लिमिटेड

देवबन्द :: उत्तरप्रदेश

जनरल मैनेजर—बी० सी० कोहली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़रूरी जानकारी

- प्रकाशन का समय—महीने की पहली तारीख है, पर १९ तारीख तक भी न पहुँचे, तो समझिए कि आपका अङ्क कोई दूसरे सज्जन पढ़ रहे हैं और कार्यालय को कार्ड लिखिये।
- वर्ष भर का मूल्य पाँच रुपये और साधारण प्रति का पचास नये पैसे है।
- लेखकों से प्रार्थना है कि उत्तर या रचना की वापसी के लिए टिकट न भेजें और अपनी प्रत्येक रचना पर अन्त में अपना पूरा नाम-पता अवश्य लिखें। यदि रचना अनुदित है, किसी पत्र में प्रकाशित हो चुकी है या प्रकाशनार्थ भेजी गई है. तो रचना भेजते समय ही सूचित करने की कृपा करें।
- एक मास के भीतर ही बुक-पोस्ट से उनकी रचना या स्वीकृति का पत्र उन्हें मिल जाएगा और छपने पर अङ्क निश्चित रूप से सेवा में भेजा जाएगा।
- 'नयाजीवन' में वे ही रचनाएँ स्थान पाती हैं, जो जीवन को ऊँचा उठाएँ, पर डिक्टेटर की तरह नहीं, मित्र की तरह— मनोरञ्जक, मार्ग-दर्शक और प्रेरणापूर्ण!
- 'नयाजीवन' धन-साधन पर नहीं, साधना पर जीवित है, इसलिए लेखकों को वह प्यार-मान दे सकता है, धन नहीं।
- ग्राहकों से पत्र-व्यवहार में ग्राहक-संख्या लिखने की आवश्यक प्रार्थना है।
- 'नयाजीवन' में उन चीजों के ही विज्ञापन छपते हैं, जिनसे देश की समृद्धि, स्वास्थ्य, सुरुचि और पूर्णता बढ़े।
- तार का पता विकास प्रेस और फोन नं० १५३ है।

पत्र-व्यवहार का पता है
विकास लिमिटेड, सहारनपुर, उ. प्र.

आरम्भ काल - १९४०

नयाजीवन

विचारों का विश्वविद्यालय
अनेक राज्य-सरकारों द्वारा स्वीकृत

अक्तूबर १९५९

प्रधान संपादक
कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

प्रबन्ध संपादक—**अखिलेश**

सह-संपादिका—**कविता वाशिष्ठ**

हमारा काम यह नहीं है
कि इस विशाल देश में बसे चन्द दिमाग़ी ऐय्याशों का फालतू समय चैन से काटने के लिए मनोरंजक साहित्य नाम का मैख़ाना हर समय खुला रखें!
हमारा काम तो यह है
कि इस विशाल देश के कोने-कोने में फैले जन-साधारण के मन में विश्रृङ्खलित वर्तमान के प्रति विद्रोह और भव्य-भविष्यत् के निर्माण की भूख जगाएँ!

प्रेस व्यवस्थापक—**रामकृष्ण शर्मा**

बंबई प्रतिनिधि—श्री टी. एन. वर्मा, थर्ड फ्लोर, ३३, खवासजी पटेल स्ट्रीट, फोर्ट, बम्बई
दिल्ली कार्यालय—१८, दीवान हाल, दिल्ली

प्रकाशक

विकास लिमिटेड
सहारनपुर • उत्तर प्रदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुप्रभात श्री ब्रिजलाल बियाणी, अकोला (बरार) ३

मरघट को जाकर मेरा सन्देश सुना दो श्री बुद्धिसेन शर्मा ३०/८३, महेश्वरी मुहाल, कानपुर ४

विचार और सम्मति सम्पादकीय ५

वे तुरन्त पहचान लेते थे ! कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ६

व्यथा श्री वेदप्रकाश 'वटुक', ३७ सिम्फनी रोड, बोस्टन १५, मैसाच्यु सैत्स, यू० ऐस० ए० १०

जब तुम योग्य हो ! श्री स्वामी रामतीर्थ १४

जीवित शहीद वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली ठा० विश्वनारायणसिंह, ब्रेल एडीटर सैण्ट्रल ब्रेल प्रेस, देहरादून १५

आवाज़ श्री भोलेश भावुक, राष्ट्रीय विद्यालय गुरुद्वारा मंजी साहब, करनाल १६

मेरा ईश्वर : एक आत्मनिवेदन श्री मुद्राराक्षस, द्वारा श्री शिवचरणलाल, दुरीर जय गंज, लखनऊ २१

अनुरोध सुश्री सुशीलाकुमारी मिश्र, ४१ छीपा बाखल इन्दौर २५

बातों-बातों में स्तम्भ २६

एक सौन्दर्य, दो पहलू कुमारी बख्शी २/३ पटेल नगर, सहारनपुर २७

बहारों के किनारों पर कई पतझार होते हैं ! श्री सुनील शर्मा आकाशवाणी, इलाहाबाद २८

ज़िन्दगी का कुलाबा श्री ब्रजकिशोर 'नारायण', सम्पादक 'जन जीवन' ७ एम. एल. एज़ फ्लैट, पटना-१ २९

सफलता के अनुभव श्री कौशलप्रसाद जैन, रजतपट कार्यालय महू कैण्ट, म. प्र. ३२

पति की उम्र है एक सौ पचास साल पत्नि की एक सौ इक्कीस, दोनों स्वस्थ हैं, क्यों ? श्री दीनदयाल मल्होत्रा ('हिन्दुस्तान' नई दिल्ली से साभार) ३३

न्याय के देवता से श्री डी. एच. लॉरेन्स, अनुवाद श्री दिनकर ३५

कुछ पत्ते : कुछ फूल चयन—श्री ब्रह्मदेव, पो० बाक्स नं० ६६, देहरादून ३६

आप न चोर हैं न लुटेरे, पर चोरी भी करते हैं, लूट भी ? कैसे ? क्या ? कब ? कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ३७

नई पीढ़ी के गीतकार—श्री रुद्रदत्त शुक्ल 'शेखर' प्राध्यापक श्री देवेन्द्र 'दीपक', लक्ष्मी द्वार, सहारनपुर ४१

क्या चाहता हूँ ? श्री चन्द्रभानु 'अकिंचन' नानकचन्द डिंगरी कालेज, मेरठ ४३

नए लेखकों की पाठशाला स्तम्भ ४४

अपने पढ़ने के कमरे में स्तम्भ ४५

पुस्तक-परिचय श्री देवेन्द्र 'दीपक' लक्ष्मी द्वार, सहारनपुर ४६

अतापता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

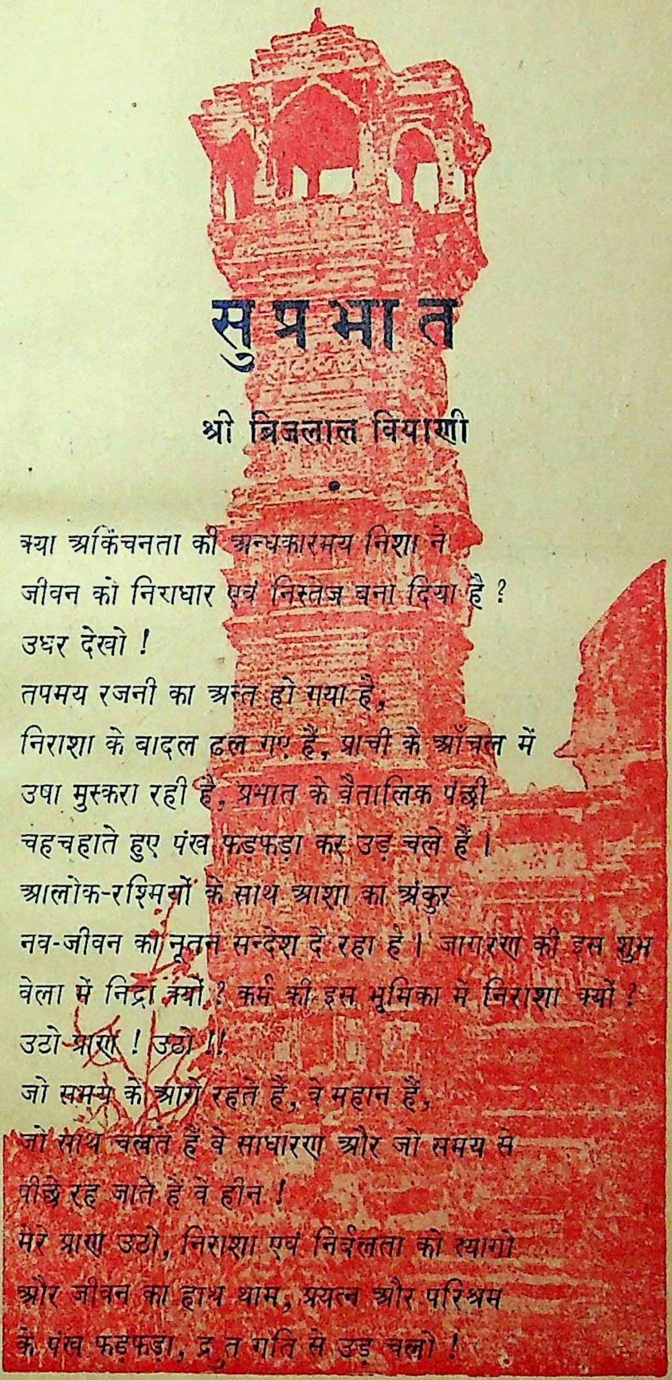

सुप्रभात

श्री बिजलाल बियाणी

क्या अकिंचनता की अन्धकारमय निशा ने
जीवन को निराधार एवं निस्तेज बना दिया है ?
उधर देखो !
तपमय रजनी का अन्त हो गया है,
निराशा के बादल ढल गए हैं, प्राची के आँचल में
उषा मुस्करा रही है, प्रभात के वैतालिक पंछी
चहचहाते हुए पंख फड़फड़ा कर उड़ चले हैं।
आलोक-रश्मियों के साथ आशा का अंकुर
नव-जीवन का नूतन सन्देश दे रहा है। जागरण की इस शुभ
वेला में निद्रा क्यों ? कर्म की इस भूमिका में निराशा क्यों ?
उठो प्राण ! उठो !!
जो समय के आगे रहते हैं, वे महान हैं,
जो साथ चलते हैं वे साधारण और जो समय से
पीछे रह जाते हैं वे हीन !
मेरे प्राण उठो, निराशा एवं निर्बलता को त्यागो
और जीवन का हाथ थाम, प्रयत्न और परिश्रम
के पंख फड़फड़ा, द्रुत गति से उड़ चलो !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरघट को जाकर मेरा संदेश सुना दो !

श्री बुद्धिसेन शर्मा

●

जलते आँसू पोंछो मेरी ओर निहारो,
अंगारों पर बादल क्या, सावन धर दूँगा।

आँखें खोलो, देखो मिट्टी उबल रही है,
आज समय की करवट करवट बदल रही है,
दूर थमें कोने में पर्वत सहम रहे हैं,
नई ज़िन्दगी मृत्युवाद को निगल रही है।

मत बिल्कुल सोचो, सकुचो, सहमो, शरमाओ,
कलुषित हृदय दिखादो, मैं पावन कर दूंगा।

तुमसे मिलने में साहिल मजबूर नहीं है,
मत घबराओ मंजिल अब कुछ दूर नहीं है,
हर मुश्किल सो रही मुश्किलों की बाहों में,
और तुम्हारी हिम्मत बिल्कुल चूर नहीं है।

झुलस गये जो जलते - जलते, चलते - चलते,
उनको हरा - भरा सुन्दर मधुबन कर दूँगा।

आज मृत्यु अपने ही स्वर में झूम रही है,
आज मृत्यु अपना ही दामन चूम रही है,
आज मृत्यु अपने ही घर में कैद हो गई,
आज मृत्यु अपने ही सर पर घूम रही है।

मरघट में जाकर मेरा संदेश सुना दो।
हर शव को शिव कर, उसमें जीवन भर दूँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार और सम्मति

संकीर्ण दृष्टि

"अरे वह बहुत संकीर्ण दृष्टि का आदमी है।" यह वाक्य हम प्रायः सुनते हैं—कहते भी हैं। इसका अभिप्राय उस—अमुक व्यक्ति की निन्दा करना होता है, पर इस निन्दा का अर्थ क्या है? संकीर्ण दृष्टि क्या है? वह क्यों निन्दनीय है? इसे हम नहीं जानते—इस पर विचार भी हम में से कम ही करते हैं। हमारा काम तो किसी को संकीर्ण दृष्टि कहने से चल जाता है; क्योंकि हम समझ लेते हैं कि उस—अमुक की निन्दा हो गई। फिर भी इन प्रश्नों का महत्व तो है ही—ये ज्ञेय—विचारणीय तो बने ही रहते हैं।

जवाहरलाल नेहरू ने लोकसभा में चीन की चर्चा के समय एक वाक्य कहा जिसमें संकीर्ण दृष्टि की ऐसी स्पष्ट व्याख्या है कि पूर्ण भी, सुबोध भी—"मैं ऐसी संकीर्ण दृष्टि नहीं रखता कि मैं जो कुछ कहता हूँ वही सही है और दूसरा जो कुछ कहता है, वह सब गलत है।"

संकीर्ण का मोटा अर्थ है संकुचित, तो जिसकी आँखें संकुचित हैं, पूरी खुली हुई नहीं हैं, वह पूरी चीज कैसे देख सकता है? वह तो कुछ देखेगा, कुछ नहीं। कुछ यह कि अपनी बात का सत्य और कुछ नहीं यह कि दूसरे की बात का सत्य—मैं जो कुछ कहूँ, वह सम्पूर्ण सत्य और दूसरे जो कुछ कहें, वह सम्पूर्ण झूठ!

कथाकार जगदीशचन्द्र मिश्र ने अपनी एक लघु कथा में एक ऐतिहासिक सम्वाद दिया है—सेनापति अमरू १४ मास के युद्ध के बाद जब पराजित सिकन्दरिया में घुसा, तो दार्शनिक विद्वान जॉन फलायास ने नम्र हो, उससे कहा—"ज्ञान का भण्डार, जिसकी आवश्यकता संसार में सदा सब को होती है, पुस्तकों में सुरक्षित रहता है। सिकन्दरिया का पुस्तकालय रोमन साम्राज्य का सबसे बड़ा पुस्तकालय है। इसमें साहित्य, कला, दर्शन और राजनीति के ज्ञान का बहुत भण्डार है। आप इसकी सुरक्षा का वचन दें।"

सेनापति अमरू ने उत्तर दिया—"दुनिया में जो कुछ है, इस्लाम है—और कुछ नहीं, जो कुछ कुरान में है, यदि वही इन पुस्तकों में है, तो ये बेकार हैं और यदि जो कुछ कुरान में नहीं है, वह इन पुस्तकों में है, तो ये अहित-कर हैं, इसलिए बेकार हैं।"

संकीर्ण दृष्टि का बहुत ही मर्मस्पर्शी उदाहरण है यह, जो नेहरू के वाक्य का भाष्य करता है और हम सबसे कहता है कि हम इस दोष से बचें और अपनी दृष्टि को विस्तृत-व्यापक रखें, जो सत्य को दोनों तरफ से देख सके!

कुमारी गीता चन्दा

कुमारी गीताचन्दा ने १९५६ में कलकत्ता के मेडीकल कालेज से डाक्टरी की परीक्षा पास की और १९५७ में भारतीय वायुसेना के चिकित्सा-विभाग में सेवा आरम्भ की। १९५९ के आरम्भ में उन्होंने जब पैराशूट (हवाई छतरी) से कूदने की शिक्षा प्राप्त करने के लिए अपना नाम दिया, तो इसे हमारी फौजों के इतिहास में एक आश्चर्यजनक समाचार समझा गया; क्योंकि उनसे पहले कभी किसी महिला ने इस खतरनाक काम की शिक्षा के लिए अपना नाम नहीं दिया था।

उनका इरादा पक्का था, संकल्प सुविचारित था, उनका नाम स्वीकार कर लिया गया और आगरा के वायुसेना पैराट्रूपर्स ट्रेनिंग स्कूल में शिक्षा के लिए भेज दी गई। १७ जुलाई १९५९ को उन्होंने हवाई जहाज से अपनी पहली छलांग लगाई और वे उसमें सफल हुई। बाद में उन्होंने ६ और छलांगें नियमानुसार लगाई और इस तरह प्रमाण-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शत्रु भी, मित्र भी

पटियाला की अदालत में, समाचार है कि दो मनुष्य एक ही साइकिल पर १२ मील दूर बसे कपूरी गाँव से आते हैं। वे नम्बरवार साइकिल चलाते हैं, अदालत के अहाते में एक ही दूकान पर चाय पीते हैं और शाम को उसी साइकिल पर लौटते हैं।

क्या वे मित्र हैं और एक ही काम से अदालत आते हैं ? ना, वे वादी, प्रतिवादी हैं और उनमें एक दीवानी मुकदमा चल रहा है।

किसी ने उनसे पूछा—"आप अदालत में शत्रु और बाहर मित्र कैसे रह पाते हैं ?" उन्होंने उत्तर दिया—"हम पुराने मित्र हैं। एक मामला नहीं निमटा, तो मुकदमा लड़ रहे हैं, पर हमारे लिए जीवन के मूल्य मुकदमे से अधिक ऊँचे हैं !" आपस में लड़ते सभी हैं, पर लड़ना किसी-किसी को आता है। ये दोनों सचमुच लड़ाई की कला के पण्डित हैं।

सहारनपुर की सिगरेट फैक्टरी के गोदामों में लाखों रुपयों की सिगरटें रहती हैं। वहां यह पद्धति है कि यदि दुर्भाग्यवश आग लग जाए, तो छत में लगे नल स्वयं खुल जाते हैं और पानी बरसाकर उसे बुझा देते हैं।

• • •

पत्र प्राप्त किया। उनकी उम्र २५ साल है और वे ही भारत की पहली महिला पैराशूटर हैं।

राह पर चलना भी सफलता है, पर राह बनाना, तो गौरव ही है। फ्लाइट लैफ्टीनेंट कुमारी गीता चन्दा ने सचमुच एक नई राह बनाई है और वे बधाई की हकदार हैं। क्या ही अच्छा हो कि लिप्स्टिक और लाल दुपट्टा में उलझी भारत की लड़कियाँ और दिलीपकुमार की उभरी जुलफों और राजकपूर की आवारा पतलून की नकल में व्यस्त भारत के लड़के कुमारी गीताचन्दा के साहसपूर्ण जीवन से शिक्षा लें और अपने व्यक्तित्व के विकास में जुटें !

हाय रे मनुष्य !

आज़मगढ़ के एक जुडीशियल मैजिस्ट्रेट की घड़ी खो गई। उन्हें अपनी नौकरानी पर शक था। उन्होंने उससे पूछा, धमकाया, पीटा, पर वह चोरी से इन्कार करती रही। मैजिस्ट्रेट ने एक थानेदार को बुलाया और तब थानेदार ने भी उस नौकरानी से पूछा, उसे धमकाया और पीटा, पर उसने कहा—"मैंने घड़ी नहीं ली।"

तब मैजिस्ट्रेट साहब ने उसके दो छोटे-छोटे बच्चों को पकड़ा और उनके नाखूनों में पिन चुभा-चुभा कर तड़पाया। बच्चे चीखे, मा ने विलाप किया, तो कुछ लोग इकट्ठे हो गए, पर मजिस्ट्रेट ने उन सब को डाटा—फटकारा। इस पर किसी ने जिलाधीश को सूचना दी, तो पुलिस ने आकर नौकरानी और बच्चों को अस्पताल पहुँचाया।

इन मैजिस्ट्रेट महाशय को मुअत्तिल कर दिया गया है और समाचार है कि जांच हो रही है। आज़मगढ़ के जिलाधीश की न्यायप्रियता और दृढ़ता इस मुअत्तिली से सिद्ध है। आशा है वे दृढ़ रहेंगे, सिफारिश न सुनेंगे, झूठी दया न करेंगे और यह अपराधी दण्डित हो सकेगा। सचाई यह है कि यह आदमी जुडीशियल मैजिस्ट्रेट नहीं, कसाईघर का चौकीदार होने के लायक है।

ग्रन्थ साहब की कसम

इंगलैंड की एक अदालत में एक मुकदमा आया। मकान मालिक अंगरेज़ और किरायेदार एक हिन्दुस्तानी सिख ! झगड़ा किराये का। जब सिख महाशय से अदालत के नियमानुसार शपथ लेने को कहा गया, तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• • • लड़ाई के सम्बन्ध में भी सर्वोत्तम पद्धति यही है कि लड़ाई को पैदा होते ही सहिष्णुता के पानी से बुझा दो और उसे आगे बढ़ने-फैलने का मौका ही न दो; क्योंकि आगे बढ़ने पर कभी-कभी वह इतनी बेकाबू हो जाती है कि फिर सब कुछ फूक कर ही दम लेती है।

सहारनपुर की ही स्टार पेपर मिल के गोदामों में लाखों रुपयों की भाभड़ रहती है। वहाँ यह पद्धति है कि यदि दुर्भाग्यवश आग लग जाए, तो गोदाम का लौह द्वार आप ही आप बन्द हो जाता है और इस तरह आग को दूसरे गोदामों में जाने से रोक दिया जाता है।

लड़ाई के सम्बन्ध में भी यह पद्धति उत्तम है। किसी मसले पर मनमुटाव, लड़ाई हो ही जाए, तो उसे पूरे जीवन में न फैलने दी जाए। उदाहरण के लिए दो भाइयों में मकान के बटवारे पर मुकदमा हो जाए और मुकदमे के बीच में एक भाई की लड़की का विवाह आ जाए, तो दूसरे भाई को उसमें पूरा सहयोग देना चाहिए। कपूरी ग्राम के उन दोनों किसानों की भी यही पद्धति है और सचमुच अपनी कला के लिए वे प्रशंसा के पात्र है।

बोले—"मैं तो सिर्फ ग्रन्थ साहब की ही शपथ ले सकता हूँ और किसी की नहीं।"

न्यायाधीश ने मुकदमा स्थगित कर दिया और किसी पुस्तकालय से ग्रन्थ साहब मंगाने की आज्ञा दे दी। ग्रन्थ साहब की पवित्रता में किसे सन्देह होगा और उसके प्रति एक सिख बन्धु की श्रद्धा भी प्रशंसनीय है, पर उसके प्रकाशन का यह तरीका जड़ है और इससे दूसरों की निगाह में वह श्रद्धा वन्दनीय न होकर उल्टे निन्दनीय होती है। हम सब इससे बचें।

महानता का मार्ग

आत्म-विस्तार की भावना मानव में सहज है। इसी का एक रूप है—महत्त्वाकांक्षा। मानव बड़ा बनना चाहता है, महान बनना चाहता है, औरों से श्रेष्ठ बनना चाहता है। सात्विक, राजसिक, तामसिक रूप से इस इच्छा की पूर्ति के लिए वह भिन्न-भिन्न काम करता है। वह धन कमाता है, शान-शौकत से रहता है, जनता की सेवा करता है, ऊँचे पद पाता है और बहुत कुछ करता है—शहीद तक होजाता है।

महानता के सम्बन्ध में एक मार्मिक वचन है—"कुछ लोग पैदा ही महान होते हैं, कुछ अपने कर्मों से महान बन जाते हैं और कुछ पर महानता थोप दी जाती है।"

पदों और परिस्थितियों द्वारा थोपी हुई महानता नकली—अस्थायी होती है याने थर्डक्लास। नम्बर दो की महानता भी साधारण ही है; क्योंकि वह सामाजिक होती है—आदमी भीतर से उतना महान नहीं होता, जितना बाहर से दिखाई देता है, पर ऐसा न होकर यह वास्तविक हो, तो फिर जन्मजात महानता की तरह सहज होजाती है। मानव के लिए यही वरणीय है, स्पृहणीय है।

टॉलस्टाय ने अब्राहम लिंकन की मृत्यु पर कहा था—"वे भावना की गहराई और नैतिकता में महान थे। वे एक ऐसे व्यक्ति थे, जो अपनी लघुता-नम्रता के द्वारा महान बनना चाहते थे। वे अपने को संसार के अंग के रूप में देखना चाहते थे, न कि संसार को अपने अंग के रूप में।"

महानता का सच्चा मार्ग यही है। नम्र होकर, दूसरों के लिए प्रस्तुत और उपयोगी होकर—स्वेच्छा से सेवा के आनन्द में लीन होकर—ही मानव में वास्तविक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महानता का जन्म होता है। यह महानता दूसरों को दबाती नहीं, उभारती है। इस महानता का दूसरों पर रौब नहीं पड़ता, इसके प्रति उनके मन में एक स्वाभाविक श्रद्धा उमड़ती है।

महानता की सही कसौटी क्या है? यही कि उससे अभिमान-अहंकार न उपजे, नम्रता-लघुता बढ़े—महान को अपनी महानता का बोध न हो, उसके प्रदर्शन की इच्छा ही उसमें न हो, फूल में सुगन्ध की तरह वह जीवन में समाई हो और कुछ सामाजिक कार्यों में ही नहीं, जीवन के छोटे से छोटे कार्य-व्यवहार में वह बिना प्रयास प्रकट होती रहे। महानता का असली रूप महान दीखना नहीं, महान होना है।

वशीकरण

भारत की आम जनता का मंत्रों-तंत्रों में विश्वास है और वह मानती है कि इनसे चमत्कार हो सकते हैं। इस विश्वास में अक्सर लोग ठगे जाते हैं, पर कभी-कभी कैसी मूर्खतापूर्ण बात होजाती है, इसका एक नया उदाहरण मिला है।

गढ़मुक्तेश्वर के निकट बसे गाँव बदरका के दो बदमाश युवक एक लड़की के रूपजाल में फंस गए, पर लड़की सच्चरित्र थी। वह भय और प्रलोभन में न फँसी। ये दोनों एक फकीर के पास गए। उसने इन्हें बताया कि किसी मुर्दा बालक के तलवे पर काजल तैयार करके यदि आँखों में डाला जाए, तो देखते ही लड़की वश में हो जाएगी। वासना कितनी अन्धी होती है कि दोनों ने मिलकर एक कब्र से नया दफनाया बालक निकाला और उसे एक पेड़ पर टाँग दिया। दिया जलाकर पैरों के नीचे रखा और काजल बनाने लगे। किसी ने पुलिस में खबर कर दी और पकड़े गए। इस प्रकार वशीकरण सिद्ध करते-करते उनका बन्दीकरण हो गया।

देश में ऐसे बदमाशों और मूर्खों की कमी नहीं है। वे इस घटना से पाठ पढ़ें और पुलिस उस फकीर को भी खोजकर इन दो के पास पहुंचा दे, यह आवश्यक है।

अधिकार का ज्ञान

अमरीका में नीग्रो लोगों का एक सम्मेलन हुआ, जिसमें देश भर से ६००० प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। इसमें भाषण देते हुए सम्मेलन के सचिव श्री विल्किन्स ने कहा—"राष्ट्रपति आइज़न हावर को नागरिक अधिकारों का उतना ज्ञान नहीं है, जितना तीन वर्ष के एक नीग्रो बालक को होता है।"

अपनी बात समझाते हुए उन्होंने कहा—"राष्ट्रपति एक ईमानदार मनुष्य हैं, पर उन्हें कभी किसी ने यह तो नहीं कहा कि तुम बस के पिछले हिस्से में जाकर बैठो!"

बात और उसकी व्याख्या दोनों मार्मिक हैं; क्योंकि राष्ट्रपति की मेज पर अमरीका का जो नया विधान रखा है, उसमें सब मनुष्यों के समान अधिकार हैं, पर प्रश्न तो यह है कि उस विधान का पालन किस तरह हो रहा है?

चारों डूब गईं!

चार स्त्रियाँ-एक समाचार में बताया गया है कि स्नान के लिए तालाब में घुसीं। एक का रपटा पैर, तो डूबने लगी। दूसरी ने उसे सहारा दिया, तो उसके भी पैर उखड़ गए-वह भी डूबने लगी। तब तीसरी और तब चौथी और इस तरह चारों डूब गईं। समाचार में कोई अजूबा नहीं है-डूबते को बचाने में स्वयं डूब जाने के समाचार मिलते ही रहते हैं।

प्रश्न यह है कि ऐसा क्यों होता है? पहली बात तो यह है कि हमारी शिक्षा अधूरी है, जिसमें तैरना, पेड़ पर चढ़ना और गाना जैसी जरूरी बातों के लिए स्थान नहीं है। फिर साहस की कमी है। आपत्ति को देखते ही बुद्धि हड़बड़ा जाती है। यदि दूसरी स्त्री अपनी धोती का एक छोर उन दो को पकड़ा कर डूबती स्त्री को पकड़ती, तो वे बाहर खड़ी दोनों, उन दोनों को पानी से खींच लेतीं और एक भी न डूबती। साहस के अभाव ने अस्तव्यस्तता को जन्म दिया और उससे नाश उपजा। जीवन में काम करना ही काफी नहीं है, योजनापूर्वक काम करना भी आवश्यक है-कोरा काम तो देहाती भाषा में पत्थर पर सिर मारना है। हममें काम का बल हो, पर बुद्धि की व्यवस्था भी हो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे भीड़ में खोए स्वयंसेवक को, परम्पराओं से ढके धर्मतत्व को, उलझनों में फँसे जीवन-सत्य को, तुरन्त पहचान लेते थे !

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

१९२६ की बात है। गुरुकुल काँगड़ी उन दिनों गंगा के पार बनों के बीच सामाजिक जीवन के एक स्वर्गीय रहस्य की तरह स्थित था और उसका वार्षिक उत्सव एक सामाजिक जागृति-पर्व की तरह मनाया जाता था।

उसमें जो लोग जाते, वे वहाँ से लौट कर वहाँ के संस्मरण कुछ इस तरह सुनाते कि जैसे परियों की कहानी सुना रहे हों। फिर उस साल तो गुरुकुल की रजत जयन्ती का समारोह था। पत्रों में उसकी धूम थी। समाचारों और लेखों की बाढ़-सी आ गई थी। उन्हें पढ़कर वहाँ जाने को जी उमंग ही रहा था कि खबर छपी—महात्मा गांधी ने भी वहाँ आना स्वीकार कर लिया है। बस फिर क्या था; मैंने भी वहाँ जाने का निर्णय कर लिया।

बात यह थी कि १९२० का असहयोग-आन्दोलन समाप्त होने के बाद देश के सार्वजनिक जीवन में उदासी छाई हुई थी कि साम्प्रदायिक दंगे आरम्भ हो गए और ऐसा लगने लगा कि स्वतन्त्रता की बात अब सदा के लिए ही समाप्त हो गई। मन में आया कि जब महात्मा जी इतने पास आ रहे हैं, तो इस बारे में उनसे ही पूछा जाए। इसे जिज्ञासा तो क्या, श्रद्धा का चाव कहना ही ठीक होगा। असल में मन कुछ क्षणों के लिए उनकी निकटता चाहता था, पर गरीब आदमी के लिए छोटी यात्रा भी बड़ी होती है। गुरुकुल जाने में भी १५ रुपयों का खर्च था, पर उत्साह की लहर सोच की बाधा कहाँ मानती है ? एक मित्र से १५) उधार लेकर मैं उत्सव में जा पहुँचा।

दूसरे दिन सुबह ही सुबह गांधी जी पधारे और मार्ग के दोनों ओर व्यवस्थापूर्वक खड़े होकर सबने उनके दर्शन किए। मेरे लिए तो यही उनके प्रथम दर्शन थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुई से व्यथित होकर एक दिन फूल ने कहा—"तुम्हें नहीं मालूम कि तुम इसें कितनी व्यथा देती हो ?"

सुई ने लाड़ से कहा—"पर वही व्यथा तो तुम्हें नेहसूत्र में गूँथकर एकाकार कर देती है ।"

श्री वेदप्रकाश 'वटुक'

दोपहर को मैं उनसे मिलने गया । मेरा बचपन देखिए कि मैं उनसे मिलना वैसा ही सुगम समझता था, जैसा मन्दिर में जाना ! गया, तो जो पहरेदार थे उन्होंने कह दिया कि उनके पास समय नहीं है । मिलना तो मिलना, मैं उनके दर्शन भी न कर सका । मैंने कई बार, और सच तो यह है कि बार-बार, उन तक पहुँचने की कोशिश की, पर फल वही रहा कि मैं उनके दूर से भी दर्शन न कर सका । मैं बहुत दुखी हुआ, पर मैंने हार न मानी और एक कार्ड पर साफ-साफ लिखा–

"पूज्य बापू,

मैं १५ रुपए उधार लेकर आपसे मिलने को आया, पर आपके आदमी मिलने नहीं देते । अब आप यदि समय नहीं दे सकते, तो १५ रुपए ही दिला दें, जिससे मैं कर्ज़दार तो न रहूँ ।"

दूसरे दिन जब वे भाषण देकर पंडाल से बाहर निकले, तो कूदकर वह कार्ड मैंने उनके हाथ में थमा दिया । पढ़कर मुस्कराए । बोले—"कल सुबह सात बजे आओ ।" मैं गया और उन तक पहुँच पाया, पर मैं उनसे क्या पूछता भला ! बस इतना कहा–"बापू, क्या १९२० के दिन अब कभी न आएँगे ?"

बोले—"जो सत्य पर हैं, वे कभी निराश नहीं होते ।" और बस मेरा सिर थपथपा कर वह उठ खड़े हुए । उठते-उठते पूछा—"अब रुपए तो नहीं माँगोगे ?" और इतने ज़ोर से हँसे कि मेरी आत्मा तक उसकी आवाज़ पहुँची ।

वह व्यक्ति-निर्माण-कला के कितने महान शिल्पी थे कि मामूली कार्यकर्ता के छिछोरे चाव को भी प्यार दे पाते थे !

(२)

१९२९ की बात है । गांधी जी देश भर का दौरा कर रहे थे । हमारे जिले के दौरे का प्रोग्राम बना, तो उसमें मेरी जन्मभूमि देवबन्द का नाम न था । वह सहारनपुर से सीधे मुजफ्फरनगर जाने वाले थे । मेरी भावुकता को चोट लगी । भाई आनन्दप्रकाश, बानूमल अग्रवाल और मैं दूसरे दिन हरिद्वार जा पहुँचे । गांधी जी हरिद्वार में थे और वहाँ से मसूरी-देहरादून होकर हमारे जिले में आने वाले थे । यात्रा के व्यवस्थापक आचार्य कृपलानी से हमने अपनी बात कही, तो उत्तर मिला—"अब प्रोग्राम अगले दो जिलों को भेजा जा चुका है, तुम्हारी बात नहीं मानी जा सकती ।"

भाई आनन्दप्रकाश योजनाशील और व्यवहारबुद्धि पुरुष थे । वे कृपलानी जी को समझाने लगे कि देवबन्द के लिए कैसे समय निकल सकता है, पर कृपलानी जी की शिला पर युक्ति की जोंक न लगी, न लगी । तब मेरे दोनों साथी टाइमटेबुल खरीदने स्टेशन चले गए । मैं कृपलानी जी के कमरे में ही बैठा रहा । अपने काम से निपटकर कृपलानी जी ने मुझसे पूछा—"कहिए ?" मैंने आशान्वित होकर कहा—"वही गांधीजी को देवबन्द ले चलने की प्रार्थना !"

रुखाई से बोले—"कह तो दिया कि दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिलों—मुजफ्फरनगर और मेरठ—को प्रोग्राम जा चुका है; पहले कहाँ थे तुम ?"

मैं भी रूखा हो गया—"मालूम होता है देवबन्द की २० हजार जनता को लाइन पर लेटा देखकर ही आप वह प्रोग्राम बदलेंगे !"

तिलमिला कर आचार्य बोले—"भागो यहाँ से।" पर मैं वहीं बैठा रहा। भाई आनन्दप्रकाश की बहस और बानूमल अग्रवाल की मिन्नत भी आचार्य की ना को हाँ न बना सकी।

गांधी जी का उस दिन मौन था, इसलिए शाम की सार्वजनिक प्रार्थना के बाद ही हम अपनी बात उनके सामने रख सके, पर कृपलानी जी ने एक ही घस्से में आनन्द-प्रकाश की पतंग काट दी। बापू उठने लगे। मेरी धृष्टता देखिए कि मैं उचक कर एकदम उनके सामने आ गया। आश्चर्य कि उन्होंने मुझे पहचान लिया—"तुम गुरुकुल में मिले थे ?" और तुरन्त मौलाना हुसैन अहमद मदनी का कुशलक्षेम पूछा। मुझे आशा बँधी, पर वे कृपलानी जी से बँधे थे। मेरे मुँह से बिना सोचे निकल पड़ा—"देवबन्द की २० हजार जनता आपकी गाड़ी के सामने लेट जाएगी और आपको आगे न जाने देगी बापू !"

यह कितनी बुरी हरकत थी मेरी ! फिर भी वह शांत स्वर में बोले—"बापू से सत्याग्रह करोगे ?"

मैंने उसी स्वर में कहा—"हां बापू, आपके सत्याग्रह का आप पर ही असर न होगा, तो हम समझ लेंगे कि सरकार पर भी नहीं हो सकता !"

यह सब सोचकर अब तो लाज आती है कि कितनी बेवकूफी की बात थी, पर गांधी जी नाराज़ नहीं हुए। क्षण भर सोंच कर बोले—"सत्याग्रह की तो जीत ही होती

भोले मानव के अन्तर में
नहीं वैर का दाग है,
सबकी शान्ति अहिंसा में ही,
मानव का अनुराग है।
मानव में जीवित अब भी तो
मानवता की भक्ति है,
मानव में अनुराग, प्रेम की
बड़ी अनोखी शक्ति है।
अन्तर में ही शक्ति-स्रोत है,
मानव कहाँ निराश है ?
धरती पर बैकुण्ठ बनेगा,
यह अपना विश्वास है।

श्री ललाम

है।" और उन्होंने टाइप-छपे कागज़ पर सहारनपुर-मुजफ्फरनगर के बीच देवबन्द का नाम लिख दिया जिससे आचार्य खूब भड़के।

दूसरे आचार्य श्री रामदेव ने पलभर में टाइमटेबुल देखा और बोले—"बापू, आपको उस दिन जल्दी उठना पड़ेगा, यह ठीक नहीं है।"

उठते-उठते बोले—"सत्याग्रह के डर से तो नींद खुलेगी ही !" और इतने ज़ोर से हँसे कि सभी हँस पड़े।

वे कितने महान जीवन-निर्माता थे कि जहाँ भी शक्ति की ज़रा-सी जड़ देखते थे, उसे खींचकर उखाड़ते न थे, सींचकर पेड़ बना देते थे। इस एक ही घटना से उन्होंने कई कार्यकर्ताओं की अपने नगर में एक राष्ट्रीय स्थिति बना दी थी, जो एक शक्ति के रूप में अगले आन्दोलनों में काम आई।

(३)

इसके बाद जब वे जेल से बाहर होते, तो मैं उन्हें सलूनों की राखी भेजता और वे मुझे अपने हाथ से आशीर्वाद लिखते। कितना उत्साह बढ़ा देते थे वे उन तिरछी-बाँकी २-३ पंक्तियों से !

१९३२ में उन्होंने हरिजन प्रश्न पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीच की एजेन्सियाँ

पंथ बनता है, वहाँ दूसरों से हम अलग दीख सकें, ऐसी वृत्ति रहती है। इसी से एक से दो, दो से चार, चार से आठ टुकड़े हो जाते हैं! अतः इन पंथों में मत पड़ो। धर्म के साथ संबंध रखने के लिए बीच में एजेन्सियों की आवश्यकता नहीं है। भगवान और भक्त के बीच खड़े होने वाले लोग हमें बचाने वाले नहीं, डुबाने वाले हैं। इसलिए इन दलालों को छोड़ो, एजेन्सियों को साफ करो और सीधे धर्म तथा भगवान तक पहुँचने का प्रयत्न करो।

युगसन्त विनोबा

अनशन किया और वे छोड़ दिए गए। प्लूरिसी का रोग बढ़ जाने के कारण मुझे भी छोड़ दिया गया, पर मन में हरिजनों का प्रश्न घुमड़ रहा था, इसलिए अपने रोग की चिन्ता न कर मैंने अपने नगर के एक प्रमुख मन्दिर में हरिजन-प्रवेश के लिए अनशन की घोषणा कर दी। यह समाचार 'अर्जुन' में छपा और तुरन्त गांधी जी का पत्र आया—"मुझ में श्रद्धा रखते हो। तब अनशन का विचार त्याग कर श्रद्धा का परिचय दो। अपनी चिकित्सा में ध्यान लगाओ।"

मैं स्तब्ध रह गया। मेरे जेल में बीमार पड़ने और छूटने की भी खबर थी उन्हें और अनशन का समाचार भी पहुँच गया था उन तक! उनका एक-एक मिनट महत्वपूर्ण कार्यों में लगा रहता था। फिर भी वे अपने मामूली से मामूली स्वयंसेवक की बात पर स्वयं ध्यान देते थे, खबर लेते थे, राह दिखाते थे, काम लेते थे। तभी तो वे देशभर में इतने कार्यकर्ता बना सके और उनसे वैसा काम ले सके, जैसा राम ने वानरों से लिया था।

हरिजनों के प्रश्न पर वे उन दिनों खूब लिख रहे थे और कट्टरपंथी लोग उनका विरोध भी भरपूर कर रहे थे। गांधी जी इन कट्टर पंथियों को सनातनधर्मी के नाम से सम्बोधित किया करते थे। मैंने उन्हें पत्र लिखा—"बापू, आप इन सुधार-विरोधियों की आलोचना करते समय सनातन धर्मी शब्द का प्रयोग करते हैं, यह तो मुझ जैसे उन करोड़ों सुधारवादियों का अपमान है, जो सनातन धर्मी होकर भी अस्पृश्यता-निवारण में आपके साथ हैं। फिर आपके कहने से ऐसा बोध होता है कि सब सनातन धर्मी आपके विरोधी हैं और इससे आपका पक्ष कमजोर होता है। आप उन्हें सनातन धर्मी न कह कर कट्टर पंथी कहें, यही उचित है।"

उत्तर में बापू ने कार्ड पर लिखा—"हम शब्दों के झगड़े में न पड़ें और काम करते रहें, यही ठीक है।"

१९४० में मैं सेवाग्राम गया और मैंने गान्धी जी से कहा—आप अपने स्वयंसेवकों को जेल भेजते हैं, पर जेल में क्या करना, क्या नहीं करना, इसका स्पष्ट आदेश नहीं देते। मेरी ही नहीं, यह बहुतों की शिकायत है; क्योंकि इस अनिश्चित दिशा में रहने के के कारण बहुतों को कष्ट उठाने पड़े हैं।

सुनकर ज़रा गम्भीर हो गए। श्री किशोरलाल मश्रुवाला उस समय गांधी जी की कुटिया में ही बैठे कुछ काम कर रहे थे। बापू बोले—"अपनी बात इन्हें समझाओ।" और तुरन्त अपने काम में जुट गए। किशोरलाल भाई मुझे टेलीफोन वाले कमरे में ले गए। मैंने उन्हें समझाया कि सबसे बड़ा मसला पैरेड का है। कुछ कांग्रेसी कैदी उसे अपमानजनक समझते हैं और कुछ नहीं, जो उसे अपमानजनक समझते हैं, उसे करने से इन्कार कर देते हैं। लोकलाज से दूसरे लोग भी उनके साथ लग जाते हैं और फिर खूब दमनचक्र चलता है। गान्धीजी का जो निर्देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबके पास है, उसका स्वरूप कुछ इस तरह का है कि जब तक कोई सिद्धान्त का प्रश्न न हो, तब तक सत्याग्रही को जेल के नियमों का पालन करना चाहिए, पर इसमें झमेला यह है कि कुछ लोग इसे सिद्धान्त का प्रश्न मानते हैं, कुछ नहीं और इस तरह जेल का वातावरण हमेशा दुविधा से भरा रहता है। किशोरलाल भाई के आदेश पर मैंने पैरेड का पूरा रूप भी समझाया कि वह कैसे होती है।

अब हम फिर गान्धी जी की कुटिया में थे। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जो बात मैंने किशोरलाल भाई को काफी देर में समझाई थी, वह उन्होंने दो ही मिनट में गान्धी जी को समझा दी। कितने व्यवस्थित और सधे हुए थे गान्धी जी के साथी। सचाई यह है कि काम करने की एक नई गान्धी कला का सेवाग्राम में विकास हुआ था और इसके सर्वोच्च आचार्य श्री महादेव देसाई थे! गान्धी जी किशोरलाल भाई की बात सुनते भी रहे और सोचते भी। बात पूरी होते ही बोले—यह तो जेल का नियम है, इसका पालन करना चाहिए। सब कानून तोड़ते चलें, ऐसा सत्याग्रह का नियम नहीं है। स्वेच्छा से जेल जाना भी तो कानून का पालन करना ही है। जेल को हम सहिष्णुता की पाठशाला बनाएँ।

अपने काम में लगते-लगते बोले—अब तो शिकायत नहीं है!

उठते-उठते मैंने कहा—"मेरे पास पाँच रुपये होते, तो अपनी कापी में आपसे कुछ लिखाता बापू!"

किशोरीलाल भाई बोले—"यह मुफ्त लिखाना चाहता है।"

गान्धी जी ने मेरी जेब में लगे पार्कर पेन की तरफ अपनी लम्बी उँगली तानी, बोले—"ना, यह बढ़िया पेन लगाता है!" और मीठे-मीठे मुस्कराए।

एक लेखक के रूप में मैं बढ़िया पेन के लिए लाख दलीलें दूँ, उनकी दृष्टि में तो मेरा पेन एक विलासिता ही थी। सोचता हूँ, उनकी पुचकार में कैसी मीठी मार होती थी और मार में भी पुचकार। उनकी वह उँगली सदा मुझे दिखाई देती रही है और बहुत बार मैं उसके ही कारण फालतू और शानदार चीज़ों के मोह से बच गया हूँ।

वे कितने महान थे कि अपने एक मामूली स्वयंसेवक को भी बन्धुत्व के धरातल पर ला बैठाते थे। उनके इस व्यवहार में शिष्टाचार या टैक्ट नहीं, बाप के हृदय की ममता ही मुख्य चीज थी। तभी तो एक बार उन्होंने सारा बोझ अपने सिर लेकर मुझे बहुत बड़े भार से बचा लिया था।

मैंने अपनी छोटी लड़की का रिश्ता एक हरिजन युवक से कर दिया। लड़की से मैंने पूछ लिया था और वह मेरी इस बात से सहमत थी कि जात-पाँत की दीवारों को हमें तोड़ना चाहिए। मेरे सम्बन्धियों में इस बात से हलचल मच गई और उनमें से कुछ तो परेशान हो गए। एक दिन मुझ से कहा

सबसे उत्तम सेवक

सबसे उत्तम सेवक सूर्य है। आप देखते हैं कि यदि आपके मकान का दरवाजा बन्द है, तो सूर्य सेवक की भांति बाहर उपस्थित रहता है। यदि दरवाजा पूरा खुला है, तो सूर्य पूरे रूप में प्रवेश करेगा। यदि आधा दरवाजा खुला है, तो आधा ही सूर्य आपके मकान में प्रवेश करेगा।

सूर्य की भांति ही मैं आपका सेवक हूँ। आप जितनी मुझसे सेवा लेना चाहेंगे, मैं हर समय उपस्थित रहूँगा।

युगसन्त विनोबा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया कि हम में से कोई भी इस विवाह में सम्मिलित नहीं होगा। मैंने कहा—"आप स्वतंत्र हैं।"

सामाजिक बहिष्कार की धमकी ने मुझे जीवन में कभी प्रभावित नहीं किया; फिर भी मैंने यह सब एक पत्र में गान्धी जी को लिख भेजा। तुरन्त उत्तर आया—"सबसे कह दो, यह विवाह सेवाग्राम में होगा।"

यह तो मेरे जीवन के लिए एक वरदान था—भीख माँगने पर राज्य पाना था। गान्धी जी ने एक पुड़िया से दो बीमार अच्छे कर दिए थे। विवाह सेवाग्राम में हो, तो फिर किसी के उसमें सम्मिलित होने का प्रश्न ही नहीं उठता था और विवाह सेवाग्राम में हो, तो मेरे लिए अपने को असम्मानित अनुभव करने की गुंजायश ही कहाँ थी? एक साधारण स्वयंसेवक के नाते मेरे लिए तो एक दैवी चमत्कार था कि गान्धी जी मेरी बेटी के विवाह में पुरोहित हों!

मेरा मन सचमुच नाच उठा, पर मेरे एक आत्मीय ने जाने क्या कह कर लड़की का मन इस विवाह से हटा दिया और दूसरे दिन मेरे तकिये के नीचे रखा एक पर्चा मुझे मिला—"पिता जी, मैं इस विवाह के लिए तैयार नहीं हूँ।"

मैं बड़े धर्म संकट में फँसा और यह पर्चा मैंने गांधी जी को भेज दिया। तुरन्त उत्तर आया—"लड़की पर बोझ मत डालो। विवाह में लड़की की सम्मति ही अन्तिम है।" लड़की तो बोझ से बची ही, मैं भी दुविधा और क्षोभ के बोझ से बच गया। इस घटना के बहुत वर्षों बाद जब इन्दिरा और फीरोज के विवाह का प्रश्न उठा, तो जवाहरलाल नेहरू कुछ दुविधा में थे, पर गांधी जी ने उन्हें भी यही परामर्श दिया था और वही अन्तिम निर्णय माना गया था!

बापू कैसे दिव्यदृष्टि थे कि वे भीड़ में खोए स्वयंसेवक को, परम्पराओं से ढके धर्मतत्व को और उलझनों में फँसे जीवन-सत्य को तुरन्त पहचान लेते थे, पहचान कर चमका देते थे—तभी तो वे राष्ट्रपिता का महान पद पा सके।

उन्हें मेरे शत-शत प्रणाम।

जब तुम योग्य हो!

लोग कहते हैं 'फर्स्ट डिज़र्व एण्ड दैन डिज़ायर' अर्थात् पहले योग्य बनो और फिर इच्छा करो। वेदान्त कहता है कि केवल योग्यता सम्पादन करो, चाहने की कोई आवश्यकता नहीं। यदि तुम योग्य हो, तो एक अपरिवर्तनीय दिव्य नियम के द्वारा प्रत्येक वस्तु तुम्हारे पास आ जाएगी।

यदि कोई प्रदीप जल रहा है, तो उसे पतङ्गों को निमन्त्रण देने की आवश्यकता नहीं। पतंगे अपने आप प्रदीप के चारों ओर एकत्र हो जाएँगे। जहाँ ताज़ा स्रोत है, लोग अपने आप उसकी ओर खिंचे चले जाएंगे। स्रोत को आदमियों की पर्वाह करने की आवश्यकता नहीं। जब चन्द्र निकलता है, तो लोग स्वयं उसकी चन्द्रिका का आनन्द लेने के लिए खिंचे आते हैं।

❀ श्री स्वामी रामतीर्थ ❀

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव के प्रति निष्ठा भाई विश्वनारायणसिंह की साहित्यिकता और पत्रकारिता की पृष्ठभूमि है। यही कारण है कि कल्पना की हवाई उड़ानें उन्हें नहीं भातीं, धरती की पदयात्रा ही उन्हें लुभाती-रस देती है। खुशी है कि उनकी पदयात्रा भी एकांगी नहीं है कि उपवनों की क्यारियों के चारों ओर ही घूमा करे या फिर पार्कों के हरे लानों पर ही चक्कर ले; वे ऊबड़ खाबड़ में भी जमते हैं और खेतों पर भी। कहूँ कि वे पूजितों को ही नहीं पूजते, पूजनीयों को भी अपनी कलम का श्रद्धान्वित अर्घ्य दे पाते हैं। असलियत यह है कि राष्ट्रीय चेतना उनके खून में है और उसी ने उन्हें मानवता का पुजारी बना दिया है।

× × × × ×

जीवित शहीद

वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली

श्री ठाकुर विश्वनारायण सिंह

卐

महाभारत के युद्ध में कुरुक्षेत्र के मैदान में अर्जुन ने हथियार उठाकर अपनी वीरता का जयगान किया था और इसके पाँच हज़ार वर्ष बाद १९३० में पेशावर की वीरभूमि में चन्द्रसिंह गढ़वाली ने हथियार डालकर अपनी वीरता का प्रदर्शन किया था—दोनों ही भारतीय इतिहास के महान वीर हैं!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवाज़ !

उनकी आवाज़ वायु को साथ लेकर न जाने कहाँ - कहाँ घूम आती है और जब उसकी छाया नदी-निर्झर-पर्वतों पर पड़ती है, तो वे भी उसके साथ गुनगुनानें लगते हैं, पर मैं एक ऐसा अलमस्त फकीर हूँ, जिसकी आवाज़ अपने अन्तर में ही खो जाती है, उसे कोई भी सुन नहीं पाते !

श्री भोलेश 'भावुक'

वीर चन्द्रसिंह का जन्म ३ फरवरी १८६२ को गढ़वाल जिले के मासो नामक गाँव में हुआ था, जहाँ उनके पिता जाथलीसिंह चौहान खेती-बाड़ी कर अपनी उदरपूर्ति करते थे। बाल्यावस्था से ही चन्द्रसिंह में वीरोचित कार्यों के प्रति रुचि थी, जिसका परिणाम यह हुआ कि प्रथम महायुद्ध के समय जब एक फौजी अधिकारी मासो गाँव आया, तो पिता की नज़र बचाकर वे भी फौज में भर्ती हो गए। उस दिन मूसलाधार वर्षा हो रही थी; इस कारण जाथलीसिंह अपने पुत्र का पता भी न लगा सके। देश में समुचित सैनिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्हें फ्रांस के मोर्चे पर भेज दिया गया, जहाँ उन्होंने अद्भुत वीरता का परिचय दिया। मेसोपोटामिया के युद्ध क्षेत्र में तो अङ्गरेज अफसर उनके रणकौशल पर मुग्ध हो गए। वहाँ से उनका तबादला खैबर कर दिया गया, जहाँ से वे पेशावर भेज दिए गए। वहीं वह महान ऐतिहासिक घटना घटी !

मैं उस दिन ध्रुवपुर (कोटद्वार) में उनके मकान पर पहुँचा, तो वे बाँस छील रहे थे और अपने काम में वे इतने मस्त थे कि जैसे जन्म से यही पेशा कर रहे हों। घुटनों तक चढ़ी पतलून, सीने पर मोटी बनियान और पैरों में टूटे हुए मिलिट्री जूते—इसी वेशभूषा में अपने काम में जुटे हुए थे। पास ही एक मिट्टी का मकान था, जिसे भूमिहीनों को दी गई ज़मीन पर उन्होंने अपनी हिम्मत से खड़ा किया है। एक गोशाला भी है। इसी मकान में छह सदस्यों का यह परिवार गुज़र-बसर कर रहा है। देखकर सदमा पहुँचा। यह राष्ट्रीयवीर, जिसने देश की सम्मान-रक्षा के लिए अपनी पूर्णाहुति दे दी, आज इस आर्थिक संघर्ष के बीच पिस रहा है, जबकि हमारे अनेक सैनिक तथा पुलिस-अधिकारी, जिन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलनों को कुचलने में एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया था, आज भी फूल और फल रहे हैं।

परकोटे में मेरे कदम रखते ही गढ़वाली जी ने हाथ का काम छोड़ दिया और प्रेमपूर्वक चिल्ला उठे—"आइए प्रभो ! कल के बदले आज ही कैसे ?" बात यह थी कि गढ़वाली जी की धर्मपत्नी श्रीमती भागीरथीदेवी ज्वालापुर महाविद्यालय के दीक्षांत समारोह में सम्मिलित होने तथा पं० नेहरू से भेंट करने ज्वालापुर गई हुई थीं। गढ़वाली जी ने लिखा था कि मैं देहरादून से ज्वालापुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाऊँ और भागीरथी जी को साथ लेकर कोटद्वार आ जाऊँ, लेकिन इस कार्यक्रम में एक दिन का विलम्ब हो जाता, इसलिए मैं सीधा कोटद्वार चला गया था।

गढ़वाली जी ने कुशलक्षेम पूछने के बाद ही अपनी पुत्री क्रान्तिज्वाला को चाय और भोजन बनाने की आज्ञा दे दी और फुरसत से मेरे पास आकर बैठ गए। गढ़वाली जी के पास जो कोई भी आता है, वह पेशावर-काण्ड के विषय में ही जानने को उत्सुक रहता है। बातचीत के दौरान में वही प्रसंग आज भी निकल पड़ा। गढ़वाली जी ने कुछ गम्भीर मुद्रा में कहा—"जीवन के ६७ बसंत देखकर मैं इस दशा को पहुँच चुका हूँ। अभी तक मेरे विषय में कई ऐसी बातें लिखी गई हैं, जो केवल मुकदमा लड़ने के लिए ही थीं, लेकिन आज आपको मैं सभी वास्तविक घटनाएँ बता दूँगा।

"१९३० का ज़माना था" गढ़वाली जी ने कहा—"देश में सत्याग्रह की लहर ज़ोरों से उठ रही थी। महात्मा गांधी के आह्वान पर मुल्क में जगह-जगह नमक तैयार कर, कानून का उल्लंघन किया जा रहा था। पेशावर में भी आंदोलन ज़ोर पकड़ रहा था। भारतीय नेताओं की गिरफ्तारी के विरोध में उस दिन वहाँ एक विशाल जलूस निकल रहा था, जिसमें पठान खुल कर हिस्सा ले रहे थे। अंगरेज़ों को भय हो गया कि यदि आज़ादी की लपट इस इलाके में इसी वेग से बढ़ती गई, तो उनके साम्राज्य का पतन निश्चित है। उन्होंने जलियाँवाला बाग़ की तरह पेशावर के आन्दोलनकारियों को भून डालने का प्रबन्ध कर लिया। किस्साखाना बाज़ार में जिस ओर जुलूस बढ़ रहा था, वहाँ ६०० गढ़वाली जवान तैनात थे, जिनका निशाना अचूक था। इन गढ़वालियों के पास ४ मशीनगनें, ६०० राईफलें तथा ६४ हज़ार कारतूस थे।

हालाँकि उस दिन की समस्त घटनाएँ गढ़वाली जी के ही चारों तरफ घूम रही थीं, फिर भी उनके वर्णन में न उन्होंने कहीं अहं का प्रदर्शन किया और न कहीं अतिरंजना का स्वर ही उभरने दिया। वे एक निरपेक्ष दर्शक की भाँति घटनाओं का वर्णन करते रहे—"१० हज़ार जोशीली जनता का यह जलूस अपने नेताओं की गिरफ्तारी का शान्तिपूर्वक विरोध करता हुआ आगे बढ़ रहा था। किस्साखाना के पुल पर अंगरेज़ चीफ कमिश्नर आदि तैनात थे। उनके ही इशारे पर कैप्टेन रिकेट ने भीड़ को तितर-बितर होजाने का हुक्म दिया। भीड़ वहीं रुक गई और उसने एक आम सभा का रूप ले लिया। एक सिख जो इस भीड़ का नेतृत्व कर रहा था, उसने भाषण देना शुरू कर दिया, जो पूर्णतया सरकार-विरोधी था! इतने में ही एक अंगरेज़ सार्जेन्ट वहाँ दनदनाता हुआ आया और उसने भीड़ पर से मोटर-साइकिल चलाने की कोशिश की, लेकिन वह असमर्थ रहा। गोरे की इस धृष्टता से तनाव बढ़ गया और गोरा भीड़ में उलझ गया। इतने में ही पुल पर से किसी ने एक जलती हुई दरी गोरे पर फेंक दी, जिससे गोरे का वहीं अग्नि-संस्कार हो गया।"

क्रान्तिज्वाला भोजन तथा चाय तैयार कर लाई थी। मैं भी स्नान से निवृत्त हो चुका था। हम भोजन करने बैठ गए। भारत के उस ऐतिहासिक वीर के साथ, जिसके सम्बन्ध में मैं बाल्यावस्था से ही किम्वदन्तियाँ सुन रहा था, मुझे आज एक ही छत के नीचे तथा एक ही थाल में भोजन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितने गौरव-गर्वित क्षण थे ये ! गढ़वाली जी ने कहना जारी रखा—"यह वारदात अंगरेज़ों के लिए असह्य थी, क्योंकि यह अंगरेज़ भस्म नहीं हुआ था, बल्कि उनके विचार में अंगरेज़ी साम्राज्य के प्रभाव की चिता ही वहाँ बन गई थी। चीफ़कमिश्नर के आदेश पर कैप्टन रिकेट ने गढ़वालियों को 'एडवांस' का हुक्म दिया। ६०० गढ़वाली जवान आगे बढ़े, उनकी संगीनें चढ़ीं हुईं थीं तथा बन्दूकें मुँह तक भरी हुईं थीं। गोरी फौज ने ब्लैंक फायर किया और कैप्टन रिकेट ने हुक्म दिया—"गढ़वालीज़, थ्री राउन्ड्स फायर" (गढ़वालियों, तीन राऊंड गोली चलाओ)। बापू का सन्देश हमारे दिमागों में काम कर रहा था। हम अपनी अंगरेज़ों का साथ न देने की उस प्रतिज्ञा को याद कर रहे थे, जो हमने ३-४ दिन पहले ही ली थी। हमारा राष्ट्रप्रेम जाग उठा था—हिलोरें ले रहा था। मैंने एक क्षण का भी विलम्ब किए बगैर कहा—'गढ़वालीज़, सीज़ फायर' (गढ़वालियों, फायर मत करो !) हमारी पूर्व योजनानुसार गढ़वालियों ने अपने हथियार डाल दिए। अंगरेज़ पलटन भौंचक रह गई !"

"गढ़वालियों के इस विद्रोह की खबर बिजली की तरह चारों तरफ फैल गई। पठान, सिख, राजपूत तथा बाकी गढ़वाली फौजें बाज़ार की तरफ एडवांस करने लगीं। लड़ाकू विमान आसमान में मंडराने लगे और परिस्थिति को युद्ध का रूप देने के लिए चट्टानों पर तोप के गोले छोड़े जाने लगे, पर गढ़वाली पलटन निश्चित खड़ी थी। अंगरेज़ बौखला उठे थे। यदि यही स्थिति एक दिन रह जाती, तो समूचे देश की अधिकांश सेना विद्रोही हो उठती। अपने साम्राज्य की जड़ों को मज़बूत करने के लिए एक आन्दोलन एवं विद्रोह को दबाना उनके लिए ज़रूरी था। १० मिनट के भीतर ही ३० गोरों की पलटन और २ मशीन गनों से सजी एक ट्रंच मोटर अंधाधुन्ध फायर करती, जलूस के ऊपर से गुज़रने लगी। मोटर के नीचे भी कई व्यक्ति कुचल कर मर गए। जनता उतावली थी, अब वह बावली हो गई। एक पठान ने अद्भुत साहस से मोटर के ही पैट्रोल से उसमें आग लगा दी, लेकिन मोटर सवार चारों अंगरेज़ों ने अपनी मृत्यु के पूर्व अपनी मशीनगनों की मार से सड़क को लाशों से पाट दिया।"

"फिर आप लोगों को गिरफ्तार किया गया ?" मैंने अधीरता से पूछा।

"जी नहीं, अङ्गरेज़ अधिकारी अपनी योजनाएँ मनोवैज्ञानिक ढंग पर बनाते हैं। इस मौके पर हमें गिरफ्तार करना साक्षात् मौत को आमन्त्रण देना था। शहर में मार्शलला घोषित कर दिया गया और हम पड़ाव की ओर रवाना हो गए। रास्ते में गढ़वाली फौज के जवान–भारतमाता, महात्मा गांधी तथा चन्द्रसिंह गढ़वाली की जय के नारे लगाते रहे। इस जयजयकार में अंग्रेज अफसर भी शामिल थे। दूसरे दिन, २४ अप्रेल १९३० को विद्रोही गढ़वाली गिरफ्तार कर लिए गए और एक फौजी मुकदमे के बाद उन्हें २० से ३० वर्ष तक की सजाएँ दी गईं। मुझे २० वर्ष का आजीवन कारावास दण्ड दिया गया, जो बाद में विभिन्न कारणों से घटकर लगभग ११ वर्ष ही रह गया।"

गढ़वाली जी १९४१ में जेल से रिहा कर दिए गए। इसके बाद वे महात्मा जी के साथ सेवाग्राम में रहे। फिर काशी-विद्यापीठ में रहे। इतने में ही १९४२ का स्वतन्त्रता संग्राम छिड़ गया और वे उसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूद पड़े। गढ़वाली जी पर तोड़-फोड़ के ३७ आरोप लगाए गए और उन्हें ७ साल के लिए जेल के सींखचों में ठूँस दिया गया, लेकिन १९४५ में वे रिहा कर दिए गए, पर उनके गढ़वाल-प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया गया। १९४२ का जेल-जीवन गढ़वाली जी के लिए वरदान सिद्ध हुआ। यहाँ उन्हें पंडित नेहरू के निकट सम्पर्क में आने का मौका मिला और नेहरू जी से उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय कानूनी दीक्षा ली और यहीं हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक यशपाल से उनकी भेंट हुई और वे दृढ़ कदमों से साम्यवाद की ओर बढ़ गए। जेल में यशपाल ने उनका नया नामकरण किया और वे 'बड़े भाई' कहलाने लगे।

बड़े भाई हर विषय पर गम्भीरता-पूर्वक बोलने का अधिकार रखते हैं। चूँकि अन्तर्राष्ट्रीय कानून की दीक्षा उन्होंने पं० नेहरू से ली है, वे अन्तर्राष्ट्रीय मसलों पर बोलने का तो अपना विशेष अधिकार समझते हैं, लेकिन भाषण के मौकों पर वे जिस तरह मुँह बनाते हैं, वह लोगों के लिए मज़ाक का कारण बन जाता है। लोग समझते हैं कि बड़े भाई मज़ाक कर रहे हैं। शायद इसी कारण लोग उनके विचारों को महत्त्व नहीं दे पाते। तिब्बत के विषय में वे मुझसे चर्चा कर रहे थे। परिवार के अन्य लोग भी आकर बैठ गए थे। बड़े भाई गम्भीर थे, जैसा कि वे अक्सर इन मौकों पर हो जाते हैं, लेकिन वे इस विषय के अनुरूप गम्भीर वातावरण का निर्माण नहीं कर पा रहे थे। सभी हँस रहे थे, पर मैं देख रहा था कि इस पेचीदा अन्तर्राष्ट्रीय मसले पर भी कितनी स्पष्ट राय थी बड़े भाई की। वे कह रहे थे—"भारत में जिस प्रकार वेश्यावृत्ति का उन्मूलन हो रहा है, उसी प्रकार तिब्बत में इस सामन्तशाही का उन्मूलन होना चाहिए।"

बड़े भाई की आँखें कमज़ोर हो गई हैं, चश्मा भी ठीक तरह साथ नहीं देता। दाँत भी नकली हैं, कानों से भी ठीक नहीं सुनाई देता। फिर भी वे काम में भिड़े हैं, क्योंकि उन्हें देश का नक्शा बदलना है! इसीलिए वे चुनाव में भी खड़े होते हैं। १९५२ में वे विधान सभा के चुनाव के लिए खड़े हुए और शानदार ढंग से हारे। १९५७ में वे पुनः लोकसभा के लिए खड़े हुए और श्री भक्तदर्शन (कांग्रेस) के विरुद्ध उन्हें करीब ५१ हज़ार मत मिले।

आज का चुनाव उम्मीदवारों के लिए कितना खर्चीला सिद्ध होता है, इसके बड़े भाई अपवाद हैं। चुनाव लड़ने का उनका अपना तरीका है, जो वाकई अनुकरणीय है। वे चुनाव के अवसर पर भोंपू लेकर निकल पड़ते और करीब दस बजे रात्रि को, जबकि मनुष्य भोजन से निवृत्त होकर सोने की तैयारी करते हैं, वे किसी पहाड़ी पर खड़े हो जाते। निस्तब्ध पहाड़ियों से टकराती हुई उनकी आवाज़ १०-१२ मील के घेरे में गूंज जाती। वे कहते—"मैं चन्द्रसिंह गढ़वाली आपकी कठिनाइयों को हल करने के लिए विधान-सभा में जाना चाहता हूँ।" लोग अपने छज्जों में बैठ कर सुनते। बड़े भाई सवाल करते—"यदि आप मेरी बात सुन रहे हैं, तो छज्जों पर लालटेनें हिलाएँ।" लालटेनें हिलने लगतीं। वे समझ जाते कि लोग उनका भाषण सुन रहे हैं। यह भाषण कभी-कभी दो-दो घण्टे चलता। अन्त में वे पूछते—"आप यदि मुझसे सहमत हैं, तो फिर लालटेनें हिलायें।" लालटेनें पुनः हिलने लगतीं। चुनाव लड़ने का कितना सरल तरीका है यह। बड़े भाई को इन चुनावों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में गाँठ से कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ा।

निरंकुशता के वे विरोधी हैं और टिहरी-मुक्ति आन्दोलन में उन्होंने खुलकर हिस्सा लिया। आज भी पड़ौसियों की निरंकुशता के कारण कभी-कभी झगड़ा हो जाता है, लेकिन वे पीछे नहीं हटते, डटकर मुकाबला करते हैं। उनका कथन है—"मृत्यु शब्द को ही शब्दकोष से निकाल देना चाहिए, क्योंकि उसके ही भय से मनुष्य अपने कई आवश्यक कार्यों से विरत हो जाता है। मृत्यु निश्चित है, इसलिए निर्भीक मनुष्य उसके आलिंगन के लिए हमेशा तत्पर रहता है। पेशावर-काण्ड इसी का परिणाम था।"

भगतसिंह को वे अपना आराध्य मानते हैं, इसीलिए अब भी भगतसिंह हैट अपने सिर पर लगाते हैं। उनका कथन है—"शहीद होकर भगतसिंह का जीवन सफल हो गया। मुझे वह सौभाग्य नहीं मिला, इसीलिए मैं हतभाग्य हूँ।" उनके जीवन की यही दर्दभरी निराशा है। मैंने सोचा—यह संसार जीवित शहीदों का महत्व कब पहचानेगा !!

सांझ हो रही थी। मैंने बड़े भाई से पूछा—"कई लोगों का विचार है कि आपने देशभक्ति के क्षणिक आवेश में हथियार डाल दिए थे, क्या यह सच है?"

हँसकर उन्होंने कहा—"यही विचार पं० नेहरू का भी था, लेकिन यह सही नहीं है। आर्य समाज के सम्पर्क में आकर देशभक्ति की भावना मुझमें पहले ही जाग्रत हो गई थी। फौजी अफसरों द्वारा समाचार-पत्र पढ़ने की छूट ने आग पर घी का काम किया। इसके अलावा बालचर-संघ तथा भारत-नौजवान-सभा के कारनामों ने भी मुझमें देशभक्ति की लहर दौड़ा दी थी। इसके अतिरिक्त जब मैं फ्रांस गया था, तब एक अङ्गरेज अफसर ने भारतीयों के प्रति अपशब्दों का प्रयोग किया था। उसने कहा था कि भारतीयों के प्रति समानता का बर्ताव नहीं किया जा सकता; क्योंकि वे गुलाम हैं। यह हमारा राष्ट्रीय अपमान था और इसने मेरी भावना को बहुत गहरा कर दिया था!

"क्या आपको विद्रोह का परिणाम ज्ञात था?"

"जी हाँ, मुझे आज भी अच्छी तरह याद है कि इण्डियन आर्मी ऐक्ट की धारा २७ (अ) के अनुसार मैं बग़ावत के लिए गोली से ही नहीं उड़ाया जा सकता था, बल्कि कुत्तों से भी नुचवाया जा सकता था—पेशावर काण्ड क्षणिक आवेश का परिणाम नहीं, एक पूर्व-योजना का मूर्तरूप था, जिसने पेशावर को दूसरा जलियावाला बाग बनने से बचा लिया।"

गढ़वाली जी का त्याग उनकी लोकप्रियता का कारण है। एक बार जब उन का बैल नीलाम किया जाने वाला था, तो समूचे क्षेत्र में कोई बोली लगाने वाला ही न निकला। पं० नेहरू उनके एक बालक की शिक्षा-दीक्षा के लिए ३०० रु. सालाना एक मुश्त भेज देते हैं, लेकिन क्या इसी से देश उनके अहसान को अपने कंधों से उतार सकता है? उनका जीवन चिन्ता-मुक्त नहीं है। छोटे बालकों की पढ़ाई तथा बड़ी पुत्री की विवाह-चिन्ता उनका एक सिरदर्द है। आज हमारा उनके प्रति कुछ भी रुख़ हो, हम भले ही उनकी उपेक्षा करें, लेकिन यह निश्चित है कि जब भी भारत का क्रमबद्ध इतिहास लिखा जाएगा, देशभक्तों की सूची में वे प्रथम पंक्ति में प्रतिष्ठित होंगे। इस वीर को शत-शत प्रणाम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मा-बाप का रखा नाम कुछ प्यारा-प्यारा, पर स्वयं चुना उपनाम यह मुद्राराक्षस; यों साहित्यिक, पर कुछ अजीब-सा ! देखने में ऐसा कि कालेज की क्लासों में घिसटता-सा तरुण, पर बातों में लहरें, तो कलम में गहराइयाँ - गम्भीर अध्ययन, तरल चिन्तन और सूझबूझ का पिटारा यह मुद्राराक्षस ! मूडी आदमी कि कलम पकड़े, तो मेज पर ऐसा जमे कि मेज हो जाए और घूमने चल पड़े, तो मेज की याद भी भूल जाए— आवारगी और आस्था के पंखों उड़ता यह बुलबुला जीव; कहूँ— काम का आदमी, पर शर्त कि कोई काम लेने वाला साथ हो !

मेरा ईश्वर : एक आत्मनिवेदन

श्री मुद्राराक्षस

किसी ने मुझसे कहा था कि तुम तो नास्तिक हो, बात सुने काफी दिन हो गए, पर मेरे भीतर कुछ खटक रहा है, बराबर खटक रहा है। वैसे जब से मैंने दूसरों से बात करना शुरू किया, लोग मुझे नास्तिक के रूप में जानते आए हैं। सच बात है, मैं ब्राह्ममुहूर्त में वायु सेवन नहीं करता, देर से सोकर उठता हूँ। मन्दिर जाने का रिवाज तो परिवार में ही न था, पर हवन भी मैंने कभी नहीं किया। जनेऊ अरसा हुआ साइकिल के पहिए में फँसकर टूटा, तो टूटा ही रहा। चोटी मेरी खोपड़ी पर इतनी बड़ी थी कि पीठ पर मुट्ठी गाँठ लटकती थी, वह भी न रही। शादी कराते वक्त शास्त्री जी ने जनेऊ ज़रूरी माना और नाराज़ होकर उठ गए। इस हालत में मैं नास्तिक न कहलाऊँ, तो फिर क्या कहलाऊँ ?

बात ठीक है। फिर भी कभी-कभी जी चाहता है कि अपने मन की इस खटक को कभी किसी के सामने जाहिर करूँ, पर न जाने क्या अटक आ जाती है कि खटक को जहाँ की तहाँ बाँध लेना पड़ता है। कभी-कभी लगता है यह खटक शायद मेरे शरीर की अस्थियों का ही एक अंश है। जब तक यह इस शरीर में है, उपयोग का है और शरीर से अलग होगा, तो टूटे दाँत की तरह अस्पृश्य हो जाएगा।

हाँ, एक बात मैं पहले ही कह दूँ कि मैं कभी अध्यात्मवादी नहीं हो पाया। बहुत ज्यादा दुनिया में लिप्त होने वाला ही रहा हूँ। इसीलिए सोते-जागते, उठते-बैठते, सोचते-विचारते सिर्फ दुनिया की बातें ही

11/315

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे याद आती है ।

शायद यही वजह हो कि मैं किसी न किसी तरह अब मजबूर हो गया हूँ, कि इस खटक की बात कहूँ । जब कोई ईश्वर की बात करता है और वह भी मेरी तरफ इशारा करके, तो मुझे दरअसल एक भयानक तिलमिलाहट होती है । लगता है, कोई मुझे सता रहा है । यह नहीं कि वह मेरे बारे में अच्छा या बुरा क्यों सोचता है, बल्कि यह कि वह मेरे और ईश्वर के सम्बन्ध में हस्तक्षेप क्यों कर रहा है ?

उसका यह हस्तक्षेप, उसकी यह जिज्ञासा मेरी यादों के आईने पर चोट करती है । मैंने कभी प्यार नहीं किया या कभी प्यार नहीं पाया—यह याद भी दर्द देती है और मैंने प्यार पाया या किया यह याद भी दर्द देती है । प्यार को दर्द का रंग ही तो माना जाता है । मैंने ईश्वर को प्यार किया या प्यार नहीं किया—इनमें से किसी एक की याद, किसी एक की भी याद मुझे दर्द से बेकल कर देती है । प्यार क्या मान्यता से ज़्यादा बड़ी चीज़ नहीं ? प्रेमिका को मानने न मानने का सवाल तो कभी प्रेम में होता नहीं । सवाल तो चाहत का होता है । राँझा हीर के अस्तित्व में विश्वास करने से ज़्यादा महत्व की बात समझता रहा हूँ हीर की चाहत को ।

अभी कल मैंने हज़रतगंज में एक रोचक दृश्य देखा । एक भोले से विवाहित लड़के को चार पाँच अविवाहित महोदय घेर रहे थे और उससे इस बात पर बहस करना चाहते थे कि तुमने जो शादी की, वह नैतिक कार्य है या अनैतिक ? जिज्ञासुओं का मतलब जो भी रहा हो, पर उस भोले शिकार की बात मैं जानता हूँ कि वह अपनी बीबी को हद से ज़्यादा चाहता है । थोड़ी देर तो उसने कहा कि इसमें नैतिक अनैतिक का सवाल नहीं; फिर कहने लगा कि मैंने इस पर कभी सोचा ही नहीं, लेकिन लोग ज़िद खा गए, नतीजा यह कि वह बौखला पड़ा । नाराज़ होने लगा ।

सोचता हूँ शायद यह सिर्फ प्यार और प्यार का दर्द ही है, जो उस भोले प्राणी में क्षोभ बन कर फूटा । बहुत प्यार आने पर बहुत गर्म आँसू ढुलकते देखे गए हैं । सवाल यही था कि जिस सम्बन्ध की गरिमा वह अकेले समेट रहा था, उसी विवाह सम्बन्ध के बारे में पूछ कर अनधिकृत सीमा उल्लंघित करना सह्य क्यों हो ? कौन ऐसा है जो अपने दरवाज़े को 'थारो फेयर' (आम रास्ता) बनने देगा ?

मेरा ईश्वर मेरे साथ है । वह मेरा है । मैं नहीं चाहता कि उसकी चर्चा किसी ग़ैर की ज़ुबान पर आए । किसी ग़ैर की महफ़िल में उसका नाम आए यह मैं नहीं सह सकता । मैं यह भी नहीं जानता कि लोग किसी के प्रिय को सामाजिक बना कर ही क्यों देखना चाहते हैं ?

मेरी शादी बड़े अजीब ढंग से हुई थी । मैं शादी करना नहीं चाहता था । शादी से पहले वाल्दैन से इस बारे में कुछ तुर्श बातें भी उठ खड़ी हुईं । शुभ-चिन्तकों ने भी काफी मेरे पक्ष की कोशिशें कीं । आखिर मैं राज़ी हुआ । पिताजी खुश होकर बोले—"लड़की देख लो ।" मैंने कहा—"देखना मेरे लिए ग़ैर ज़रूरी है अब ।" इस बार दोस्तों ने मुझे समझाया, पर बिना देखे शादी कर डालना ही मुझे ज़्यादा रुचा । सच यह था कि मैं इस मजबूरी से चिढ़ गया था ।

शादी करने का परिणाम यह भी सम्भव था कि मेरा विवाहित जीवन सुखी न हो पाए, दूसरा यह कि इत्तफ़ाक से सुखी हो जाए । बिना लड़की देखे शादी करने का अर्थ यह था कि इन दोनों हालतों में मेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी जीत है। सुखी होने पर सुख हाथ लगेगा और दुखी होने पर वाल्दैन के लिए पश्चत्ताप का कलंक देकर जबरदस्ती का बदला ले सकूँगा। इत्तफाक की बात कि हम दोनों ने एक दूसरे को पहचाना, तो लगा कि हम एक दूसरे को बहुत गहराई से चाह सकते हैं।

उन्हें शायद उनकी मा ने सिखा दिया था कि वे लेखक हैं। उनके लिए हर सुविधा का ख़याल रखना; डिस्टर्ब न हो, ऐसी सावधानी रखना। इत्तफ़ाक से एक लम्बे अरसे के लिए साथ रहने का मौका मिला। मा की हिदायतों का पालन करते हुए पत्नी ने पहले ही दिन बाक़ायदा मेज़ पर तम्बाकू-पान रख दिए, कलम में इन्क भर दी, कागज़ सवाँर दिए, टेबल सहेज दी। मैं समझा यह सफाई हो रही है, पर जब उन्होंने यह पूछा कि आप लिखने से पहले चाय पीते हैं या कुछ देर बाद, तब माजरा समझ में आया। मैं बेहद बोर हुआ।

तब उस दिन मैंने अपने एक अज़ीज़ दोस्त को खत लिखा। एक विशेष समस्या उभर आई थी। कहते हैं कि प्राय: शादी होने पर कवि बुझ जाता है। क्या कारण है? यह भी कहते हैं कि प्रेमिका कवि को प्रेरणा देती है। शायद यह भी कहा जाता है कि पत्नी प्रेमिका नहीं हो पाती, पर वह फ़र्क क्या है जो प्रेमिका को प्रेरणादात्री बनाता है और पत्नी को बाधक? इस फर्क को दोनों के स्वभाव से जान सकते हैं। मस्लन मेरी पत्नी ने लिखने का सारा सामान कर दिया और तटस्थ हो गई, पर प्रेमिका? प्रेमिका प्रारम्भ से अन्त तक यही चाहेगी कि आप उससे बात करें, उसके साथ रहें और अगर कोई उस वक्त कविता लिखने बैठे तो वह कागज़ फाड़ देगी। प्रेमिका सृजन में बाधक होकर ही प्रेरणा देती है जबकि पत्नी सृजन में सहायता देने की भोली ईमानदारी लेकर भी प्रेरणा के बजाए उकताहट देती है।

इत्तफ़ाक ही इसे भी कहूँगा कि इस विषय में मेरा कोई रुख न देख कर पत्नी ने इस आज्ञापालन में अगले दिन उतना उत्साह न दिखाया। खाना बनाने जैसे काम की ज़िम्मेदारी उन पर थी नहीं। इसलिए गृहस्थी की कठोरता का आरोप शिथिल होता गया और दो चार दिन में ही ज़िन्दगी में फक्कड़पन बस गया। अब मुझे ज़रा सहजतागह मिली। वह पत्नी न रह कर दोस्त हो गई। नतीजा यह हुआ कि काफी-हाउस के इन्टेलेक्चुअल साथियों की जगह उसी ने ले ली।

एक अरसे के बाद हमें परिवार से आने का मौका मिला। घर आए चार-छः दिन भी नहीं हुए थे कि मुझे पता चला वाल्दैन नाराज़ हैं। मालूम हुआ सभ्यता का मतलब यह है कि पति-पत्नी सिर्फ रात में ही एक-दूसरे को देखें, यह गलत बात है कि दिन में बात-चीत हो, मिलना-जुलना हो। न जाने कैसे मेरे मुँह से निकला कि जिससे सिर्फ रात में मिलने का सम्बन्ध होता है उसे पत्नी नहीं वेश्या कहते हैं। मैं पत्नी को इस नज़र से नहीं देखना चाहता, पर न जाने क्यों लोगों का ऐसा ख़याल है कि रात के अलावा हम दोनों एक-दूसरे के लिए बाद में हैं समाज के लिए पहले। ग़ौर करने की बात है कि यह क़ैस-लैला की मुहब्बत न होकर दो विधिवत् विवाहित व्यक्तियों का सम्बन्ध है जिसमें 'पण्डत' ने आग को साक्षी कराकर एक-दूसरे में विलीन होजाने की प्रतिज्ञा कराई थी।

ठीक वही हाल इस ईश्वर का है। मेरा प्रभु मेरा ही, सिर्फ़ मेरा ही है, पर किसी खास वक्त, वरना वह एक सामाजिक चीज़ है उसके बारे में समाज में बात होनी चाहिए,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके गुणों-अवगुणों का सामाजिक निर्णय होना चाहिए।

शुरू में कहा था कि मैं हर चीज को बुनियादी दृष्टिकोण से देखता हूँ। जिसके गुणों-अवगुणों पर क्लबों में मुबाहिसे हों वह चकले की छप्पनछुरी हो सकती है मेरी पत्नी नहीं। वह कुछ भी हो ईश्वर, मेरा ईश्वर नहीं हो सकता जिसका सामाजिक निर्णय हो।

बहुत मुमकिन है मेरा जो प्रभु है वह सर्वमान्य सिद्धान्तों के अनुसार सर्वशक्तिमान न हो, सर्वज्ञ न हो, पर वह जो भी है जैसा भी है मुझे प्यारा है, मैं उसे चाहता हूँ। मेरा प्रभु मेरे साथ मुस्कराता है और मेरे दर्द से भीगता भी है।

बहुत मुमकिन है मेरा ईश्वर मेरी ही तरह बहुत गरीब हो और मेरी ही तरह उदास होता हो। शायद वह मेरी ही तरह बहुत कम बातें समझ-सोच पाता हो और मेरी ही तरह मजबूरियों से चोट खाकर दुखी होता हो। वह मुझे अज़ीज है क्यों ठीक मेरी ही तरह मेरा प्रभु भी है और इसीलिए कभी मैं उसे थामता हूँ कभी वह मुझे सहारा देता है। कभी वह उदास होता है तो मैं हँसाता हूँ और मैं खिन्न होता हूँ तो मुझे वह बहला देता है और जब कभी हम दोनों थक जाते हैं तो एक-दूसरे को लेकर कहीं आराम करने बैठ जाते हैं। इसीलिए मुझे वह प्यारा है और मैं जानता हूँ उसे ऐसा नहीं होना चाहिए कि मेरे अलावा और कोई उसकी तरफ देख सके या मेरे अलावा मेरा प्रभु किसी और को चाह सके। नहीं मेरा प्रभु ऐसा नहीं है।

हाँ, एक बात बड़ी अजीब है : जब मेरी पत्नी मेरे साथ हो, तो वह न जाने कैसे या तो मेरी याददाश्त से निकल जाता है या फिर उसी में विलीन होकर रहता है और मुझे कभी नहीं महसूस होता कि अभी मैं एक को प्यार कर रहा था अब दूसरे को, अभी प्रभु से बात कर रहा था अब पत्नी से।

लगता है वह ऐसा कुछ भी नहीं कि किसी दूसरे का उससे कुछ लेना-देना हो। भारतीय ऋषियों ने उसे संसार से मुक्त कहा था न ? बस, यही बात सही है। मैंने कभी नहीं पाया कि मेरे अलावा वह किसी दूसरी चीज़ से भी वास्ता रख सकता है।

मैंने अपने ईश्वर के बारे में कभी यह नहीं सोचा कि वह सुन्दर है या नहीं, वह किसी और योग्यता का है या नहीं; क्योंकि वह दोस्त है। दोस्ती के बाद ही यह कुछ आएगा पहले नहीं। उस प्रभु को मैं ठीक उतना ही जानता हूँ या उतना ही नहीं जानता हूँ जितना अपनी प्रियतमा को, अपनी पत्नी को। इसीलिए उसके बारे में कोई भी सवाल मैं कैसे स्वीकारूँ, यह मैं समझ नहीं पाता। इसीलिए मेरे और उसके सम्बन्ध को लेकर उठा हर सवाल मुझे दर्द देता है।

आज उस अरसे से दबी खटक के बारे मैंने कुछ कहा, यह एक भूल की है। कम से कम कोई अच्छी बात नहीं हुई। शायद मेरा ईश्वर मुझसे कभी पूछेगा भी नहीं कि मैं उसके और अपने सम्बन्ध के बारे में कोई सफाई क्यों दे रहा हूँ। कभी-कभी यह बात और अधिक कष्ट देती है कि मेरा ईश्वर मेरे किसी न करने योग्य काम में दखल क्यों नहीं देता, मुझ से मेरी आलोचना क्यों नहीं करता। पर वह कुछ नहीं कहता है। बस मेरे साथ रहता है, मेरा साथ छोड़कर मुझे दण्ड भी नहीं देता, मेरे भोग को वह भी भोग लेता है, मेरी उदासी को वह भी बँटा लेता है, पर शायद इसका भी कोई गहरा कारण है। कभी फिर आगे की कोई बात कह सकूँ इसके धैर्य की प्रतीक्षा करूँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुरोध

श्री सुशीलाकुमारी मिश्र

●

प्रिय, मेरा यह अनुरोध मान भी जाओ !

जब चन्द्र सूर्य का भी प्रकाश मिट जाए,
जब दीप-शिखा भी जल-जल कर बुझ जाए,
जब नील गगन में अन्धकार घिर आए,
तब कहना—पथ में अपना दीप दिखाओ !

प्रिय, मेरा यह अनुरोध मान भी जाओ !

जब सागर, सरवर की रेती उठ आए,
जब सरिता की धारा बहना मिट जाए,
जब मृगजल भी आशा को ठुकरा जाए,
तब कहना— मुझसे मेरी प्यास बुझाओ !

प्रिय, मेरा यह अनुरोध मान भी जाओ !

जब क्रूर भाग्य के बन्धन से दुख पाओ,
जब संघर्षों से लड़कर तुम झुक जाओ,
जब जीवन भार उठाने में थक जाओ,
तब कहना—देकर शक्ति मुझे सरसाओ !

प्रिय, मेरा यह अनुरोध मान भी जाओ !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातों-बातों में

कुछ लोग हैं, जो कपड़े-ज़ेवर पहन कर सुन्दर लगते हैं, पर कुछ लोग हैं कि अपना मामूली कुरता-पाजामा पहने हों, तब भी जचते हैं। इसी बात का एक दूसरा रूप भी है कि कुछ लोग हैं, जो किसी पद पर प्रतिष्ठित हों, तब भी और न हों तब भी समान रूप से आकर्षक रहते हैं। उत्तर प्रदेश के पूर्व उप गृहमंत्री श्री जगनप्रसाद रावत भी ऐसे ही लोगों में हैं।

उस दिन किसी निजी काम से वे सहारनपुर आए, तो सदा की भांति उत्फुल्ल और हार्दिक। खूब बातें हुईं। वे बातों में कभी स्व-लीन नहीं होते–उनकी बातों का घेरा एक यात्रा-वृत्तांत की तरह होता है कि विविध विषय और विविध जन उसमें समा जाते हैं।

पुलिस विभाग के उपमंत्री पद के कार्य में उन्हें बहुत सफलता मिली थी और एक विचित्र बात है पुलिस विभाग के अधिकारी पद पर न रहते समय भी उनके पीछे उनकी प्रशंसा करते हैं। बातों-बातों में मैंने कहा—इस प्रशंसा का अर्थ है कि आपकी लोकप्रियता गहरी थी, पर इस सफलता का रहस्य तो बताइए।

श्रीगोविन्दवल्लभ पंत और श्रीरफीअहमद किदवई दोनों के प्रति रावत जी के मन में अथाह श्रद्धा है और इन्हें इन दोनों के साथ ही काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। बोले—"पुलिस-प्रशासन के काम में बहुत बार कठोर कार्य करने पड़ते हैं और कठोरता किसी को अच्छी नहीं लगती। इस सम्बन्ध में एक बार पन्त जी ने मुझे एक सूत्र दिया था—"चाहे जो करो, पर बाद में दो मीठे बोल ज़रूर कह दिया करो।" इससे मैंने खूब लाभ उठाया।

स्वर्गीय रफी साहब ने भी मुझे एक सूत्र दिया था—"किसी के कान में भी ऐसी बात न कहो कि बाद में यह कहना पड़े कि मैंने यह नहीं कहा था।" इसने मुझे हमेशा रोशनी दी!"

बातें इन्हीं दोनों बड़ों के सम्बन्ध में चलती रही और मैं इन सूत्रों पर विचार करता रहा। धीरे-धीरे मेरे मन में दोनों सूत्रों का सार लेकर एक नया सूत्र बना—सफल प्रशासक के लिए यह उचित है कि वह अपने कर्म में—निर्णय में—दृढ़ रहे, पर अपने व्यवहार को कोमल रखे और अपनों-बेगानों में अपनी विश्वसनीयता को कभी संदिग्ध न होने दे।

"रावत जी, मैंने कहा—आप से मिल कर आनन्द तो हमेशा ही मिलता है, पर इस बार तो दो सच्चे मोती भी मिल गए, जिन्हें मैंने एक जगह गूँथ लिया है। सुनकर बहुत खुश हुए और बोले—"इन बड़े आदमियों के जीवन में यही विशेषता है कि इनका कोई न कोई मूलमंत्र है, जो इनके जीवन और व्यवहार को विशिष्टता देता है और इनकी एक विशेष कार्यपद्धति बन जाती है।

यों ही मैंने पूछा—"पण्डित जवाहरलाल नेहरू की क्या विशेषता है आपकी राय में–दृष्टि में?"

बोले—"वे कभी फुस-फुस नहीं करते।"

मैंने कहा—इसे ज़रा समझाइए, तो रावत जी बोले—"वे जलसे में हों, या मीटिंग-बैठक में, इसके-उसके कान में बात नहीं करते, अपना मन सब के सामने खोल कर रख देते हैं।"

मैंने सोचा—नेहरू जी साथियों में साथी नहीं बनाते, इसीलिए वे गुट-गिरोह के नहीं, राष्ट्र के और आगे बढ़कर राष्ट्रों के नहीं, विश्व के मानव हैं।

बातों ही बातों में क्या कुछ दे गए रावत जी!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक सौन्दर्य, दो पहलू

कुमारी बख्शी

卐

"बहुत अभिमान था न तुझे? पर अब क्या है तेरे पास? धूल से भरा हुआ है तेरा वह सौंदर्य !" अट्टहास के साथ काँटा ललकार उठा।

"क्यों उपहास करते हो साथी? सचमुच मुझसे भूल हुई कि मैंने समझा, सौंदर्य अमर होता है और शाख पर इठलाते हुए मैंने तेरी बात नहीं मानी। मुझे लगता था ईर्ष्या से उद्विग्न तू मेरे हर चाहने वाले का रक्त चूसता है।"

"हूँ! तू अब भी नहीं समझा। अरे, मैं तो अपनी चुभन से उन्हें चेतावनी देता था कि वाह्य सौंदर्य नश्वर है। कहीं तुम प्रेम की भूल न कर बैठना। नहीं तो चिर-वेदना ही तुम्हें मिलेगी !"

"ठीक ही कहते थे तुम सखा! देखो, अब तो वह सौंदर्य-प्रेमी भ्रमर भी मेरे पास नहीं आता। मैंने तो उसकी अर्चना में अपना सब कुछ समर्पित कर दिया था !"

× × × ×

बीमारी से कराहती हुई नारी ने पुकारा—पा···नी !

एक कुरूप नवयुवक उसके पास आया। उसने अपना मुँह कपड़े से ढक रखा था।

जीवन और मृत्यु का संघर्ष चल रहा था, फिर भी साहस बटोर, नारी ने मुँह खोला—"यह आवरण उतार दो और मुझे अपनी शक्ल देखने दो।" नारी का चेहरा लकवा मार जाने के कारण टेढ़ा हो चुका था, बीमारी ने सारा रक्त चूसकर अभिमानी कपोलों को पीला बना दिया था। आँखों के नीचे काले गड्ढे बन चुके थे, जिनमें डूबा गर्व कराह रहा था।

युवक ने कहा—"मेरी कुरूपता को ढका ही रहने दो देवि। तुम्हें मेरे भद्दे चेहरे से घृणा थी न? मैं इन क्षणों में अपना वही चेहरा दिखाकर तुम्हारी आत्मा को कष्ट नहीं पहुंचाना चाहता?" और अपना मुँह दूसरी ओर करते हुए उसने पानी का गिलास उसकी ओर बढ़ा दिया।

नारी ने अपने अशक्त हाथों से पात्र पकड़ना चाहा, पर हाथ काँप कर अपनी बेबसी की कहानी कहते हुए एक बार उठ कर गिर गए। युवक ने तेज़ी से बढ़कर अपने हाथों से उसका निर्जीव-सा शरीर संभाला और पानी की दो बूँदें उसके सूखे अधरों पर लगा दी। वाणी मूक थी, किन्तु आँखें बोल रही थी।

"रूप के मिथ्या गर्व में खोई मैं जान ही न सकी कि सौंदर्य वाह्य नहीं, आन्तरिक होता है। आज हृदय आँखों के द्वारा देख रहा है और आँखें हृदय बन गई हैं। युवक, तुम्हारी भावना में सौंदर्य है, तुम्हारी आत्मा में सौंदर्य है ! आज समझ पा रही हूँ कि मन के विशाल और सुन्दर न होने पर तो मनुष्य का न होना ही अच्छा है।"

कभी सामने आंगन में वृक्ष के नीचे बिखरे फूल को और कभी पास ही पलंग पर लेटी उस स्त्री को देखता रहा, बस देखता ही रहा। ✻

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहारों के किनारों पर कई पतझार होते हैं !

श्री सुनील शर्मा

पलक का मैं नहीं आँसू, जिसे दृग से ढुला दोगे !

ज़रा झाँको यही दिल है तुम्हारे रूप का दर्पण,
न तोड़ो, यूँ न ठुकराओ किसी के प्यार का अर्पण,
समझ लो सत्य हूँ, सपना नहीं जिसको भुला दोगे !
पलक का मैं नहीं आँसू, जिसे दृग से ढुला दोगे !!

अंधेरे पी लिए मैंने, उजाले दे दिए अपने,
तुम्हारे रूप की लौ पर जला डाले सभी सपने,
मगर मैं चाँद हूँ, दीपक नहीं, जिसको बुझा दोगे !
पलक का मैं नहीं आँसू, जिसे दृग से ढुला दोगे !!

महकते फूल के अन्दर नहीं अंगार होते हैं,
प्रणय के बीच नफ़रत के नहीं व्यापार होते हैं,
समझ लो ज़िन्दगी हूँ, शव नहीं, जिसको जला दोगे !
पलक का मैं नहीं आँसू, जिसे दृग से ढुला दोगे !!

तुम्हीं आबाद हो समझो न मुझको एक वीराना,
जलाना छोड़ कर तुमने अभी जलना नहीं जाना,
मगर मैं रूप हूँ, छाया नहीं, जिसको मिटा दोगे !
पलक का मैं नहीं आँसू, जिसे दृग से गिरा दोगे !!

बहारों के किनारों पर कई पतझार होते हैं,
किनारों में पलक मूँदे कई मंझधार होते हैं,
समझ लो प्यार हूँ, नफ़रत नहीं, जिसको सुला दोगे !
पलक का मैं नहीं आँसू, जिसे दृग से ढुला दोगे !!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह उनमें नहीं,
जो परिचय-पत्र लेकर
दरबार में आते हैं
और न वह उनमें है,
जो पुजारी के हाथों
मूर्ति पर अर्घ्य चढ़ाते हैं।
वह तो उनमें है,
जिन्हें लक्ष्य का पता होता है,
राह की जानकारी भी,
पहुँच पाने का विश्वास भी—
हाँ, काँटों-गड्ढों का ज्ञान भी,
क्रूर बाधाओं का मान भी,
पर बढ़े ही जाने की आन भी;
ब्रजकिशोर 'नारायण'
एक आत्मविश्वासी तरुण!

ज़िन्दगी का कुलाबा

श्री ब्रजकिशोर 'नारायण'

वही घिसी-पिटी बात, जिसमें कहा गया है कि ज़िन्दगी खाने के लिए नहीं, बल्कि ज़िन्दगी के लिए खाना है, आज फिर इसलिए दुहरानी पड़ रही है कि ज़मीन-आसमान के कुलाबे, किसी दिन विज्ञान के करिश्मों के कारण मिल भी जाएँ, मगर इस ज़ालिम ज़िन्दगी का कड़ियल कुलाबा शायद ही कभी मिल सके!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल-परसों की ही बात है, ज़िन्दगी को बरक़रार रखने के सिलसिले में मैं भोजन के सामने था।। रोटी-दाल के साथ लौकी की तरकारी भी थी। तरकारी प्लेट में परोसी गई थी और उसमें एक चम्मच भी रख दिया गया था। रोटी-दाल के साथ तरकारी का खात्मा नहीं हो पाया, तब मैं चमचे के सहारे, प्लेट की बची तरकारी की टुकड़ियों को उदरस्थ करने के लिए उत्सुक हो उठा।

यूँ तो, ज़िन्दगी में चोरों को, कुत्तों को और एकाध बार जंगली आदमियों को भी खदेड़ने के मौके मिल चुके हैं, मगर खाद्य-सामग्री की खदेड़ाई का यह पहला सौभाग्य था। मैं चमचे पर बड़ी चातुरी से तरकारी के एक टुकड़े को चढ़ा लेना चाहता था, मगर वह टुकड़ा चालाक चोर की तरह बदन में तेल लगाकर आगे या अगल-बगल यूँ सरक जाता था कि मुझे अपना-सा मुँह लेकर रह जाना पड़ता था।

सोचा कि यह टुकड़ा छोटा है शायद, इसीलिए पकड़ में नहीं आ रहा है। चलो, बड़े को ही आज़माया जाए! कोशिस की, मगर यहाँ भी वही हाल! अरे, बड़ा तो और भी घाघ निकला! वह चमचे पर चढ़ आने का अभिनय तो करता था, मगर ऊपर उठाते ही उछल कर प्लेट में आ पड़ता था। यह तमाशा कुछ देर तक चलता रहा, पर मेरी सारी तकनीक और चमचे की भाग-दौड़ बेकार साबित हुई। वह चमचे पर न चढ़ा, न चढ़ा।

बात बहुत साधारण है। इस जिन्दगी में, खाने वालों को हज़ारों बार इस झंझट से पाला पड़ा होगा, मगर मेरे साथ जब यह बात हुई, तो मैं सोचने लगा कि तरकारी के टुकड़े कटकर, उबलकर और हर प्रकार से निर्जीव और निःसहाय होकर भी जब पकड़ में नहीं आते, तो क्या प्रतिकूल व्यक्तियों और जीवन्त वस्तुओं का अनुकूल सान्निध्य प्राप्त कर लेना मनोवांछित ढंग से सम्भव है? लोहे के चन्द कुलाबे लकड़ियों को जोड़ देते हैं, लेकिन ज़िन्दगी की लकड़ियों को जोड़ने में कोई भी कुलाबा काम नहीं आता!

जो चीज़ अपने से परे हो, अप्राप्य हो, उससे निकटता-प्राप्ति की अभिलाषा मनुष्य को बराबर व्यग्र करती है। मेरे साथ भी तरकारी वाली घटना घटी, तो मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि जिस तरह निर्जीव कुलाबे, दो निर्जीवों को जोड़कर सजीवों के लिए श्रेष्ठ साधन बन जाते हैं, उस प्रकार यह मनु-पुत्र सदा के लिए पारस्परिक निकटता स्थापित कर सकेगा, यह सन्दिग्ध ही है।

हास्य-रस के सरस और सजीव वातावरण में कभी-कभी गम्भीर गवेषणा भी हास्यास्पद होकर हास्य का आनन्द दे देती है। मैं इस घटना को इस सिद्धान्त का एक अच्छा उदाहरण मानता हूँ और एक ऐसी ही दूसरी गँवई घटना की याद आपको करा रहा हूँ ताकि आप यह समझ लें कि ज़िन्दगी के कुलाबों को मिलाने में बुद्धिमानों को चाहे जितनी परेशानी उठानी पड़े, मगर उसके खिलाफ खड़े होने वाले व्यक्ति बेबाक बेफ़िक्र रहते हैं। पेशेवर पहलवान की तरह धूल झाड़कर खड़े हो जाते हैं और मूँछ पर यूँ ताव देते हैं, जैसे कुछ हुआ ही न हो।

हाँ, तो कहानी यूँ है कि देहात में एक देवी जी रहती थी और जब कभी अपने देवता जी से खटपट कर लेती थीं, तो तड़ाक से गठरी-मोटरी बगल में दबा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर मायके की ओर चलमचल हो जाती थीं। इस बार-बार की धमकी और गठर-बँधाई से देवता जी तँग आ गए। उनका पारा दुर्वासा मुनि की तरह गरम हो गया और उन्होंने देवी जी की गठरी को छीन कर अपनी लाठी पर यूँ नचाया, जैसे कंस ने देवकी की सन्तानों को नचाया था। काश! कंस की कूवत उनके कर-कमलों में होती! फिर भी उन्होंने गठरी जो फेंकी, तो वह पन्द्रह-बीस गज से कम दूरी पर नहीं गिरी।

यह तो थी उनके कर-कमलों की करामात! अब उनके पाद-पद्मों का पराक्रम देखिए कि फुटबौल के खिलाड़ियों की तरह वे दोनों पाँव समेट कर एक बार उछले और तब एक पाँव पत्नी जी की पीठ पर उन्होंने यूँ जमाया कि वे पाताल तो नहीं पैठ सकीं, मगर दरवाजे से दस हाथ परे ज़रूर हो गईं।

इस घटना की स्थूल और शारीरिक प्रक्रियाओं का प्रकरण तो समाप्त होगया, मगर अब उसकी सूक्ष्म-साइड भी देखिए! पति देवता ने जो-जो वाक्य उनकी प्रशंसा में कहे, वे आपको संसार के किसी भी साहित्य में उपलब्ध नहीं होंगे, पर पत्नी जी ने भी घायल बाघिन की तरह गठरी को बगल में दबाए पतिदेव के साहित्य का प्रत्युत्तर इस प्रकार दिया कि ईंट का जबाव पत्थर हो गया! यह अपमान की हद थी और इसके बाद उनका घर में क्षण भर भी रहना सम्भव ही न था! वे बाहर निकल गईं, पर सदा तो बाहर नहीं रहा जा सकता। इसलिए मसला जब नर्म हुआ, तो कुछ और ही नज़्ज़ारा सामने आया। जो देवी जी बिजली की तरह, बात की बात में गायब हो गईं थीं, वे सूरज ढलते ही, घर के पिछवाड़े से सामने के दरवाज़े में घुसती नज़र आईं और यह भी इस करीने से कि देवी जी के आगे-आगे एक बकरी है और उसकी पूँछ में देवी जी की साड़ी का छोर बँधा हुआ है। पति देवता भी नरम हो चुके थे और घर में इकले उदास बैठे थे। यह अजूबा दृश्य देखकर वे सामने आ खड़े हुए। वे कुछ कहें कहें कि देवी जी बोल पड़ीं—"मैं अपने आप थोड़े ही लौटी हूँ। यह तुम्हारी बेहूदी बकरी मुझे जबर्दस्ती पकड़ लाई है, पर यहाँ मैं अब रहूँगी नहीं।"

शाम की मुस्कान में रंगे-रंगे वे बोले—"ठीक कहती हो। मैंने ही इसे तुम्हें बुलाने को भेजा था। आओ, चाय पीकर चली जाना।" इस पर दोनों देवी-देवता इतना हँसे कि दिन का राक्षसत्व गोधूली के देवत्व में खो गया।

मैंने जब-जब इस किस्से को सुना है, तब-तब यही महसूस किया है कि जिंदगी के कुलाबे मिलाने की यह मिसाल एकदम बेजोड़ है और इससे जितनी ही निकटता प्राप्त की जाए, ज़िन्दगियों की दूरी उतनी ही दूर होगी। यूँ तो ज़िन्दगी को लोगों ने जंग माना है, मगर यह चलती है समझौतों से? ज़िन्दगी में अगर समझौतों की मुस्कान न हो, हास न हो, ठहाके नहीं हों, तो ज़िन्दगी, ज़िन्दगी न होकर मौत का बोझ महसूस होने लगे। इसलिए मुझ मूरख की सबसे यही बिनती है कि हम लोग शायरों की तरह ज़मीन-आसमान के कुलाबे मिलाएँ-न-मिलाएँ, मगर ज़िन्दगी का कुलाबा ज़रूर मिलाएँ-ज़रूर मिलाना सीखें और दूसरे किसी भी काम में लाख कंजूसी करें, इससे कन्नी न काटें!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफलता के अनुभव

श्री कौशलप्रसाद जैन

निर्णय से पहले

किसी महत्वपूर्ण विषय पर निर्णय करने से—हाँ या ना कहने से पहले अपने से पूछना चाहिए कि मेरे इस निर्णय का आधार क्या है ?

आश्चर्य की बात है कि व्यावसायिक, व्यापारिक और सार्वजनिक क्षेत्रों में भी बहुत-से लोगों के निर्णय करने का आधार झक, हल्के आवेग, अफवाहें अथवा पक्षपात आदि होता है और इसीलिए उनके पल्ले अक्सर असफलता पड़ती है। यदि वे ज़रा-सा प्रयत्न करके आरम्भ में ही विचारपूर्वक निर्णय करें, तो उनके निश्चय लाभदायक हो सकते हैं।

सफलता का इच्छुक व्यक्ति अपने निर्णय का कारण जानकर सफलता प्राप्त कर लेता है, क्योंकि वह उसकी बुराई-भलाई को समझ, भूल से बच जाता है।

जीवन के हरेक क्षेत्र में हजारों नुकसान बच जाएँ, यदि हम हाँ अथवा ना कहने से पहले अपने से पूछें कि हमारे निर्णय का आधार क्या है ?

तथ्य और विचार

तथ्य और आँकड़े सामने रखकर विचार करना, दक्षता प्राप्त करने का सबसे सही रास्ता है। संसार में सभी श्रेष्ठ वस्तुओं का निर्माण तथ्यों पर विचार करने से हुआ है।

विचारना दिमागी निर्माण है। तथ्य कच्चा माल है और आइडिया तैयार माल।

मानव सभ्यता में उन्नति की कोई भी सीढ़ी किसी मानव के दिमाग की उपज है। कार्य रूप में परिणत होने से पहले कोई भी कार्य विचार मात्र होता है। किसी भी जाति या राष्ट्र की उन्नति विचारकों के विकास पर निर्भर करती है; वे विचारक जिनके पास निर्माणात्मक विचार हों।

बड़ी व्यावसायिक संस्था अथवा छोटी-सी दुकान की उन्नति सबसे अधिक विचारों (आइडिया) पर निर्भर करती है।

प्रत्येक व्यवसायी, व्यापारी, वैज्ञानिक या साहित्यकार को सप्ताह में कुछ न कुछ समय सोचने-विचारने के लिए रखना आवश्यक है। जो काम केवल अन्दाजों पर चलता है, वह कभी भी ठप्प हो सकता है।

तथ्य, आँकड़े और आइडिया हम दूसरे सफल लोगों से बातचीत में या पठन पाठन द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। हमें अधिक से अधिक नए आइडिया प्राप्त करते रहना चाहिए। सबसे महत्वपूर्ण बात ही तथ्य एकत्रित करके उन पर विचार करना है।

एडीसन ने अपने कार्यालय की दीवाल पर लिख रखा था कि यह विचारणीय प्रश्न है कि कौन व्यक्ति विचारों की उपेक्षा करता है।

हममें से बहुत कम लोग विचार करते हैं। बहुत से यही सोचते रहते हैं कि हम विचार कर रहे हैं, पर अधिकाँश व्यक्ति विचार करने की बात सोचने की भी परवाह नहीं करते।

कितनी संस्थाएँ अपने कर्मचारियों को सोचने के सम्बन्ध में प्रोत्साहन देती हैं ? लाभदायक सुझावों पर पारितोषिक देती हैं ! पाँच प्रतिशत भी नहीं।

किसी संस्था के लिए भी चक्कर चलते रहना ही लाभदायक और काफी नहीं हो सकता, क्योंकि देर-सबेर कोई न कोई विचारक प्रतिद्वन्दी उन्हें पछाड़ देगा और फिर कुछ भी न हो सकेगा।

बिना विचार के कोई उन्नति नहीं हो सकती। उसी संस्था या व्यक्ति को निरन्तर सफलता प्राप्त होगी, जो तथ्यों को इकट्ठा करके उन पर विचार करता रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पति की उम्र है एक सौ पचास साल, पत्नी की एक सौ इक्कीस, दोनों स्वस्थ हैं—क्यों ?

श्री दीनदयाल मलहोत्रा

"अपने आहार-विहार को नियमित रखना और मन की प्रसन्नता दीर्घ जीवन की कुंजी है।" यह कथन रूस के वयोवृद्ध नागरिक श्री मुहम्मद बागीरोगली एवाजोव का है, जिन्होंने इस सिद्धान्त को अपने जीवन में ढाला है। यही कारण है कि वह इस जीवन के १५० वसन्त देख चुकने के बाद भी जीवित और पूर्ण स्वस्थ हैं।

श्री एवीजोव के वंश में दीर्घजीवी होने की यह परम्परा पुरानी है, क्योंकि इनकी माता श्रीमती आगाबानी स्वयं १५० वर्ष जीवित रही थीं और इनके दादा ने १२० वर्ष की आयु भोगी थी।

श्री मुहम्मद बागीरोगली एवाजोव रूस के अजोरबाईजान जिले के रहने वाले एक कृषक परिवार के व्यक्ति हैं, जिन्होंने लेरिक में कामसोमाल की साम्की (सहकारी) खेती-बाड़ी के सदस्य के रूप में काम किया था। इस संगठन की ओर से इनकी १४८ वीं वर्षगांठ पर इनकी मेहनत और सेवा की सराहना की स्वीकृतिस्वरूप 'आर्डर आफ डी रेड बैनर आफ दी लेबर' नामक तमगे से इन्हें सम्मानित किया जा चुका है।

आज श्री एवाजोव का अपना एक विस्तृत परिवार है, जिसकी सदस्य संख्या इस समय १६० है। जीवनकाल में इन्होंने अपने चार विवाह किए, जिनमें से पहली तीन पत्नियों की मृत्यु हो चुकी है। इस समय इनकी चौथी पत्नी श्रीमती सुगेर जीवित हैं, जिनकी अवस्था इस समय १२१ वर्ष की है। वह भी अपने पति के समान ही स्वस्थ और प्रसन्न हैं तथा सदैव गृह-कार्य में व्यस्त मिलती हैं। श्री ऐवाजोव के २४ पुत्र और पुत्रियाँ इस समय जीवित हैं।

आज जब हम इस परिवार के दीर्घजीवी व्यक्तियों को देखते या उनके संबन्ध में जानकारी प्राप्त करते हैं, तो स्वाभाविक रूप से हममें भी दीर्घ जीवन की लालसा जाग्रत होती है, परन्तु दीर्घजीवी बनने की लालसा तभी सार्थक हो सकती है, जब हम अपने से वृद्धावस्था को दूर रखें। यदि सचमुच इस ओर ध्यान देने लगें, तो सुखद दीर्घजीवन प्राप्त करना हम भारतीयों के लिए अधिक कठिन नहीं होगा, क्योंकि हम भी तो महावीर भीष्म के उन वंशजों में से ही हैं, जिन्हें 'इच्छा मृत्यु' सिद्ध थी। फिर आज के युग में तो विज्ञान का यह मत भी हमारे पक्ष में है कि "बुढ़ापा भी अन्य रोगों की ही भाँति एक रोग है और उसकी चिकित्सा की जा सकती है।"

विचारणीय यह है कि भारतीय परम्परा के अनुकूल वे कौन से उपाय हैं, जिनके द्वारा हम स्वस्थ और सुखमय जीवन प्राप्त करके दीर्घजीवी हो सकते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा अपने शरीर को जर्जरित होने से बचा सकते हैं ?

अधिक जीवन के लिए, मनोविज्ञान के अनुसार, सबसे अधिक आवश्यक है दीर्घजीवी होने की आस्था या आत्म-विश्वास। यदि आप विश्वास कर लें कि आप अवश्य ही १५१ वर्ष तक जीवित रहेंगे, तो निश्चय ही आप दीर्घ आयु के मार्ग पर सीधे चल पड़ेंगे। आप प्रतिदिन इस विश्वास को जितना परिपक्व करेंगे, उतना ही आपको लाभ होगा। आपको ऐसे बहुत से लोग मिलेंगे, जिनको इतना आत्मविश्वास भी नहीं कि वह अगले दिन तक भी जीवित रहेंगे या नहीं। ऐसे अविश्वासी मनुष्य तो जीते जी ही मर चुके, अतः उनके दीर्घजीवी होने की आशा नहीं होती। दीर्घ आयु के विश्वास को दृढ़ करना दीर्घ जीवन के लिए परमावश्यक है, क्योंकि दीर्घ जीवन के प्रति आस्था से ही आपको जीवन के प्रति प्रेम हो जाएगा और तब आप जीवन को एक बोझ न समझेंगे। आपको एक लम्बे समय जीवन के साथ निर्वाह करना है, इस भावना के विकसित होने पर आप जीवन को अपना साथी समझेंगे और उसे बनाए रखने तथा विकसित करने के यत्न करेंगे।

इससे आप जीवन के महान शत्रु जल्दबाज़ी से बच जाएँगे। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि आपकी आयु ४० साल है और आपको १५१ वर्ष तक जीने का विश्वास है, तो अभी आपको १११ वर्ष काम करने के पड़े हैं। यह ध्यान आते ही 'जल्दबाज़ी की क्या आवश्यकता है' की भावना आप में दृढ़ होगी और आप अपना काम पूरे आत्मविश्वास के साथ डटकर कर सकेंगे।

दीर्घजीवन के लिए दूसरी आवश्यकता है चिन्ता से मुक्ति। जो व्यक्ति दीर्घजीवन का आकांक्षी है, उसे अपने आपको चिन्ताओं से मुक्त रखना और प्रसन्न चित्त रहना चाहिए। यह तभी हो सकेगा जब हम अपने पूरे प्रयत्न से अपना कार्य करें, किन्तु उससे प्राप्त होने वाले फल के प्रति अनावश्यक मोह न रखकर जो भी परिणाम हो उसके प्रति तटस्थ भाव रखें। मनुष्य तभी दुखी होता है, जब प्राप्त फल की अपने अभीप्सित फल से तुलना करता है और उसमें समानता नहीं पाकर उसे चिन्ता का विषय बना लेता है। जो फल मिले, उसे प्रसन्नता से स्वीकार करने वाला व्यक्ति ही सुखी और दीर्घजीवी होगा।

हमारे यहाँ एक उक्ति प्रचलित है कि 'बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुधि लेइ'। इस उक्ति पर आचरण करना भी दीर्घजीवन के लिए महत्वपूर्ण है। प्रायः बहुत से व्यक्ति अपनी वर्षगांठ प्रति वर्ष मनाते हैं। यह एक अच्छी परम्परा है। आप प्रतिवर्ष अपनी वर्षगांठ पूरे उत्साह से और ठीक रीति से मनाइए, परन्तु इस अवसर पर बीते हुए वर्ष का ब्यौरा लेने के बजाय हमें आने वाले साल का कार्यक्रम बनाना चाहिए। अतीत पर पछताना और हृदय को दुखी करना एकदम अनावश्यक है।

दीर्घ और स्वस्थ जीवन के लिए खान-पान के नियमों का पालन करना भी आवश्यक है। डा. पाल ड्युबेस के मतानुसार मनुष्य ही केवल एक ऐसा जीव है, जिस को यह ज्ञान नहीं कि जीना कैसे चाहिए। पशु कभी भी बिना भूख के नहीं खाएगा, जबकि मनुष्य दिन भर भूख न होने पर भी खाता रहेगा। शिष्टाचार के अनुसार यदि आप किसी से मिलने जाएँ, तो वह आपको खाने के लिए मजबूर करेगा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु यह कार्य शिष्टाचार नहीं, वरन् दीर्घजीवन के प्रति एक अक्षम्य दुराचार है, जो दीर्घायु में बाधक है।

इन उपायों के साथ और भी कुछ ऐसे साधन हैं, जो हमारी आयु को बढ़ा सकते हैं—जैसे कुछ समय हम अपने बड़प्पन को भूलकर छोटे बच्चों के साथ खेल सकते हैं, जो दीर्घ आयु के लिए बहुत उपयोगी हैं, जैसा आप जानते हैं, हमारे प्रधान मंत्री नेहरू जी बच्चों से घुल-मिल जाते हैं और उनका यह कार्य उनकी दीर्घायु का एक कारण सिद्ध हो सकता है।

प्राचीन समय में हमारे ऋषि योगासनों से दीर्घ आयु प्राप्त करते थे। हम भी किसी अनुभवी व्यक्ति से सीखकर इन आसनों से बहुत लाभ उठा सकते हैं या ताज़ी हवा में घूमना आदि सरल व्यायाम कर सकते हैं।

वैज्ञानिकों का कथन है कि मनुष्य का शरीर ऐसे तत्वों से बना है, जो अविनाशी हैं और पशुओं की भाँति मनुष्य भी बालिग होने की आयु से सात से चौदह गुना तक आयु जी सकता है। मनुष्य प्रायः १८ साल में बालिग होता है और इस हिसाब से वह १२६ साल से लेकर २५२ साल तक की आयु तक तो जी ही सकता है और यह आयु थोड़े से साधन, संयम, इच्छाशक्ति और सावधानी से प्राप्त की जा सकती है।

न्याय के देवता से

श्री डी. एच. लॉरेंस : अनुवाद श्री दिनकर

•

न्याय के हे देवता !
कब सिखाओगे मनुष्यों को
कि अपनी आप वे रक्षा करें ?
त्राण, वैसे तो उन्हें है मिला लाखों बार,
पर हर बार,
उनके त्राता ने उनको
बेचा है भरे बाज़ार !
न्याय के हे देवता,
रोक लो तुम रक्षकों को स्वर्ग में,
मानवों का नया त्राता अब न भेजो देव !
जब कोई त्राता मनुष्यों का
कहीं पर त्राण करता है,
बेच ही देता उन्हें अपने पिता के हाथ बस !
लोग रोते—
"त्राण तो हम पा गए,
पर हाय, भूखों मर रहे हैं !"
और वह कहता—
"बहुत-सी पक रही हैं कल्पना की पूरियाँ,
मेरे पिता के गेह में
तुम पेट भर खाना !"
लोग कहते—
"एक टुकड़ा दे नहीं सकते
हमें सामान्य रोटी का ?"
हुक्म वह देता—
"नहीं, बैकुण्ठ चलकर ही तुम्हें भोजन मिलेगा
और वह सामान्य क्यों,
अद्भुत, अमूल्य, अपूर्व होगा !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ पत्ते : कुछ फूल

चयन—श्री ब्रह्मदेव

पत्रों का असली अर्थ

आम आदमी जो किसी परिचित सम्बन्धी को पत्र लिखता है और उससे उसका जो उत्तर पाता है, उसे समझना सरल है; क्योंकि उस पत्र में जो शब्द लिखे रहते हैं, उनका एक ही अर्थ होता है, पर बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ और राज्य संस्थाएँ पत्रों का जो उत्तर देती हैं उनके दो अर्थ होते हैं—एक बाहरी, दूसरा भीतरी।

इस भीतरी अर्थ को समझना सरल नहीं है। प्रसिद्ध पत्र 'मैंचेस्टर गार्जियन' के एक प्रतिनिधि ने इन भीतरी अर्थों की विशेष खोज की है।

उसका कहना है कि यदि पत्र का उत्तर मिले कि "आपका मामला विचाराधीन है," तो समझ लें कि आपकी फाइल खो गई है।

यदि उत्तर मिले—"आपके पत्र पर विचार किया जा रहा है," तो समझ लें कि आपकी फाइल तलाश की जा रही है।

यदि उत्तर मिले—"आपका मामला शीघ्र विचारणीय है और आवश्यक उत्तर शीघ्र भेजा जाएगा," तो समझ लें कि फाइल एक क्लर्क की मेज से दूसरे क्लर्क की मेज पर चली गई है।

यदि उत्तर मिले—'आपके पत्र के सम्बन्ध में हम विशेष जाँच कर रहे हैं," तो समझ लें कि आपको उत्तर के लिए अभी लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

यदि उत्तर मिले—"आपके पत्र के लिए धन्यवाद," तो समझ लें कि ऐसे बेकार पत्र तो रोज ही सैंकड़ों मिलते हैं।

तीसरे दाँत

दाँतों के डाक्टर कहते हैं कि तीसरी बार दाँत निकलना सम्भव नहीं है, पर उत्तर प्रदेश के बहराइच जिले में, रूपईदिता थाने के रायपुर गाँव में १२१ वर्ष का एक बूढ़ा रहता है—परवर अली।

अप्रैल १९५९ में उसके सब दाँत तीसरी बार निकल आए हैं, जिनसे वह मजे के साथ चने चबा लेता है। इस बूढ़े के ६ पुत्र, २२ पोते-पोतियाँ और २२ ही परपोते-परपोतियाँ हैं—यह कुएं से पानी भरता और बिना सहारे चलता है।

घड़ी का उपयोग

एक मित्र की घड़ी अक्सर बन्द रहती है, फिर भी वे उसे नियमित रूप से हाथ में बाँधे रहते हैं। एक दिन उनसे पूछा—जब यह चलती नहीं, तो इसका उपयोग क्या है?

बोले—"घड़ी का उपयोग है हाथ पर बन्धे रहना, सुन्दर लगना। उसका उपयोग आदमी को नियमित जीवन सिखाना होता, तो देश में लाखों आदमी नियमित जीवन के होते।"

जरा रुक कर वे बोले—"भाईजान, देश का कोई बड़ा आदमी ऐसा नहीं, जिसके पास घड़ी न हो, पर क्या उनमें से किसी को आपने पार्टी, मीटिंग, उद्घाटन में कभी समय पर आते देखा है?"

खूबसूरत बेवकूफी

बेवकूफी की सब निन्दा करते हैं, पर वह खूबसूरत भी होती है, यह क्या आप नहीं जानते? फ्रैंकलिन की राय में सबसे खूबसूरत बेवकूफी ज्ञान को अत्यन्त बारीक कातना है।

अपराध

अपराध क्या है? इस प्रश्न का उत्तर कठिन है। गुलाम देश में देशभक्ति अपराध मानी जाती है, तो स्वतन्त्र देश में देशद्रोह!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप न चोर हैं, न लुटेरे, पर चोरी भी करते हैं, लूट भी! कैसे ? क्या ? कब ?

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

नयी पीढ़ी के एक कवि ने मुझे पत्र लिखा :

"मैं पिछले दो-ढाई साल से गीत लिख रहा हूँ। कोई सौ गीत होंगे मेरे पास, पर भिन्न-भिन्न पत्रों के द्वार खट-खटाकर भी मैं उन्हें प्रकाशित न करा सका। मैं सदा इनके लिए सम्पादकों को मन ही मन गालियाँ देता रहा और समझता रहा कि वे नये लेखकों की रचनाएँ नहीं छापते, पर आपने अपने पत्र में मेरा एक गीत छापा और उसमें इतने संशोधन किए कि मेरी आँखें खुल गई। मैं अपने गीतों की कमज़ोरियाँ समझ गया। आपका परामर्श है कि मैं सर्वोत्तम गीत रख लूँ और बाकी को फाड़ फेंकूँ। मैं इसके लिए तैयार हूँ, पर कठिनाई यह है कि मुझे अपना हर गीत कालीदास की शकुन्तला दिखाई देता है। किसे फाड़ूँ, किसे रखूँ ? चाहता हूँ, सब गीत लेकर आपके पास आ बैठूँ और वहीं यह काम करूँ।"

एक दिन, वे आ गए। शाम के समय मै उन्हें गांधीपार्क ले गया और दूर, नींबू के बाग में, एकदम एक तरफ एकान्त में जा बैठा। वे गीत पढ़ते, मैं राय देता।

अभी तीन गीत ही मैंने सुने थे, कि दूर बैठे एक सज्जन अपनी जगह से उठ कर हमारे निकट आ गए और आ क्या गए, धीमे-धीमे, चील की तरह हमारे चारों ओर मंडराने लगे। पैर उनके गति-शील और आँखें हम पर अडिग मुर्दे पर टिकी चील की ही आँखों की तरह।

कुछ देर मंडराने के बाद, एक चक्कर में वे ठिठके और दूसरे में हमारे पास आ बैठे। मुझे बुरा लगा और कवि की तल्लीनता खंडित हो गई। मैं सोच ही रहा था कि इन्हें क्या कहूँ कि वे कवि से बोले—"आप तो शायर मालूम होते हैं।"

कवि चुप रहा, पर वे चुप न रहे। बोले, "आप तो मुशायरों में खूब जमते होंगे। आपके गले में गज़ब की लोच है।

कवि चुप रहा, पर वे चुप न रहे। बोले—"पब्लिक चहक को पसन्द करती है और चहकने वाले के सामने बड़े-ऊँचे शायरों तक को चोंच दबा कर बैठना पड़ता है।

कवि चुप रहा और मैंने सोचा कि इस भूत से कैसे पीछा छुड़ाऊँ, पर वे चुप न रहे। बोले, "एक बार मुरादाबाद में एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत शानदार मुशायरा हुआ।"

पता नहीं, वे कब तक उस मुशायरे का किस्सा सुनाते, लेकिन कवि का नया खून उफन उठा और हाथ से जाने का इशारा करते हुए उसने कहा–"अच्छा, अब आप मेहरबानी कीजिए और हमारा एकान्त न लूटिये।"

वे झटके से उठे और लटके से आँखों को तरेरते और बुदबुदाहट में गुस्सा बिखेरते चले गए।

मैंने कहा–"तुमने एकान्त लूटने की बात खूब कही।"

उत्तर मिला, "जी हाँ, एकान्त भी तो आदमी का धन ही है और उसमें इस तरह दखल देना, उसे लूटना नहीं तो और क्या है ?"

मुझे उनकी बात पसन्द आई और हम फिर गीतों में लग गए, पर मेरे भीतर वह बात घुमड़ती रही और अनेक दृश्य मेरी आँखों में घूम गए।

❀ ❀ ❀

चुनाव के दिन थे।

काश्मीर के प्रधान मंत्री श्री गुलाम मुहम्मद बख्शी का हमारे नगर में भाषण होना था। विराट सभा जमी थी। वे अभी आए न थे।

सभापति ने मेरा नाम पुकारा और प्रधान मंत्री के आने तक, मैं लोगों को चुनाव की बातें समझाता रहा और वे आये, तो बात को ढंग से समाप्त कर, एक तरफ आ बैठा। अब मुझे उनका भाषण सुनना था, उसके अंश लिखने थे, इस लिए मंच के एक कोने में मैं बैठ गया।

मेरे पास ही, एक लिपी-पुती महिला बैठी थीं। किसी राजकर्मचारी की पत्नी। बोलीं–"आप तो बहुत अच्छा बोलते हैं ?"

मैंने उन्हें शिष्टाचार का धन्यवाद दिया और भाषण सुनने लगा, पर वे तुरन्त बोलीं—"आपको विश्वास है कि बख्शी, शेख अब्दुल्ला की तरह देश को धोखा नहीं देगा ?"

बातचीत का यह समय नहीं था, इसलिए मैंने दीवार खींची—"आपको विश्वास है कि आपका बेटा अफसर ही होगा ?"

अवरोध पा वे कुछ देर चुप रहीं। फिर बोलीं—"आप स्विट्ज़रलैंड गए हैं ?" मैंने आवाज़ पर कन्ट्रोल रखा और सिर हिलाया। तो बोलीं—"स्विट्ज़रलैंड कश्मीर से बहुत ज्यादा सुन्दर है।"

ज़रा झल्लाकर मैंने पूछा—"आप गई हैं स्विट्ज़रलैंड ?"

बोलीं—"नहीं !"

तब मैंने पूछा—"और काश्मीर गई हैं ?"

बोलीं—"इस साल जाने का इरादा है।"

मेरे भीतर बहुत ज़ोर से हँसी उमड़ी, पर मुश्किल से उसे रोक मैं उनसे दूर जा बैठा। कवि की भाषा में, यह महिला मेरा एकान्त ही तो लूट रहीं थीं, क्योंकि सभा में स्वयं भाषण न सुनना और बातचीत, हल्ला या अव्यवस्था फैलाकर दूसरों को भाषण न सुनने देना, एकान्त पर डाका डालना ही तो है।

सभा में एकान्त ? अच्छा प्रश्न है और मेरा उत्तर है—हां, सभा में भी एकान्त होता है, क्योंकि वहाँ बैठा हर आदमी अपने में समाया रहता है, उसकी दिलचस्पी अपने पास वालों में नहीं, भाषण सुनने में होती है।

उस दिन अखिलेश जी और उनकी पत्नी श्रीमती भगवती सिनेमा गए। वे कभी-कभी ही सिनेमा जाते हैं। सचाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह है कि अखिलेश जी से भगवती तकाज़ा न करें, तो उन्हें यह याद ही न आये, कि शहर में पांच-छः सिनेमाघर भी हैं। सिनेमा से लौटते समय, तरुण जोड़े उत्साह में होते हैं, पर उस दिन भगवती नाराज़-सी थी।

"क्यों, क्या बात है?" मैंने पूछा, तो बोली—"मुँह में ताला लगा कर सिनेमा जाने से क्या फायदा पिता जी?"

मैंने सोचा, दोनों कुछ रूठे हैं शायद, पर, अखिलेश एकदम खुश खुर्रम थे, तो पूछा—"कैसा ताला था सिनेमा में?" भगवती ने दिल का गुब्बार बिखेरा—"ये अपने एक दोस्त से बात करते रहे, मैं गुम-सुम बैठी रही।"

अखिलेश ने बताया—"टिकट लेकर हम हाल में घुसे तो बायीं तरफ भटनागर बैठा था। वह बहुत बातूनी है और मिल कर भूत हो जाता है, इसलिए उससे आँख बचाकर मैं दाहिनी तरफ जा बैठा, पर उसने मुझे देख लिया, तो पहले हाथ हिलाया, फिर मुस्कराया और तब मेरे पास आ बैठा और पूरे तीन घण्टे बकता रहा।"

भगवती की नाराजी सही थी, क्योंकि उसका एकान्त लूट लिया गया था। जो पति-पत्नी घर और जीवन के संघर्षों से थक कर, कुछ देर के लिए सिनेमा के मनोरंजक वातावरण में आए हैं, उनके बीच में आ कूदना उनके एकान्त को लूटना ही है।

दिल्ली में एक विशाल प्रदर्शिनी हो रही थी। मैं एक मित्र के घर अतिथि था। उस दिन हम लोग प्रदर्शिनी देखने गए, तो टिकट लेकर बड़े द्वार के भीतर घुसे ही थे कि उनके एक परिचित मिल गए। ये रिश्ते और उम्र में बड़े थे। मित्र की पत्नी बराबरी से पीछे हो गई, पर वे ऐसे जमे कि फिर अन्त तक जमे ही रहे और मेरे मित्र के परिवार का पूरा एकान्त लुट गया।

डाकू कितने निर्दय होते हैं कि सच उनसे भय तो मानते ही हैं, घृणा भी करते हैं, पर हम मित्र होकर भी डाकू ही तो हो जाते हैं, जब किसी का एकान्त लूटते हैं।

और एकान्त के चोर! हाँ, एकान्त के चोर भी होते हैं।

रेल में चढ़े, सामान ऊपर रखा, अपनी जगह बैठे, पढ़ने को दैनिक निकाला, खोलकर आँखों के सामने फैलाया और पहला ही शीर्षक पढ़ा कि बाएँ हाथ बैठे सज्जन हमारी ओर झुके-झुके अखबार पढ़ने लगे। दाएँ हाथ के सज्जन ने झुकना ठीक नहीं समझा, वे हमारी तरफ सरक आए और इस तरह सटकर बैठ गए कि लगा हमारे बाएँ हाथ रेगिस्तान का ऊँट है, तो दाएँ हाथ, वन-वनान्तर का हाथी! मामला यहीं तक हो, तो निबट लें, सह लें, पर हमारे सामने की सीट पर बैठे तीन सज्जन भी हमारा दैनिक पढ़ रहे हैं और उनमें से एक ने तो हमारे झुके दैनिक के एक सिरे को अपने हाथ से इस तरह थाम लिया है, जैसे काली के मन्दिर में जाते बकरे का कान!

अब बताइए कि एकान्त के इन सब चोरों के बीच, हम आज के समाचारों में कैसे तल्लीन हो सकते हैं।

और हाँ, ये पाँच ही नहीं हैं, एक सज्जन ऊपर के तख्ते पर कोहनी के बल लेटे, हमारा दैनिक पढ़ रहे हैं और पूछ रहे हैं कि क्यों साहब, ये अमरीका-रूस दुनिया को उजाड़ कर ही दम लेंगे क्या? और सामने की खिड़की के पास बैठे सज्जन कह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं—"पढ़कर इधर भी इनायत कीजिएगा भाई साहब !"

दिनभर की सामाजिक व्यस्तता के बाद- शाम के कुछ क्षण मिलें, तो राजकीय उपवन के एक एकान्त कुंज में जा बैठिए और दिमाग को ढीला छोड़ कर शांति की साँस लीजिए, पर अभी आपने मुश्किल से पाँचवा साँस लिया है कि कोई दूर से आपको पुकार रहा है–"क्यों साहब, यहाँ छिपकर आप किसका इन्तज़ार कर रहे हैं ?"

यह माधो बाबू की आवाज़ है, जो दूर से आपको देखकर साइकिल से उतर आए हैं और अब आपकी ही तरफ़ बढ़े आ रहे हैं। माधो बाबू अनपढ़ नहीं, एक इन्टर कॉलेज में प्रोफेसर हैं। अब ये आपसे बेमतलब के दस-बीस प्रश्न पूछेंगे और आपके एकांत-धन की भरपूर चोरी करेंगे।

कुमारी डेज़ी ऑलीवर अपने एक धर्मभाई से साइकिल सीखने पार्क में गई। ज़रा-ज़रा से बच्चे साइकिल-मास्टर बने फिरते हैं, पर यह जवान लड़की साइकिल की अ आ इ ई पढ़ रही थी। ऐसी स्थिति में, झेंप-संकोच का भाव स्वाभाविक है, पर जो पास से निकला खड़ा हो गया, जैसे यह कोई तमाशा हो और एक सज्जन तो चलते-चलते लड़की का चप्पल ही पास के पेड़ पर टांग गए। ये सब शिक्षित थे, सभ्य थे। थे, पर एकान्त-चोर भी तो, पक्के एकान्त चोर !

भाई कौशलप्रसाद जैन के पुत्र का विवाह था। सहारनपुर से मैं और लाला वेणीप्रसाद जैन भी उसमें गए थे। दूसरे दिन, हम दोपहर को भोजन करने चले, तो बाजेवाले सजकर धमधमा उठे। वेणीप्रसाद जी ने उन्हें रोका—"ऐ, बाजे रख दो और खाना खाने चलो !"

वर, बारात और बाजे का अखण्ड सम्बन्ध है, इसलिए कइयों ने अद्भुत रस की मुद्रा में उनकी तरफ देखा, तो वे बोले—"गरमी की इस दोपहरी में, रास्ते के दोनों तरफ, जो लोग अपने-अपने घरों में शान्ति से बैठे-लेटे हैं, क्या उन्हें बेचैन किए बिना हम खाना नहीं खा सकते !"

उनके प्रभाव से सब उनकी बात मान गए, पर यह सचमुच एक गम्भीर प्रश्न है कि समय-असमय, बाजों, ग्रामोफोन रिकार्डों, ऊँची आवाज़ के रेडियो, लाउडस्पीकरों, कथा-कीर्तनों और हार्नों से समाज के शान्त लोगों का एकान्त लूटना, चुराना, क्या धनदौलत लूटने-चुराने की तरह ही अपराध नहीं है ?

डा० भीखनलाल आत्रेय ने अमरीका-यात्रा से लौटकर बताया था–"वहाँ चलती रेलों में, जवान लड़के-लड़कियाँ पास-पास बैठे घुल-घुल कर बातें करते रहते हैं, पर पास बैठे यात्रियों में कोई उनकी तरफ नहीं देखता, घूरता और इस प्रकार भीड़ में भी उन्हें एकान्त मिल जाता है।"

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा ने अपनी विदेश-यात्रा से लौटकर बताया कि–"वहाँ तेज़ रफ्तार से मोटरें दौड़ती रहती हैं, पर कभी कोई हार्न नहीं बजाता और पों-पों नहीं करता।" सचमुच सभ्य मनुष्य और सभ्य देश, दोनों की भरपूर ज़िम्मेदारी है कि दूसरों के एकान्त की रक्षा करें।

कानून का आदेश है—

दूसरों का धन न लूटिये, न चुराइए !

नैतिकता का सन्देश है—

दूसरों का एकान्त न लूटिए, न चुराइए !

卐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई पीढ़ी के गीतकार-३

प्राध्यापक श्री देवेन्द्र 'दीपक'

श्री रुद्रदत्त शुक्ल 'शेखर'

卐

कुछ लोग फूलों-शूलों में केवल फूलों को ही बीनते हैं कि उनकी झोली फूलों से भरी-पूरी और सुगन्ध से महकती रहे। कुछ लोग ऐसे भी हैं कि शूलों को ही बीनते चलें कि राह में चलने वालों के पैरों में न चुभें और उनके पाँव लहू-लुहान होने से बच जाएँ। इन दोनों बातों के आगे की बात यह है कि कवि शेखर एक ऐसा ही इन्सान है, जो दुनिया में फूल नहीं, शूल बीनता है, पर चमत्कार यह है कि सावन को रेगिस्तान से लाता है, मधुवन को वीरानों से लाता है और फूल को पतझर से—

तुमने जाना नहीं—फूल मैं पतझर से पाता हूँ,
तुमने जाना नहीं—अमृत मैं मरुथल से लाता हूँ।

इसीलिए तो उसे पतझर के गिरे-बिखरे पत्तों तक से गहरा और हार्दिक प्यार है-

मत कुचलो इनको पैरों से,
ये प्रिय पतझर के पत्ते हैं।

शेखर शक्ति और विश्वास के कवि हैं। मैं उनकी जवानी और जवाँमरदी का प्रशंसक हूँ। मुझे उनके आत्म-विश्वास से प्यार है। जो असम्भव है, वही शेखर की भाषा में सम्भव है, इसीलिए तो शेखर की गणना उनमें है, जो लहरों को ही जलयान बना लेते हैं—

मैं गाता हूँ, तो पतझर खिल जाते हैं;
खण्डहर के खोए सपने मिल जाते हैं,
मैं निशि दिन काँटों पर चलकर मरु में फूल खिलाता,
स्वयं तृषा से घायल हूँ, पर बादल बनकर आता!

शेखर की शक्ति का माधुर्य यह है कि वह न्याय की रक्षा के लिए है—वह उनमें है, जो 'अन्यायों पर उल्का बरसाएँगे।'

शेखर उनमें नहीं, जो आँख मीचकर चलते हैं। शेखर की देह दुःखों की राजधानी भले ही रही हो, किन्तु उसके मन पर कोहरा नहीं है, उसने जीवन की किताब को बड़े मनोयोग पूर्वक पढ़ा है। उसके स्वर सबको जीवन देते हैं; क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका तर्क है—'मैं दुनिया का दिल पढ़कर गाता हूँ।' उनकी और उनके काव्य की सारी शक्ति का सूत्र मानों यही एक पंक्ति है।

प्यार मदिरा नहीं कि पीकर आदमी गुच्च होजाए, अपने को ही भूल बैठे। प्यार तो एक अमृत है, जो मृतकों में प्राण फूँक दे, लेकिन ऐसा प्यार—प्यार ही होता है, रूप का दीदार या वासना का त्योहार नहीं। शेखर ने ऐसे ही प्यार को अपना पाथेय बनाया, जिसे पाकर आदमी मरने की नहीं, जीने की कामना करे। उनके प्यार की प्यार-भरी परिभाषा अलग ही है—

प्यार कुसुमों की निरंकुश गंध की सौगन्ध-सा है,
प्यार इस नश्वर-अनस्थिर सृष्टि पर प्रतिबन्ध-सा है,
प्यार तो इन्सान से भगवान के सम्बन्ध-सा है।

प्यार प्यार है, वह व्यापार नहीं है। उसका मूल्य है उसकी समर्पण-तीव्रता और शेखर ने मानों उसे पा लिया है। इसी से उसके गीतों में लालसा का स्वर नहीं, भावना की गूञ्ज है—

गीत मैं लिखता रहूँगा—प्राण, तुम गाओ न गाओ।
मैं यहाँ बैठा तुम्हारे नाम की धूनी रमाए,
राह देखूँगा उमर भर—प्राण, तुम आओ न आओ।

शेखर के गीतों के भाव ही सादे नहीं, उनका लिबास भी सहज है। उनके कुछ विशेषण बड़े नूतन और भाव व्यंजक होते हैं—यथा कागजी रूप, घायल रोग, गुमसुम नयन आदि। उनकी कुछ उपमाएँ भी बड़ी ही अनूठी और अनुपम हैं। एक छन्द देखिए—

है सपनों-सा अस्थिर यह मधुरिम
छाया-सी है रसभरी रूप की दुलहन
है कमल-पत्र के तुहिन विन्दु-सा कोमल
मेरी साधों का सुन्दर सुन्दर यौवन।

शेखर की भाषा स्पष्ट भी है और गूढ़ भी—स्पष्ट इस अर्थ में कि वह सब के लिए गम्य है और गूढ़ इसलिए कि उसमें भावों की निधियाँ भरी पड़ी हैं। उनकी वाणी में कोकिल का कूजन है, तो अलि का गुंजन भी, अग्नि का ताप है, तो हिमानी का शीत भी और इस तरह वह अपने ही शब्दों में 'स्वर का राजा' है।

शेखर नई पीढ़ी का प्रतिनिधि गायक है, जो अपनी भूलों को स्वीकार करे, तो अपने शूलों का परिहार भी और तब अपने पर अधिकार कर कुछ इस तरह जिए कि उसके जीने में धरती की विनय है, तो हिमालय का गर्व भी। अपनी जगह खूब कि बस खूब ही!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने पढ़ने के कमरे में

जीवन जीने की कला

शक्ति से जो कार्य नहीं होता, वही कार्य बुद्धि से सुगमता के साथ हो जाता है। शक्ति से बुद्धि अधिक महत्वपूर्ण है।

किसी बन में एक मृत गज पड़ा था। घूमता-घूमता एक सियार उधर आ निकला। मन में सोचा—यह मेरे लिए यथेष्ट भोजन है, बहुत दिनों तक काम चलेगा। वह इस प्रकार सोच ही रहा था कि एक सिंह भी वहाँ आ पहुँचा। सियार बड़ा धूर्त होता है।

सिंह ने पूछा—"तू यहाँ क्यों बैठा है?"

"मामा जी, मैं आपको भोजन के लिए निमन्त्रण देता हूँ।" सियार ने सिंह से कहा। सिंह ने पूछा—"यह किसका शिकार है?"

सियार ने चालाकी से कहा—"व्याघ्र का है।" यह सुन कर सिंह वहाँ से चल पड़ा; क्योंकि सिंह अपने पुरुषार्थ का ही खाता है, किसी दूसरे के श्रम का नहीं।

कुछ समय बाद वहाँ व्याघ्र आ गया। उसने भी पूछा—"यह किसका शिकार है?" सियार ने सियारी से काम लिया। बोला—सिंह का है। वह अभी-अभी पानी पीने गया है।" यह सुन कर व्याघ्र वहाँ से भाग खड़ा हुआ। अभी विघ्न-परम्परा निःशेष नहीं हुई थी। थोड़ी देर बाद ही वहाँ एक काक आ गया।

सियार ने सोचा—यदि इसे कुछ नहीं दूँगा, तो यह काँव-काँव करके अन्य बहुत कागों को यहाँ एकत्रित कर लेगा और फिर काकरव से यहाँ अन्य बहुत से विघ्न-कर जीव एकत्रित हो जाएँगे। इसे थोड़ा देना ही अच्छा है, मुसीबतों से बचाव हो जाएगा। उसने एक टुकड़ा उसे फेंक दिया।

इतने में ही वहाँ एक दूसरा सियार आ टपका। पहले सियार ने उस पर प्रहार करके उसे भगा दिया और सम्पूर्ण मृत गज पर आधिपत्य जमा लिया।

यह तो एक रूपक है। समाज में सभी प्रकार के मनुष्य होते हैं। उत्तम, मध्यम, अधम और सदृश। उत्तम को विनय से, मध्यम को भेंट से, अधम को थोड़ा देकर और सदृश को बल से अपने वश में करने की कला सीखे बिना जीवन सुखी और समृद्ध नहीं बन सकता। यह एक नीति का सिद्धान्त है—

"उत्तमं प्रणिपातेन, शूरं भेदेन योजयेत्।
नीचमल्पप्रदानेन, सदृशं च पराक्रमैः।"

['जैन जगत' में श्री विजयमुनि]

सिद्धि का आधार

प्रातः का सुरभित पवन चम्पा के कल-कल स्वर के साथ निनाद कर रहा था। तट पर स्थित पवित्र विहार से "बुद्धं शरणं गच्छामि", की लहरें पवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में तरंगित हो रही थीं। विहार के मध्य भगवान बुद्ध अभय मुद्रा में बैठे थे।

उनके सम्मुख उनके श्रावक बैठे उनके वचनामृत का पान कर रहे थे।

एक श्रावक ने अनुनय किया—

"भंते! यह जगत् क्या है? जीवन क्या है?"

तथागत ने किंचित् मुस्कराते हुए कहा आयुष्मान! सुनो—

"अभिलाषा के गगनचुम्बी प्रासादों का निर्माण करता हुआ, "मान्धाता" स्वर्ग के पारिजात-वन में पहुँचा। उस वन के सौन्दर्य को देख पाषाण भी स्तब्ध होते थे, फिर कामना के जाल में जकड़ी हुई मान्धाता की प्रज्ञा क्यों न दुर्बल होती। उस वन में कल्पतरु के नीचे जाते ही कामना की सरिता से लहरों का निकलना प्रारम्भ हुआ।"

"इस सौन्दर्य के प्रत्यक्ष उपवन में, जिसके कण-कण से लावण्य झरता है, यदि एक विलास-भवन होता।"

तुरन्त ही उसकी कामना-पूर्ति के लिए एक शयनागार उपस्थित हो गया।

दूसरे क्षण कामना की दूसरी हिलोर उठी।

"इस मंजुलता के प्रीति-भवन में रूप-माधुरी के कणों को चारों ओर बिखेरने वाली कहीं रति-रूप रम्या नर्तकियाँ होतीं....."

शीघ्र ही इन्द्र की अप्सराओं को मात करती हुई नर्तकियाँ मान्धाता की कामनापूर्ति के हेतु प्रस्तुत हो गईं।

मान्धाता का अन्तर-घट अहंभाव से भर गया। मैं सर्वसुखी हूँ।

दूसरे ही क्षण भय ने उसके हृदय को विकम्पित किया। ...कहीं इन्द्र को मेरे सुखों का पता न लग जाए। कहीं ईर्ष्या से भरकर उसने मुझे पारिजात वन से निष्कासित कर दिया तो?

दूसरे ही क्षण मान्धाता के सम्मुख न वह ऐश्वर्यशाली स्वर्ग था, न वह कल्पतरु ही; वह स्वयं शत-शत अंशों में छिन्न-भिन्न हो गया।"

तथागत आगे बोले—"वत्स यह जगत् ही कल्पतरु है। यह जीव ही मान्धाता है। यहाँ जो जैसा संकल्प करता है, वैसी ही स्थिति पाता है।"

['भारती' में श्री वेंकटराव 'प्रवाही']

दो हीरे

(१)

मैंने विचार किया है—कई दिनों और
घण्टों तक,
क्या कभी ऐसा संसार होगा
जिसमें कि मैं जीवित नहीं रहूँगा?
मैं एक भी ऐसे नए दिन की कल्पना
नहीं कर सकता
जिसमें कि मैं जीवित नहीं रहूंगा
किसी-न-किसी रूप में।
मैं अपने बिना
शरद के रंगीन सांध्य बादलों की कल्पना
नहीं कर सकता,
मैं एक भी ऐसे प्रभात की कल्पना
नहीं कर सकता,
जिसमें कि मेरा हृदय उद्बुध नहीं
होगा।
मेरा शरीर मिट्टी हो जाएगा,
परन्तु मैं यहाँ किसी-न-किसी रूप में
अवश्य विद्यमान रहूँगा!

(२)

जीवन—बुरा से बुरा होने पर भी—
इतना बुरा नहीं है
कि जीवित रहना असम्भव होजाए।
जीवन अच्छे से अच्छा होने पर भी
इतना अच्छा नहीं है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि जीवित रहना सुगम होजाए।

—गैब्रियल हीटर

['अजन्ता' में डॉन ब्लैंडिंग और गैब्रियल हीटर]

कुन्दन का कुआ

कुन्दन के कुए को कौन नहीं जानता। उसकी अपनी कहानी है। चुनार (मिर्ज़ापुर) से चलकर रेल के पुल से गुजरती एक सड़क अहरौरा की ओर जाती है। चुनार से लगभग एक मील के फ़ासले पर कुन्दन का घर है।

उसे पीने के लिए पानी दूर से लाना पड़ता था। आसपास कोई छायादार जगह और कुआ न था। जेठ की दुपहरी में राहियों को कहीं पानी न मिलता था। कुन्दन ने एक कुआ खोदने की ठान ली। उसके पास पैसा नहीं था, पर उसे हिम्मत थी अपने बाजुओं पर।

उसने खुदाई शुरू की। धीरे-धीरे गढ़ा गहरा होता गया और उसका उत्साह बढ़ता गया। वह दिन भर मिट्टी खोदता और उसकी स्त्री-बच्चे मिट्टी बाहर फेंकते। आखिर कुन्दन की तपस्या पूरी हुई। गढ़े से शीतल जल का सोता फूट पड़ा।

कुआ तो खुद गया, पर समस्या आई उसे बाँधने की। बाँधने के लिए सामान चाहिए, पर उसने हिम्मत न हारी। एक पेटी पर 'दान-पेटिका' लिखकर उसे सड़क के किनारे रख दिया। आते-जाते लोग धर्म कार्य के लिए इकन्नी-दुअन्नी उसमें डाल देते।

एक दिन संयोगवश उसी सड़क से जिलाधिकारी गुज़रे। कुन्दन अपनी स्त्री और बच्चों के साथ हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। अधिकारी ने कार रोक दी और पूछा—"क्या चाहते हो?"

"पहले सरकार नीचे उतर आएँ, तो मैं अर्ज़ करूँ।" कुन्दन ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

अधिकारी कौतूहलवश नीचे उतरे। कुन्दन ने उन्हें वह कुआ दिखाया और कहा—"श्रीमान! गढ़ा तो मैंने खोद दिया। जो मैं कर सकता था मैंने कर दिया। अब इसे पटवाना मेरे बस का नहीं।"

अधिकारी कुन्दन के साहस को देख कर बहुत खुश हुए। उन्होंने भी दान-पेटिका में कुछ डाला।

इस तरह जब काफी पैसे इकट्ठे हो गए, तो उसने पत्थर मंगवा कर कुआ बाँधना शुरू कर दिया। संयोगवश इसी बीच पास में ईंटों का भट्टा लग गया, जिससे उसका काम और आसान हो गया। जल्द कुआ तैयार हो गया।

अब जब भी मैं उस रास्ते से गुजरता हूँ, तो कुन्दन के साहस की कहानी आँखों के सामने घूम जाती है।

['सेवाग्राम' में श्री रामनारायण गोठी]

पारिवारिक शान्ति

पारिवारिक लड़ाई-झगड़े कम करने के कुछ व्यावहारिक सूत्र ये हैं—

(१) दूसरे के पक्ष और दृष्टिकोण को सदा महत्व दो।

(२) वस्तुओं और आदर्शों का उचित मूल्यांकन करो। कम से कम छोटी चीजों के लिए मत लड़ो।

(३) पूर्व निर्णयों से काम न लो।

(४) अपने स्वभाव को यथासम्भव लचीला और अनुकूलनशील बनाओ।

(५) अपने जीवन में घृणा की अपेक्षा प्रेम को अधिक महत्वपूर्ण स्थान दो।

(६) जो अपने पर आश्रित हों उनके आश्रित भाव को अपनी उपेक्षा द्वारा ठेस मत पहुँचाओ।

(७) दूसरे का जी दुखा कर उनसे काम लेने की अपेक्षा अपना काम स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लो।

(८) अपनी भाषा को मधुर और संयत बनाओ!

(९) अपने समय को काव्य-कला आदि साम्यवर्द्धक व्यसनों में लगाओ।

(१०) धन और आदर्शों से भी जन को अधिक महत्ता देना सीखो।

(११) अपने अहं को संकुचित कर सदा विनय परायण रहो।

(१२) अपनी शक्तिपर गर्व मत करो, यदि करो तो दूसरों को लाभ पहुँचाने की शक्ति पर न कि दूसरों को हानि पहुँचाने की राक्षसी शक्ति पर।

[सा० हिन्दुस्तान में श्री गुलाबराय]

चीन देश की कहावतें

दस साल सदाचारी रहना काफी नहीं, एक दिन दुराचार करना नाकाफी नहीं।

अच्छा सीखने के लिए हज़ार दिन भी कम; बुरा सीखने के लिए एक घंटा भी बहुत।

अच्छा आदमी तीन गाँवों को सहारा देता है; अच्छा कुत्ता तीन घरों को।

जैसे दूसरों का दोष देखते हो, अपना भी देखो; जैसे अपने को माफ करते हो, दूसरों को भी माफ करो।

दुर्गुणों को तुच्छ समझकर उनका आचरण न करो, सद्गुणों को तुच्छ मान कर उनका त्याग न करो।

भूखों मरो, पर चोरी न करो; उकता-कर मरो, पर अदालत की सीढ़ी न चढ़ो।

जो भाजी के डंठल भी खाना जानता है, वह सैकड़ों काम बना सकता है।

जो क्रोध की एक घड़ी में धीरज से काम लेता है, उसे पछताने के सौ दिन देखने नहीं पड़ते।

चकमक को भी घिसने से चिनगारी निकलती है, पड़ा रहने दें तो धुआं भी नहीं निकलता।

पहाड़ चढ़े सो मैदान देखे।

निश्चयहीन मनुष्य और बिना पानी की तलवार, दोनों बराबर हैं।

दाहिनी दीवार की मरम्मत के लिए बायीं दीवार तोड़ी नहीं जाती।

बहुत बोलो तो मुसीबत; बहुत खाओ, तो बदहजमी।

अच्छे शब्द का मिलना कठिन; खराब शब्द का देना सरल।

लड़के-बच्चे सद्गुणी हों, तो धन को क्या करना है? लड़के-बच्चे दुर्गुनी हों तो धन को क्या करना है?

संतोषी गरीब भी सुखी; असंतोषी अमीर भी दुखी।

कपड़े नए अच्छे; मित्र पुराने।

स्वच्छ दर्पण के बिना स्त्री अपने मुँह का रंग ठीक से देख नहीं पाती, सच्चे मित्र के बिना पुरुष को अपनी भूलों का पता नहीं चलता।

पानी बहुत, तो मछली नहीं; आदमी बहुत चौकन्ना तो अनुभव नहीं।

कुएँ में पैठ कर आसमान देखो, तो कितना दीखे?

सौ चीजों के बारे में सुनने वाले की अपेक्षा एक चीज को हस्तगत करने वाला उत्तम।

बढ़िया ढोल को जोर से पीटना नहीं पड़ता।

['जीवन साहित्य' में श्री काशीनाथ त्रिवेदी]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक-परिचय

अनाथों के नाथ

अमरीका में एक रोमन कैथोलिक पादरी हुए हैं। उनका नाम है ऐडवर्ड जोज़फ फ्लैनेगन। फ्लैनेगन सभी को समान रूप से प्रिय थे। आपने अनाथ बालकों के लिए एक बालनगर की स्थापना की थी। इसमें सभी जाति-वर्ग के अनाथ बालक निवास ही नहीं, फ्लैनेगन का प्रेमपूर्ण व्यवहार भी पाते थे।

उक्त पुस्तक उनके अंगरेज़ी में लिखे गए जीवन-चरित्र का हिंदी अनुवाद है। अनुवादक हैं श्री केशव सागर। स्वर्गीय पादरी के उच्च जीवन की उदात्त भूमियों की जानकारी के लिए पुस्तक पठनीय है।

१९२ पृष्ठों की यह पुस्तक २) रु. में इण्डियन यूनिवर्सिटी पब्लिशर्स दिल्ली से सुलभ है।

मन के बन्धन

मानव-मानव को गले से कैसे लगाए— जबकि उसके बीच में जाति, वर्ग, वर्ण, लिंग आदि की अनेक ऊँची दीवारें खड़ी हों। हर व्यक्ति प्रेम करता है किन्तु वह भी सीमाओं में बचाकर, उससे आगे मानों प्रेम जैसे कोई चीज नहीं है। 'मन के बन्धन' के नाटककार गाल्सवर्दी ने इन्हीं प्रश्नों को बड़ी सफाई से उठाया है।

नाटक दुःखान्त है और अन्त में डैन्सी की करुणापूर्ण मृत्यु पाठक के मानस-क्षितिज पर एक गहरे कोहरे को घनीभूत करती है।

हिन्दी के तपस्वी साधक डा० रांगेय राघव ने इस नाटक को हिन्दी में प्रस्तुत कर एक सुन्दर कार्य किया है।

१३६ पृष्ठों की अच्छी तरह छपी-बँधी यह पुस्तक २.५० में शिक्षा भारती, १ रामकिशोर रोड, दिल्ली से प्राप्य। आवरण सादा और सुन्दर है।

भगवान बुद्ध की आत्म कथा

कुछ लोग मात्र चिन्तक होते हैं और कुछ मात्र कलाकार, लेकिन कुछ में दोनों का संयोग होता है– मणि कांचनमय संयोग। परदेशी एक ऐसा ही विशिष्ट व्यक्ति है जिसके पास एक चिन्तक की दृष्टि है तो एक कलाकार की सृष्टि भी। इसीलिए वह जो कुछ लिखते हैं उसमें चिन्तक की चतुराई होती है तो कला की सुघराई भी।

'भगवान बुद्ध की आत्मा' उनकी ही कृति है। भगवान बुद्ध ने कभी अपनी आत्म कथा नहीं लिखी लेकिन श्री परदेशी ने बड़े परिश्रम और कठोर साधना के सहारे उनकी यह आत्म कथा प्रस्तुत की है। परदेशी ने बुद्ध के मानस में होने वाले द्वन्द्व का मार्मिक रूप में चित्रण किया है। बुद्ध के जीवन और जीवन-तत्व को नई दृष्टि से देखने-परखने के कारण आत्म कथा में युग-सत्य की वाणी मिली है।

भाषा काल-वैभव से सम्पन्न है तो शैली भाव-वैभव से ओत-प्रोत।

संक्षेप में यह कि पुस्तक मुझे पसन्द आई है और मैं इसे पठनीय ही नहीं, संग्रहणीय भी समझता हूँ।

बड़े आकार के १९० पृष्ठों की अच्छी तरह मुद्रित-ग्रथित इस पुस्तक का मूल्य ४ रुपये। आवरण मन-भावन है।

वैशाली

धूमकेतु एक ऐसे गुजराती लेखक हैं जिन्होंने भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुप्तयुग को आधार मानकर भरपूर कथा साहित्य की रचना की है। इस कथा-साहित्य के माध्यम से उन्होंने भारत की महान संस्कृति के समुज्ज्वल पक्ष को विविध रूपों में प्रस्तुत किया है। नगरों में श्रेष्ठ वैशाली नगर और सुन्दरता में अन्यतम वैशाली की नगर-वधू की चर्चा भारतीय इतिहास का प्रमुख आकर्षण रहा है। धूमकेतु ने इस उपन्यास में वैशाली के वैभव को यों अंकित किया कि वह चित्रवत हो गया है।

'वैशाली' का हिन्दी अनुवाद तरुण-साधक किशोरी रमण टण्डन ने किया है।

पृष्ठ संख्या २८८, छपाई सुन्दर-शुद्ध, बँधाई मज़बूत और मूल्य ५.५०।

उक्त दोनों पुस्तकें वोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स बम्बई से प्राप्य हैं।

डाक्टर

विष्णु प्रभाकर से उस दिन जब सहारनपुर में मिला तो उनकी सादगी का कायल होगया और आज उन विष्णु प्रभाकर को पढ़ रहा हूँ तो उनकी समझदारी का कायल हो रहा हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक उनकी एक श्रेष्ठ नाट्य-कृति है जिसे उन्होंने रंगमंच की सीमाओं का विचार करके रचा है। उनका मत है कि 'नाटक लिखा है तो खेला भी जाना चाहिए।'

नाटक में नर्सिंग होम का वातावरण सजीव हो गया है। नाटक एक महिला डाक्टर अनीला के जीवन से सम्बन्धित है जिसे आरम्भ में उसके पति ने यह समझकर छोड़ दिया था कि वह एक अफसर है और उसकी पत्नी ऊँची सोसाइटी में बैठने योग्य नहीं है।

नाटक पूर्णतम मनोवैज्ञानिक है। वस्तु संगठित है। पात्र उभरे-चमके हैं। कथोप-कथन वक्ता, प्रतिवक्ता, श्रोता एवं विषय के अनुकूल हैं। ऐसी श्रेष्ठ कृति के लिए वह बधाई के पात्र हैं।

१३१ पृष्ठों की यह कृति २.५० रु. में। राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली से सुलभ। आवरण सादा होने पर भी फबता है।

कथायन

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात के कथा-साहित्य को एक ग्रन्थमाला के अन्तर्गत सम्पादित करने का एक प्रयास इधर कुछ कहानीकारों द्वारा किया जा रहा है। प्रस्तुत पुस्तक आयोजित दस पुष्पों में से प्रथम पुष्प है। सम्पादक हैं श्री आनन्दप्रकाश जैन। हम इस आयोजन का स्वागत करते हैं।

संकलित कथाओं को विषयानुसार पांच खण्डों में विभाजित किया गया है। कहानियों की कुल संख्या पच्चीस है। हर कहानी से पूर्व कहानीकार का संक्षिप्त परिचय और उसकी संकलित कहानी पर संक्षिप्त-सी समीक्षा दी गई है। कहानीकारों में कुछ पुराने हैं और कुछ नए। कहानियों के चयन में पर्याप्त सावधानी से काम लिया गया है।

पुस्तक के अन्त में उत्तम कहानी लेखक के सम्बन्ध में कुछ उस्तादी नुस्खे यदि न दिए जाते तो ग्रन्थ के मूल्य में कमी न आती। शायद 'सेल' के विचार से ही ऐसा किया गया हो। कई दृष्टियों से आवश्यक होते हुए भी अच्छा होता यदि कहानीकारों के लिए संसद की सदस्यता अनिवार्य न रहती। निःसन्देह कुछ लोग खेमें में आने से रह जाएँगे और ग्रन्थ की व्यापकता सीमित हो जाएगी।

२५६ पृष्ठों की बड़े आकार की यह पुस्तक ६ रुपये में प्रकाशन-प्रतिष्ठान, मेरठ से सुलभ है।

समस्या और संघर्ष

'मित्र-मिलन' हिन्दी प्रेमी तरुणों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक सहकारी प्रयास है। मित्र-मिलन के सभी मित्रों को एक सूत्र में बाँधने का काम करते हैं श्री होशियारसिंह चौहान, जिन्हें हिन्दी भाषी व गढ़वाली लोक-साहित्य के अध्येता के रूप में जानते-मानते हैं। उन्हीं के सम्पादकत्व में उक्त कहानी संग्रह सामने आया है।

प्रस्तुत संग्रह विषय और शैली के विचार से विविधता लिए हुए है। कुल मिलाकर १८ कहानियाँ और पूर्व में छोटी-सी किन्तु सलोनी भूमिका, यह है पुस्तक की रूपरेखा। संकलित कहानीकारों में प्रमुख हैं सर्वश्री जगदीश नारायण माथुर, हरिदत्त भट्ट, पुरुषोत्तम डोभाल, विद्यास्वरूप वर्मा, सुरेश भटनागर, संतोषकुमार जैन, ब्रह्मदेव और डा. चातक।

संग्रह रोचक है और कहानी कला के विकास की झलक देता है।

१५६ पृष्ठों की यह पुस्तक २ रुपये में मित्र-मिलन, देहरादून-हरिद्वार से सुलभ है।

कच्चे धागे

धर्मप्रकाश 'आनन्द' कलम के पुराने खिलाड़ियों में हैं, लेकिन कुछ समय ऐसा आया कि उन्होंने लिखना ही बन्द कर दिया, फिर छपने-छपाने की बात ही क्या? और अश्क चाहे कुछ भी हो लेकिन वह कृतघ्न नहीं है। अपने साथियों को न भूलता है, न भूलने देता है। उसका ही दम था कि यह ११ कहानियों का संग्रह प्रकाशित हो गया।

राह चलते हमें कुछ ऐसी घटनाएँ दीख जाती हैं और कुछ ऐसे पात्र टकरा जाते हैं जिनकी चर्चा हम दूसरों से करने को आतुर-अधीर रहते हैं। 'कच्चे धागे' में संकलित कहानियों के जन्म की भी यही कहानी है।

धर्मप्रकाश 'आनन्द' काँटेदार आदमी है काँटे से काँटे को निकालते हैं। वह व्यंग करते हैं और इसी से चाकू मारते हैं—चोर के रूप में नहीं, डाक्टर के रूप में। उनकी कहानी कला का मूल 'सैक्स' नहीं है। कहानियाँ बस कुछ यों बनी-पनपी हैं कि उनमें रस का आनन्द समा गया है। वे मन की चीज़ तो मान की भी।

३.७५ रुपये में २२२ पृष्ठों की यह पुस्तक नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद से प्राप्त हो सकती है।

धर्मराज

आचार्य चतुरसेन शास्त्री हिन्दी के "वॉल्यूमिनस" लेखक हैं। साहित्य की प्रायः सभी विधाओं पर उन्होंने साधिकार लिखा है। प्रस्तुत पुस्तक आचार्य जी द्वारा प्रणीत एक पाँच अंकीय ऐतिहासिक नाटक है जिसमें अशोक के धर्मराज रूप की व्याख्या की गई है। विविध कोणों से अशोक के चरित्र पर प्रकाश डालना ही लेखक का लक्ष्य है।

इतिहास और कल्पना का सुष्ठ समन्वय, गुरु-गम्भीर शैली, काल-वैभव से सम्पन्न प्रांजल भाषा, गीतों की मधुर-मदिर स्वर-लहरी इस नाटक की कतिपय विशेषताएँ हैं। इस नाटक का पूरा आनन्द लेना हो तो अभिनेयता के प्रश्न को भूल कर कक्ष-मंचिका पर बैठकर पढ़ना चाहिए।

प्रारम्भ में अशोक के विषय में एक खोजपूर्ण वक्तव्य एवं अन्त में परिशिष्ट रूप में पारिभाषिक शब्दों के दिए जाने से पुस्तक का मूल्य और भी बढ़ गया है। विदेशी नाम 'एन्टिगोनस' के लिए अन्तिगोनस का प्रयोग छोड़ कर लेखक ने न जाने क्यों इसे 'आन्तिकिन' कर दिया है।

१६१ पृष्ठों की यह सुग्रन्थित पुस्तक ३ रुपये में राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली से सुलभ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो परतें

आफिस की हवा दमघोटू होती है और इस दमघोटू हवा में भी जो मुखर रह सके, उसे आप क्या कहेंगे ? शायद, विशिष्ट पुरुष ऐसी ही विशेषता को अपने में समाहित कर जीने वाले हैं श्री महाराजकृष्ण रसगोत्र। वे एक सफल अधिकारी भी हैं, तो एक सफल कलाकार भी। 'दो परतें' उनकी ही कविताओं का एक रोचक संकलन है।

'दो परतें' काव्य संग्रह के दो भाग किए गए हैं। तुलना की जाए तो दूसरा भाग अधिक सजीव, अधिक सशक्त है।

कवि को तुकान्त कविताओं की अपेक्षा मुक्त छन्द की रचना से अधिक सफलता मिली है। ज़बान की चाशनी और उर्दू का पुट उनकी अपनी विशेषता है।

पुस्तक की अन्तिम कविता 'पूर्वज अपने बड़े भोले थे' नम्बर एक रचना है। पुस्तक की भूमिका डा. बच्चन ने लिखी है।

९५ पृष्ठों की अच्छी छपी-बँधी यह पुस्तक प्रेमनाथ रसगोत्र ४/१४ रूपनगर, दिल्ली से सुलभ। पुस्तक का मूल्य ३ रुपये अधिक है।

—देवेन्द्र 'दीपक'

बर्ताव का सबसे अच्छा तरीका

भगवान के इस संसार में कोई भी चीज़ केवल बुरी नहीं है। आम तौर पर जिसे बुराई कहते हैं उससे सामना पड़ने पर क्रोध से भर जाना बहुत बुरा है। ऐसे प्रसंग में चित्त की वृत्ति मान लेने और आगे बढ़ने की होनी चाहिए। जगत् में बुराई को प्रेम की पूर्ण सहानुभूति और समझ के द्वारा मान लेना होगा। यहाँ उदारता या क्षमाशीलता की कोई बात नहीं, बल्कि न्याय की बात है, जो उदारता और क्षमाशीलता दोनों से बड़ी चीज है।

यह वह न्याय है जो मनुष्य को जो कुछ वह है, उसी रूप में ग्रहण करता है और उसकी दुर्बलता और उसकी सबलता दोनों ही अवस्थाओं में उसे प्यार करता है और यह समझता है कि एक सुन्दर स्वभाव किस प्रकार बलात् वह चीज़ बना दिया गया, जिसे संसार अपराध या पाप कहता है।

जगत् में सबसे बड़े दुराचारी मनुष्य का भी नेकनीयत होना मान लेना ही वह बुनियाद है, जिस पर साहसिक सहयोग का स्थापित किया जाना सम्भव हो सकता है। अपने विरोधी के साथ बर्ताव का सबसे अच्छा तरीका यही है कि उस पर विश्वास किया जाए। सच्चे आध्यात्मिक पुरुष को न कोई भय होता है, न क्रोध।

(युगसन्त विनोबा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ावा दीजिए—

आपके अपने उद्योग और व्यवसाय को !

तेज एनेमल एण्ड मैटल वर्क्स लि.

सहारनपुर : उत्तर प्रदेश

आपकी चीनिया पालिश (एनेमल) की सब

ज़रूरतें पूरी करने को प्रस्तुत है

इससे—

१—आपके श्रमिक भाइयों को काम मिलेगा ।

२—देश की पूंजी देश में रहेगी ।

३—देश के उद्योग धन्धों की उन्नति होगी ।

४—कम खर्च होगा ।

५—आपके घर के बर्तन स्वच्छ तथा आकर्षक रहेंगे ।

अध्यक्ष-दीवान कृपाराम मनमोहनलाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० ए, ७१७

मनोहर और आकर्षक पैकिंग

आपकी बिक्री को बढ़ाता है

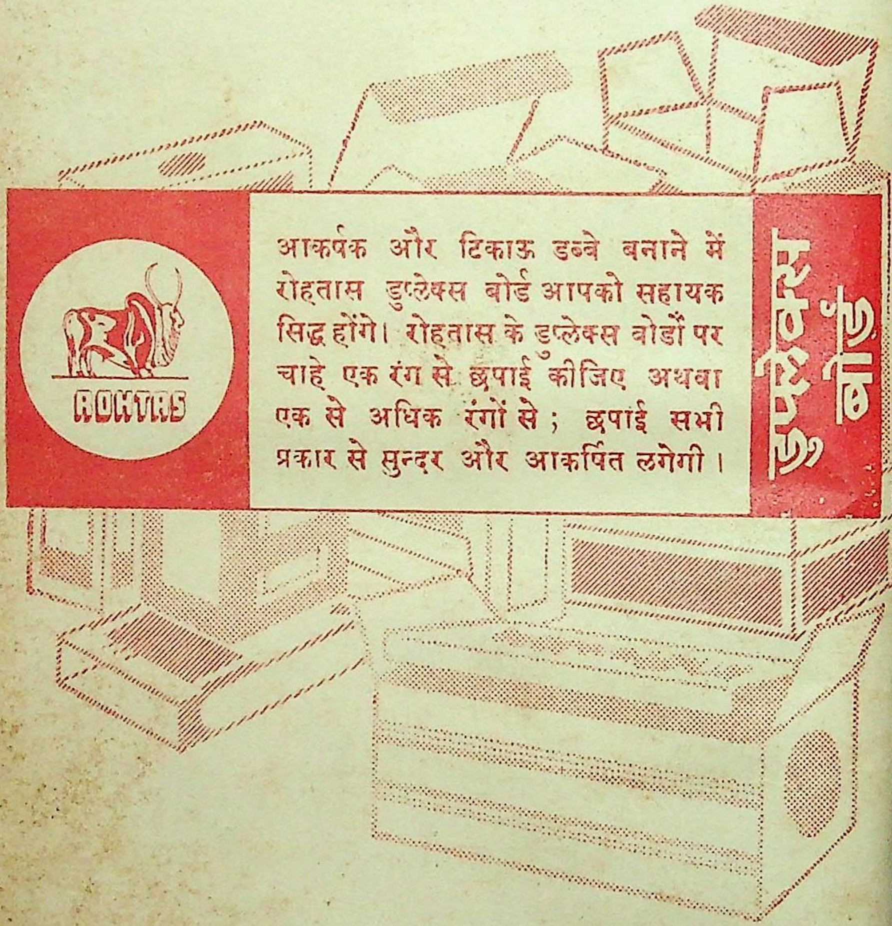

साहू जैन इंडस्ट्रीज़

रोहतास इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड
डालमियानगर, बिहार

देश में कागज और बोर्ड के सब से बड़े निर्माता

मुद्रक—अखिलेश द्वारा विकास प्रिंटिंग वर्क्स, सहारनपुर में मुद्रित-प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नया जीवन

अप्रैल १९६०

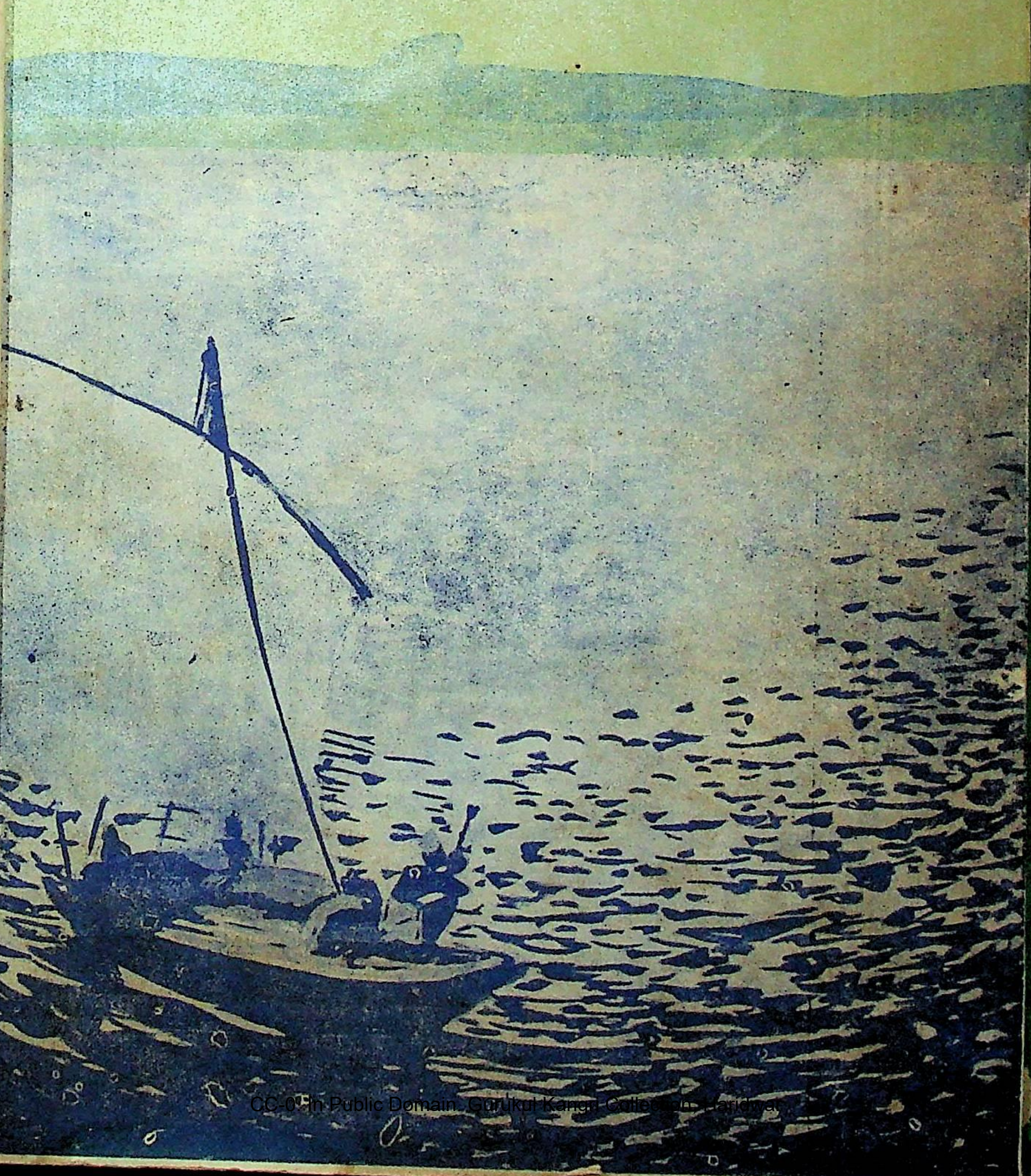

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कागज़ के एक छोटे पुर्ज़े पर
महात्मा गांधी ने आश्रम के
एक रोगी को रात में दो
बजे एक हिदायत लिखी थी।
अब यह पुर्ज़ा एक कीमती संस्मरण है!

विदेश के एक अज्ञात कवि
द्वारा लिखा एक पुर्जा मिला
उसके मरने के बरसों बाद
वह उसी से अमर हो गया;
उस पर उसकी एक कविता लिखी थी।

कागज़ के बिना न
शास्त्र मिलते न साहित्य।
कागज़ हमारी सभ्यता की
एक पवित्र धरोहर है!

श्रेष्ठ स्वदेशी कागज़ों के निर्माता

स्टार पेपर मिल्स लि०

सहारनपुर : उत्तर-प्रदेश

मैनेजिंग एजेन्ट्स—बाजोरिया एण्ड कम्पनी, कलकत्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिकट सावधानी से चिपकाइये
इससे
डाक प्रेषण में शीघ्रता आती है

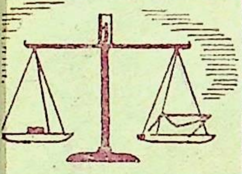

• **तोल के अनुसार ठीक टिकट लगाइये**

कम टिकटों और बिना टिकटों वाली चिट्ठियां देरी से पहुंचती हैं, क्योंकि छंटाई के समय उन्हें हिसाब लगाने के लिए अलग रख दिया जाता है।

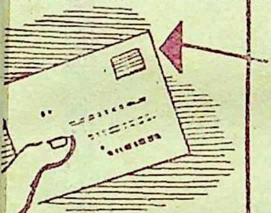

• **टिकट, पते वाली तरफ ऊपर के दाहिने कोने में चिपकाइये**

इससे छंटाई के काम में कम समय लगता है और साथ ही स्वचालित मशीन से मुहर लगाने का काम तेजी से होता है।

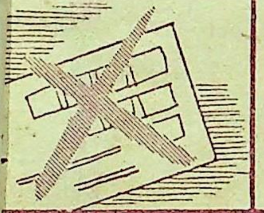

• **आवश्यक मूल्य की कम से कम टिकटें लगाइये**

इससे साफ पता लिखने के लिए काफी जगह बच रहेगी और टिकटों पर मुहर लगाने में भी सुविधा होगी।

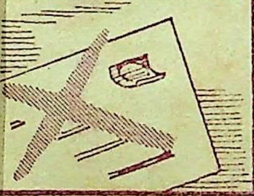

• **टिकट अच्छी तरह चिपकाइये**

अच्छी तरह न लगे टिकट यदि गिर गए तो उन पत्रों को बेरंग अथवा कम टिकट वाले पत्र समझा जाता है। इनके जाने में देरी भी हो सकती है।

अपर्याप्त और ठीक ढंग से टिकट न लगाने से पत्रों के पहुंचने में देर ही नहीं लगती अपितु उससे समूची डाक-व्यवस्था में अड़चनें पैदा हो जाती हैं।

अपने टिकट ध्यान-पूर्वक लगाइये

हमें उत्तम
सेवा का अवसर दीजिये

डाक-तार विभाग

DA 59/356

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजन, भवन, भेषभूषा

सभ्यता के तीन बड़े स्तम्भ हैं

भोजन सात्विक भवन स्वच्छ, भेष स्वदेशी

नागरिकता के तीन बड़े चिन्ह हैं

तीनों को सदा ध्यान में रखिए !

★

खड्डियों तथा दूसरे उपयोग में आने वाला
१० नं० से ४० नं० तक का बढ़िया सूत

एवं

भारत भर में प्रसिद्ध "कोरा-धुला-लट्ठा", धोती
चादर, मलमल व रंगीन कपड़ों के

निर्माताः—

लार्ड कृष्णा टैक्सटाइल मिल्स

सहारनपुर :: उत्तरप्रदेश

संचालक
सेठ आनन्द कुमार
फोन—३१६, ३६४, १६०

संचालक
सेठ सुशील कुमार
तार—'टैक्सटाइल्स'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महापुरुषों के संस्मरण
उन पद् चिह्नों के समान हैं
जिन पर चलकर
सामान्य लोग
जीवन और उसके उद्देश्यों का संधान
कर सकते हैं
सस्ता साहित्य मंडल
द्वारा प्रकाशित
यह जीवनी तथा संस्मरण-साहित्य
सब के लिए
सर्वोत्तम मार्गदर्शक है :

आत्मकथाएँ :

१ आत्मकथा (महात्मा गांधी)
संपूर्ण (अजिल्द) ४ ००
,, संक्षिप्त (अजिल्द) १ ००
२ मेरी कहानी (जवाहरलाल नेहरू)
सपूर्ण ८ ००
,, ,, ,, संक्षिप्त २ ५०
३ आत्मकथा (डा. राजेन्द्रप्रसाद) ८ ००

जीवनियां :

१ गांधी की कहानी (लुई फिशर) ४ ००
२ एक आदर्श महिला
(विनायक तिवारी) १ ००
३ लोकमान्य तिलक
(पां. ग. देशपांडे) २ ५०
४ श्रेयार्थी जमनालाल
(हरिभाऊ उपाध्याय) संपूर्ण ६ ५०
,, ,, ,, संक्षिप्त २ ००

संस्मरण-साहित्य :

१ मेरे समकालीन (महात्मा गांधी) ५ ००
२ दक्षिण अफरीका का सत्याग्रह
(महात्मा गांधी) ३ ५०
३ देशसेवकों के संस्मरण (म. गांधी) १ २५
४ अमिट रेखाएँ (सत्यवती मल्लिक) ३ ००
५ एक क्रांतिकारी के संस्मरण
(बनारसीदास चतुर्वेदी) ० ७५
६ मानवता के झरने
(ग. वा. मावलंकर) १ ५०
७ मेरे संस्मरण ,, ,, २ ००
८ मील के पत्थर (रामवृक्ष बेनीपुरी) २ ००
९ मेरी जीवन यात्रा
(जानकीदेवी बजाज) २ ००
१० मैं भूल नहीं सकता
(कैलाशनाथ काटजू) २ ५०
११ विनोबा के साथ सात दिन
(श्रीमन्नारायण) ० ५०
१२ साधना के पथ पर
(हरिभाऊ उपाध्याय) २ ५०
१३ बा, बापू और भाई
(देवदास गांधी) ० ५०
१४. बापू की कारावास कहानी
(सुशीला नैयर) १० ००
१५ बापू के आश्रम में
(हरिभाऊ उपाध्याय) १ ००

इन तथा अन्य पुस्तकों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिये और सत्साहित्य के प्रसार में अपना हाथ बटाने के लिये हमें लिखिये

सस्ता साहित्य मण्डल, (सत्साहित्य के प्रणेता, प्रकाशक और प्रसारक)
कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामू और श्यामू दो सगे भाई,
रामू स्वभाव का कड़वा,
श्यामू शान्त सज्जन,
दोनों का परिवार समृद्ध !

एक दिन रामू ने क्या कुछ कहा,
कि श्यामू भी बेकाबू होगया,
दोनों में मुकदमेबाजी छिड़ी,
और दोनों बरबाद हो गए !

स्वभाव का मिठास जीवन का वरदान है!
सदा मीठे रहिए !

★

श्रेष्ठ चीनी के निर्माता

गंगा शूगर कारपोरेशन लिमिटेड

देवबन्द :: उत्तरप्रदेश

जनरल मैनेजर—बी० सी० कोहली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़रूरी जानकारी

- प्रकाशन का समय—महीने की पहली तारीख है, पर १५ तारीख तक भी न पहुँचे, तो समझिए कि आपका अङ्क कोई दूसरे सज्जन पढ़ रहे हैं और उसके लिए कार्यालय को कार्ड लिखिए।
- वर्ष भर का मूल्य पाँच रुपये और साधारण प्रति का पचास नये पैसे है।
- लेखकों से प्रार्थना है कि उत्तर या रचना की वापसी के लिए टिकट न भेजें और अपनी प्रत्येक रचना पर अन्त में अपना पूरा नाम-पता अवश्य लिखें।
- एक मास के भीतर ही बुक-पोस्ट से उनकी रचना या स्वीकृति का पत्र उन्हें मिल जाएगा और छपने पर अङ्क निश्चित रूप से सेवा में भेजा जाएगा।
- अस्वीकृत छोटी रचनाएँ वापस नहीं की जातीं। हाँ, बड़े लेख और कहानियाँ, जिनकी नकल करने में दिक्कत होती है, निश्चित रूप से वापस कर दी जाती हैं। 'नयाजीवन' में वे ही रचनाएँ स्थान पाती हैं, जो जीवन को ऊँचा उठाएँ, पर उपदेशक की तरह नहीं, मित्र की तरह—मनोरञ्जक, मार्ग-दर्शक और प्रेरणापूर्ण!
- 'नयाजीवन' धन-साधन पर नहीं, साधना पर जीवित है, इसलिए लेखकों को वह प्यार-मान दे सकता है, धन नहीं।
- ग्राहकों से पत्र-व्यवहार में ग्राहक-संख्या लिखने की आवश्यक प्रार्थना है।
- 'नयाजीवन' में उन चीजों के ही विज्ञापन छपते हैं, जिनसे देश की समृद्धि, स्वास्थ्य, सुरुचि और पूर्णता बढ़े।
- तार का पता विकास प्रेस और फोन नं० १५३ है।

पत्र-व्यवहार का पता है

विकास लिमिटेड, सहारनपुर, उ. प्र.

आरम्भ काल – १६४०

नयाजीवन

विचारों का विश्वविद्यालय

अनेक राज्य-सरकारों द्वारा स्वीकृत

अप्रैल १६६०

प्रधान संपादक

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

•

प्रबन्ध संपादक—**अखिलेश**

•

सह-संपादिका—**कविता वाशिष्ठ**

हमारा काम यह नहीं है कि इस विशाल देश में बसे चन्द दिमागी ऐय्याशों का फालतू समय चैन से काटने के लिए मनोरंजक साहित्य नाम का मैखाना हर समय खुला रखें!

हमारा काम तो यह है कि इस विशाल देश के कोने-कोने में फैले जन-साधारण के मन में विशृङ्खलित वर्तमान के प्रति विद्रोह और भव्य भविष्यत् के निर्माण की भूख जगाएँ!

•

प्रेस व्यवस्थापक—**रामकृष्ण शर्मा**

•

प्रकाशक

विकास लिमिटेड

सहारनपुर • उत्तर प्रदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर नाची राधा, खेतों में झूमा साँवरिया — कुमारी श्री मधु
८४, ब्रह्म बाज़ार, चन्दौसी — ३

शाप मेरा क्या करेंगे? — श्री सरस्वती कुमार 'दीपक'
५८०, स्टेशन रोड, कुर्ला, बम्बई — ४

विचार और सम्मति — सम्पादकीय — ५

विषपान तुम्हें करना होगा — श्री शरदकुमार मिश्र 'शरद'
ललिता बाज़ार, सहारनपुर — ८

सुनिये, पढ़िये, देखिये, पर जाँचिए, परखिए, विचारिए भी। — कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' — ९

आनन्द-भवन — श्री विश्वम्भरनाथ पाण्डेय
१४२, साउथ मलाका, इलाहाबाद — १५

मैं किसका बेटा हूँ? — श्री ईशकुमार 'ईश'
टी० टी० पोस्ट बिल्डिंग, देहली — १८

विश्वास करो — श्री जी० सी० हैलन
जैन डिगरी कालेज, बड़ौत (मेरठ) — २०

सफाई सिखाने का स्कूल — श्री रतनसिंह 'हिमेश' — २१
डायरेक्ट्रेट आफ पब्लिक रिलेशन, शिमला — २३

सुन्दरतम निर्माण — श्री ब्रह्मानन्द 'बन्धु'
पो० कुड़ाना, मुजफ्फरनगर — २३

पर तुमने यह बात न सोची! — श्री शेरजंग गर्ग
अखाड़ा स्ट्रीट, देहरादून — २४

श्री नज़ीर बनारसी; — श्री रमेशचन्द्र झा
सुगौली, चम्पारन, बिहार — २५

चलती रेल में नीलाम — श्री ईश्वरदत्त वर्मा
भगवानपुर (सहारनपुर) — २९

श्रद्धेय बाबू जी के साथ एक दिन! — अखिलेश — ३५

नए लेखकों की पाठशाला — स्तम्भ — ४०

नई पीढ़ी के गीतकार-९ — प्राध्यापक—श्री देवेन्द्र 'दीपक'
राजकीय डिग्री कालेज, पन्ना, म.प्र. — ४१

जीवन के झरोखे से — स्तम्भ — ४४

अपने पढ़ने के कमरे में — स्तम्भ — ४५

पुस्तक-परिचय — श्री मोहनजीतसिंह
ग्रे० के० नगर, जि० बर्दवान — ४९

अतापता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKULA KANGRI LIBRARY HARIDWAR

जीवन दबा - घुटा, दैवी दुर्घटनाओं से ग्रस्त परिस्थितियाँ, बोझ से दबे कन्धे और लम्बा सफर, पर चुस्त पाँव, मजबूत इरादे और पीड़ा को न बखेरने का—दुख को चुपचाप सहने का संस्कार !

भाग्य का एक वैधानिक उपहार कि गला एक मीठी - भीनी गुनगुनाहट से भरा - पूरा, तो वह मुश्किल सफर एक सुखद तीर्थयात्रा और यों सुकुमार गीतों की सृष्टा-गायिका कुमारी मधु !

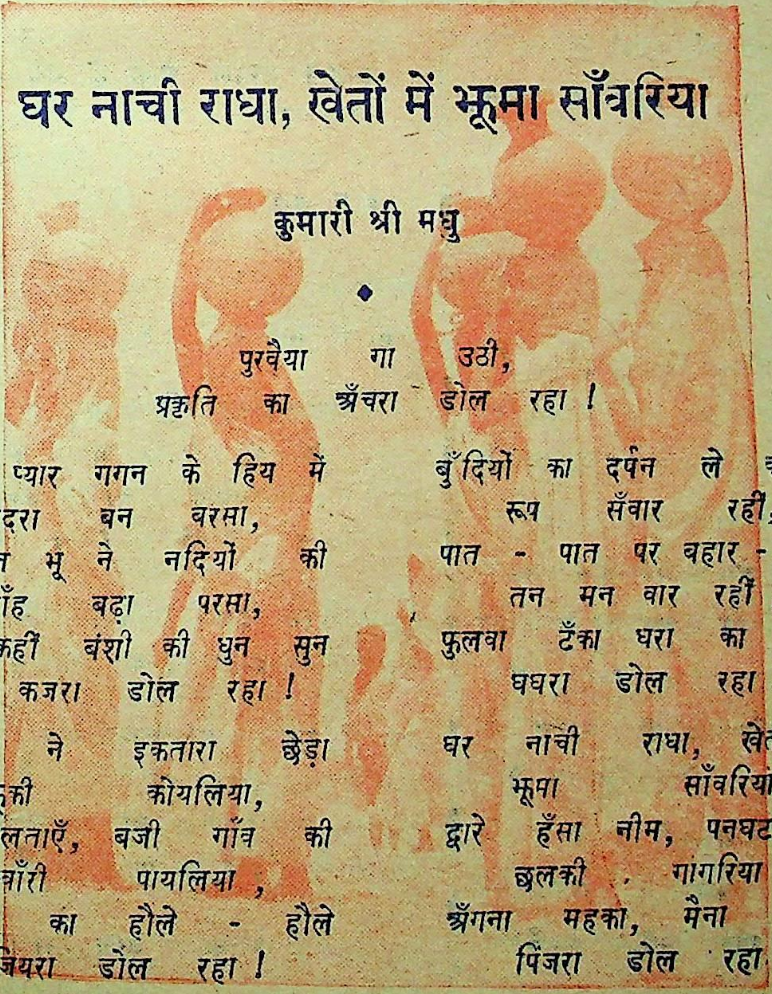

घर नाची राधा, खेतों में झूमा साँवरिया

कुमारी श्री मधु

◆

पुरवैया गा उठी,
प्रकृति का अँचरा डोल रहा !

उमड़ा प्यार गगन के हिय में
बदरा बन बरसा,
प्रेमाकुल भू ने नदियों की
बाँह बढ़ा परसा,
दूर कहीं बंशी की धुन सुन
कजरा डोल रहा !

बुँदियों का दर्पन ले कलियाँ
रूप सँवार रहीं,
पात - पात पर बहार - परियाँ
तन मन वार रहीं,
फुलवा टँका धरा का हरियर
घघरा डोल रहा !

लहरों ने इकतारा छेड़ा
कूकी कोयलिया,
सजी लताएँ, बजी गाँव की
क्वाँरी पायलिया,
अमराई का हौले - हौले
जियरा डोल रहा !

घर नाची राधा, खेतों में
झूमा साँवरिया,
द्वारे हँसा नीम, पनघट पर
छलकी गागरिया,
अँगना महका, मैना फुदकी
पिंजरा डोल रहा !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाप मेरा क्या करेंगे ?

श्री सरस्वतीकुमार 'दीपक'

•

भारती की आरती का दीप बनकर जल रहा हूँ ;
है अँधेरी रात, फिर भी मुस्कुराता चल रहा हूँ !

स्नेह का सम्बल मिला है, भय नहीं है,
प्रीति का परिमल मिला, संशय नहीं है,
जो मिलन की वेणु ले आगे बढ़ा है,
छोड़ देता वह कभी निश्चय नहीं है,

लाख रोका है मुझे नित राख की इन पुतलियों ने;
कहाँ ऋतुओं से डरा हूँ, कहाँ हिम से गल रहा हूँ ?

मैं हिमालय-सा अडिग, सागर अगम हूँ,
सुरसरित के नीर-सा पावन परम हूँ,
आत्मश्लाघा—यदि कहो तो क्यों डरूँ मैं ?
काल की करताल की रचना सुगम हूँ,

निर्झरी ने स्वर दिया है, ऊर्मियों से गति मिली है;
मैं अहर्निशि सत्य-पथ पर प्यार बनकर ढल रहा हूँ।

राम की, घनश्याम की इस वाटिका का मैं सुमन हूँ,
ज्ञान के पावन प्रभाकर की मनोरथ मैं किरन हूँ,
जो गिरा, उसको उठाया, जो रुका, उसको बढ़ाया,
आरती का दीप हूँ, मा शारदा का मैं नमन हूँ,

वर मिला है वन्दना का, शाप मेरा क्या करेंगे;
विश्व के परिवार का मैं स्नेह पाकर पल रहा हूँ !

वह दीपक है, पर न उसे हण्डों से ईर्ष्या है, न पावर हाउसों से जलन, न चान्द से परेशानी, न सूरज से कुढ़न; वह अपने दायरे में अपनी शक्तिभर रोशनी दे, खुश है। व्यक्तित्व का चमत्कार ही कहें कि उसे किसी से भय भी नहीं है; क्योंकि जीवन की सफलताओं को उसने श्रम की सीढ़ियों से जोड़ा है, तो उसके जीवन की सरल रीत और उसके तरल गीत, आत्मविश्वास की भावना से प्रोज्ज्वल - प्रदीप्त हो उठे हैं। यों श्री सरस्वती कुमार 'दीपक' चले चलने के अभ्यस्त— अपने जीवन में भी, साहित्य में भी!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKULA KANGRI LIBRARY HARDWAR

विचार और सम्मति

सराहना या दया

१९३५ में बिहार के कवि श्री मोहन लाल गुप्त भारत की साइकिल-यात्रा करते हुए सहारनपुर आए थे और दो दिन उनके सम्पर्क का सुख मुझे मिला था। उन्होंने अपनी यात्रा के अनुभव सुनाते हुये कहा था कि "आमतौर पर सभी स्थानों में मुझे भरपूर ममता मिली है और उससे यात्रा सुखद हुई है।"

साहसपूर्ण ज्ञान यात्रा करने वालों के लिए ही नहीं, पूरे राष्ट्र के हित के लिए यह ममता आवश्यक है; क्योंकि इस से यात्री को बल और स्फूर्ति मिलती है और अपने सम्पर्क में आने वाले गाँव-गाँव, नगर-नगर और राह-राह के युवकों को वह उत्साह का उपहार देने में सफल होता है। इस तरह देश में साहस, स्फूर्ति का वातावरण बनता है और युवकों की घर-घुसड़ू वृत्ति कम होती है।

स्वतंत्र भारत में साहसिक यात्राओं की वृत्ति बढ़ी है। श्री मिस्री लाल जायसवाल ने साइकिल पर ३५ हज़ार मील की विश्व यात्रा की है और कई पर्वतीय अभियानों में भी भारतीय चढ़े हैं, पर पिछले साल कानपुर के युवक श्री राजेन्द्र नाथ तिवारी 'तृषित' पैदल विश्व यात्रा करते हुए सहारनपुर आए, तो उन्होंने बड़ी निराशाजनक रिपोर्ट दी कि यात्रा में बहुत कम ममता मिलती है, क्योंकि पढ़े लिखे लोग दिलचस्पी नहीं लेते।

मैं इसे सुन कर चौंका था, पर साइकिल पर विश्व की ३६ हज़ार मील की लम्बी साहसी यात्रा करने वाले युवक श्री बृजेन गोस्वामी के इस कथन से तो मुझे गहरा धक्का लगा कि "भारत में पर्यटकों के प्रति सराहना और सहानुभूति नहीं है। हाँ, दयावश कुछ लोग सहायता अवश्य कर देते हैं।"

१९३५ से १९६० तक का यह मानसिक अध्ययन हमारे राष्ट्रीय चरित्र के ह्रास की ओर हमारा ध्यान दिलाता है। सत्कर्म में दिलचस्पी—भारत की भाषा में श्रद्धा—सत्कर्मी में दिलचस्पी उत्पन्न करती है और तब उसे सहारा नहीं, सराहना और दया की सहायता नहीं, ममता का सहयोग दे पाते हैं। इससे सत्कर्मी बल पाता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तित्व पाता है और तब उससे जो सुगन्ध बरसती है, वह सारे सामाजिक वातावरण को महका देती है।

इधर के वर्षों में व्यक्ति अपनी ५ फुट की देह में कुछ इस तरह सीमित हो चला है कि अपने से बाहर समाज को, विशाल मानवता को देखने की जैसे उसे फुरसत ही नहीं है। यह सामाजिक जड़ता खतरनाक है; क्योंकि इस में प्रजातंत्र की कोंपलें सूखती और अधिनायकता का लौहस्तम्भ पनपता है। इस के बाद मानव चलता नहीं, हँकता है—उठता नहीं, लटकता है।

युगसन्त विनोबा ने नवम्बर में फिरोजपुर की सभा में कहा था—"अपनी आँखों के सामने समाज के नाश एवं मनुष्य की, जनता की, स्वतंत्रता का अन्त होते देख रहा हूँ और इस तरह हमारे सामने जो भी भीषण खतरा है, उसके प्रति जनता को सचेत करता फिरता हूँ।"

यह खतरा यही है कि व्यक्ति समाज की उपेक्षा कर अपने में केन्द्रित हो जाए—दूसरे शब्दों में वह समाज से, शासन से अपने लिए सेवा, सुविधा और सहयोग चाहे, पर समाज को अपनी सेवा, सुविधा और सहयोग देने से इन्कार करे।

यह घोड़ी

सीतापुर जिले के गंगापुर गाँव का निवासी राधाकृष्ण अपनी घोड़ी पर चढ़ कहीं जा रहा था कि उसके कुछ दुश्मनों ने उसकी हत्या कर दी। ये हत्यारे उसकी लाश को जंगल में ले गये। वहाँ उन्होंने उसके इस तरह टुकड़े टुकड़े कर डाले कि कोई पहचान न सके और भाग गए, पर वह घोड़ी तीन दिन तक भूखी प्यासी वहीं खड़ी रही और इस तरह राधाकृष्ण के खोजने वालों को पता चल सका कि ये गले-सड़े लोथड़े राधाकृष्ण की देह के हैं।

बुद्धिमत्ता और वफादारी का एक पाठ ही तो है हम मनुष्यों के लिए यह घोड़ी!!

शानदार माफीनामा

प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू प्रयोगात्मक अर्थशास्त्र अनुसंधान परिषद की इमारत का शिलान्यास करने के लिए निश्चित समय से दस मिनट लेट पहुँचे।

किसी का ध्यान इस बात की तरफ नहीं गया, क्योंकि राज पुरुष या विशिष्ट पुरुष लेट आएँ और २०-३० मिनट ही नहीं, घंटा भर और कभी कभी घंटों लेट आएँ, यह जनता के लिए साधारण बात है, पर नेहरू जी ने अपना भाषण आरम्भ किया, तो सब का ध्यान इस बात की ओर गया।

वे बोले—"मेरे दिमाग़ पर एक बोझा है और मुझे आप के सामने स्वीकार करना है कि मैं यहाँ दस मिनट लेट आया हूँ और इसका कारण भी एकदम अनुचित है।"

नेहरू जी अपनी बातचीत में कलाकार हैं। इसलिए लेट होने के 'एकदम अनुचित कारण' को उन्होंने इस प्रकार प्रकट किया—"आज तीसरे पहर मैंने विशेष ढंग से दीवाली मनाने की सोची कि सोगया, पर जब मैं नींद की यह दीवाली मना कर उठा, तो ५ बजे थे और ५ बजे मुझे यहाँ होना था। बस मैं उठा और यक़ीन कीजिए, लगभग भागा-भागा ही यहाँ आया हूँ।"

सब हँस पड़े, पर नेहरू जी के लिए यह हँसी की बात न थी। एकदम गम्भीर होकर बोले—"मैं आपके साथ अशिष्टता करने का अपराधी हूँ कि दस मिनट लेट आया और इसका मुझे खेद है।"

यह खेद मानसिक था, हार्दिक था, एक शिष्टाचार ही न था और इसका प्रमाण यों मिला कि उन्होंने बहुत छोटा भाषण दिया और तब बोले—"मैं समझता हूँ कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने आप के जो दस मिनट खोए थे, वे बचा दिए हैं" और पूरे ज़ोर से हंस पड़े; जैसे उस खेद से उद्धार पा गए हों।

दस मिनट की देरी कोई बड़ी बात नहीं है और उसके लिए खुले आम खेद प्रकाश करना भी कोई खास बात नहीं है, पर खास बात है यह कि प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने दस मिनट लेट होने से 'दिमाग पर बोझ' महसूस किया और इस से भी खास बात है यह कि दस मिनट लेट होने से उन्होंने अपने को 'अशिष्ट व्यवहार करने का अपराधी' माना !!

युग नेता नेहरू का यह शानदार माफीनामा हम सब के जीवन व्यवहार में—आचरण में—एक प्रभावपूर्ण पाठ सिद्ध हो।

ईमानदारी की शर्त

बुलन्दशहर जिले के श्री बाबू सिंह एक गरीब खटीक हैं। वे भेड़-बकरी पालते हैं और ढोलक मढ़ने की मजदूरी भी करते हैं। श्री चिरंजी लाल पनवाड़ी ने उन्हें मढ़ने के लिए अपनी ढोलक दी और लोटा भरने की डोर भी।

बाबू सिंह ने घर जा कर डोर की लच्छी को खोला, तो उसमें १००–१०० रुपये के पांच नोट लिपटे हुए निकले। बाबू सिंह ने स्वयं जाकर वे नोट चिरंजी लाल को दे दिए। पता चला कि चूहों के भय से ये नोट चिरंजी लाल ने डोर में लपेट दिए थे और बाबू सिंह को डोर देते समय वह यह बात भूल गया था।

बाबू सिंह की गरीबी में ये ५०० रुपये कुबेर का खज़ाना थे, पर उसके मन में पल भर को भी उन्हें रख लेने का ध्यान नहीं आया। पूछने पर उसने कहा—"मेरा विश्वास अपने हाथ की कमाई पर है। मुझे बेईमानी की कमाई से अपने हाथ काले करने होते, तो मैं जवानी में चोर डाकू न बन जाता।"

भाई बाबू सिंह की ईमानदार गरीबी का अभिनन्दन, पर यहीं एक प्रश्न और उसके उपप्रश्न कि आदमी बेईमान क्यों हो जाता है? बेईमानी क्यों करता है? क्या बेईमानी आदमी की मजबूरी है? क्या अभावों में फँस कर आदमी बेईमानी करता है? और अभाव न हों, तो वह ईमानदार रह सकता है?

बेईमानी आदमी की मजबूरी नहीं, एक आदत है; जैसे सिगरेट पीना, शराब पीना आदि! यह बुरी आदत बुरे वातावरण में, बुरी परिस्थिति में रहने से जन्म लेती है और फिर सदा की साथिन बन जाती है।

तो ईमानदारी की शर्त क्या है? ईमानदारी की शर्त है, ईमानदारी का संस्कार, ईमानदारी के प्रति निष्ठा और ईमानदार रहने की तीव्र इच्छा। यही कारण है कि भाई बाबू सिंह घोर गरीबी में भी ईमानदार हैं और सेठ बाबू सिंह तीन कारखानों का मालिक होकर भी बेईमान।

आप ईमानदार रहना चाहते हैं? हाँ, तो किसी भी परिस्थिति में निश्चित रूप से ईमानदार रह सकते हैं, पर इतना अवश्य याद रखिए कि आप ईमानदार नहीं रहना चाहते, पर भयवश अवसर न मिलने के कारण ईमानदारी बरत रहे हैं, तो आप ईमानदार नहीं, ईमानदारी के क़ैदी हैं।

खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ

भारत के वित्त मंत्री श्री मुरार जी देसाई पाकिस्तान-सरकार से बातचीत करने रावलपिण्डी गए तो खान अब्दुल ग़फ़्फ़ार खाँ से भी पेशावर में मिले। खान साहब अपने गाँव उत्तमँजई से चलकर पेशावर आए थे। बाद में मुरार जी भाई भी उत्तमँजई गए और खान साहब के बड़े भाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० खान साहब के मज़ार पर उन्होंने फूल चढ़ाए।

देश के बटवारे ने लाखों आदमियों को नुकसान पहुँचाया, पर सबसे बड़ा नुकसान है खान बन्धुओं की बर्बादी। बिना बटे भारत में खान अब्दुल गफ्फार खाँ अपने इलाके में खान बादशाह और शेष भारत में सरहदी गांधी के नाम से प्रसिद्ध थे। उनके भाई सरहद के मुख्य मंत्री थे और इस तरह राजनीति और धर्म दोनों ही खानबन्धुओं के द्वारपाल थे।

ओह, कितना विराट राष्ट्रीय व्यक्तित्व था खान बादशाह का कि उस समय का सबसे बड़ा राष्ट्रीय सम्मान—कांग्रेस का सभापतित्व भी उनके लिये तुच्छ था और जब-जब वह उनके द्वार आया, उसे उन्होंने उल्टे पाँव लौटा दिया, पर बटवारे के बाद दोनों भाई बराबर जेल काटते रहे और अन्त में डा० साहब को कत्ल कर दिया गया। बड़ी उम्र, लम्बा और घोर संघर्ष, उमीद की कोई किरण तक नहीं और भाई की यह हत्या; दिल टूट गया बेचारों का, पर आज भी सिद्धान्तों पर वे अडिग हैं और समझौता करने को तैयार नहीं। जब जब मुझे उनका ध्यान आता है, लगता है कि अजेय-श्रद्धेय राणा प्रताप पाकिस्तान में जी-जाग रहे हैं।

卐

विषपान तुम्हें करना होगा!

श्री शरदकुमार मिश्र 'शरद'

•

निर्माण अगर करना है, तो बलिदान तुम्हें करना होगा!
बढ़कर शोणित की गंगा में भी स्नान तुम्हें करना होगा!!

नभ पर काली चादर होगी भू पर अंगारों का पहरा!
पर हँसते-हँसते त्रिशूलों पर प्रस्थान तुम्हें करना होगा!!

बाधाओं के बावण्डर भी मंडराएँगे आकर पथ पर!
तूफानों के उत्थानों को सोपान तुम्हें करना होगा!!

महलों से झोंपड़ियों तक की आधार-शिला सम करने को,
झंझा के झोंकों का भी तो सम्मान तुम्हें करना होगा!

मानव में मानवता फिर से लानी है यदि इस दुनिया में!
मधु औ' मधुरामृत त्याग बन्धु, विषपान तुम्हें करना होगा!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनिए, पढ़िए, देखिए, पर– जाँचिए, परखिए, विचारिए भी !

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

श्री भगवन्तसिंह आई० ए० एस० उत्तर प्रदेश प्रशासन के एक असाधारण अधिकारी हैं। उनकी असाधारणता यह है कि वे साधारण को असाधारण महत्व देते हैं। दूसरे शब्दों में– वे अपने सुनहरे फाउन्टेन पेन से आदेश लिखने में जितने निपुण हैं, अपने फावड़े से पानी सुखाने वाला गड्ढा खोदने में भी उतने ही निपुण हैं और मेरा मन जिस खिड़की से उन्हें नमन करता रहा है वह यह कि वे ये दोनों काम करते समय समान प्रसन्नता और समान गौरव अनुभव करते हैं।

डायरेक्टर पंचायत राज उत्तर प्रदेश के रूप में उस दिन वे सहारनपुर आए, तो उनसे मिलने और काफी देर बातें करने का अवसर मिला। बातों-बातों में बात इस बात पर आ गई कि देश में इतना व्यापक और विशाल निर्माण कार्य हो रहा है, फिर भी चारों ओर लोग; और विशेषत: नगरों के शिक्षित लोग बड़ी निराशाजनक बातें करते हैं और अक्सर उत्तेजनात्मक भी। इन्हें सुन कर ऐसा लगने लगता है कि एक ओर देश बन रहा है तो दूसरी ओर टूट भी रहा है। मैंने कहा—ऐसे क्षणों में मन कभी-कभी बहुत उद्वेलित हो उठता है।

बोले—''यह निराशाजनक चर्चा अक्सर इसलिए होती है कि हम लोगों में अभी आँकड़ा बनाने की वृत्ति पैदा नहीं हुई है।''

मुझे उनका यह उत्तर बड़ा अजीब-सा लगा, क्योंकि आँकड़े तैयार करने का काम तो सरकार का आँकड़ा-विभाग करता है। हर आदमी आँकड़ा कैसे तैयार करेगा ?

बोले—''आँकड़ा बनाने का काम हर नागरिक कैसे करे, यह जानने से पहले, यह जानना बहुत जरूरी है कि आँकड़ा बनाना है क्या ?'' आँकड़ा बनाने का अर्थ है सुनी हुई और बिखरी हुई बातों की जाँच-पड़ताल करके उन पर सही, युक्तियुक्त और अन्तिम राय बनाना। हम लोग यह नहीं करते। हमारा तरीका कुछ इस तरह का है कि मान लो, एक पत्रकार गाँव गए। उन्हें एक ऐसा आदमी मिला, जो किसी वजह से पंचायत से नाराज़ है। उसने पत्रकार से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचायत की शिकायत की और कहा—अजी हमारे गांव की पंचायत में तो अन्धेरगर्दी हो रही है।

पत्रकार भाई गाँव में और लोगों से बिना मिले आगे निकल गए और घर लौट कर उन्होंने अपने पत्र में लिखा कि पंचायतों में अन्धेर गर्दी मची हुई है और वहाँ गरीबों के साथ बहुत अन्याय होता है।

अब पंचायतों के बारे में यह एक आँकड़ा बन गया, पर यह आँकड़ा कहाँ है ? आँकड़ा बनाने का सही तरीका यह होता कि वे पत्रकार भाई गाँव के विभिन्न क्षेत्रों, हितों और वर्गों के आदमियों से अलग-अलग मिलते, उनसे बातें करते, उन बातों का विश्लेषण करते और तब उनका निचोड़ निकाल कर राय बनाते—आँकड़ा तैयार करते।"

मैंने कहा—आपने उदाहरण भी पत्रकार का, याने मेरी ही बिरादरी का दिया; यह खूब रही, पर इससे मुझे एक नई रोशनी मिली कि उस एक आदमी की बात सुनकर पूरे पंचायत राज पर राय बनाने में यह पत्रकार जैसा गलत आँकड़ा बना गया, वैसे ही उस पत्रकार का इस तरह का लेख पढ़कर लोगों ने एक और गलत आँकड़ा बनाया होगा कि ये पत्रकार—अखबार वाले-भी यों ही होते हैं कि जो मन में आता है लिख मारते हैं।

सुनकर खूब हँसे। हँसना उनका स्वभाव है और सरल आदमी की हँसी हमेशा अन्तर्स्पर्शी होती है, इस लिए उनकी हँसी में शरीक होकर बहुत आनन्द आया। तब मैंने कहा—यह आँकड़ा बनाने की बात आपने आज खूब बनाई और इसकी खूबी यह है कि इससे विद्वान लोग भी लाभ उठा सकते हैं और साधारण नागरिक भी। आँकड़ा बनाने की इस पद्धति—इस सिस्टम-का नारा है कि जल्दी राय मत बनाओ, चार जगह पूछताछ कर, सोच समझ कर, राय बनाओ। हँसते हुए मैं उनसे विदा हुआ।

मन ही मन मुझे एक घटना याद हो आई। उत्तर प्रदेश के एक नगर में, पराधीन भारत की बात है, एक भयंकर हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ। दंगा क्यों हुआ, कैसे हुआ, इस पर एक जाँच कमेटी बैठाई गई तो ५–७ दिन की खोज पड़ताल के बाद, जो सचाई हाथ आई, वह यह थी कि एक लड़का मुसलमान मोहल्लों में यह कहता दौड़ा चला गया कि हिन्दुओं ने मुसलमानों को मार डाला, लूट लिया, बचाओ और हिन्दू मौहल्लों में यह कि मुसलमानों ने हिन्दुओं को मार डाला, लूट लिया, बचाओ।

बस तलवार, भाला, छुरा, गंडासा, बरछी, लाठी, जो जिसके हाथ लगा लेकर निकल पड़ा—हिन्दू भी, मुसलमान भी और नगर भर में मारकाट मच गई। बाद में उस लड़के का भी पता चल गया। पूछने पर उसने बताया—"मुझे तो एक सिपाही ने ऐसा करने को कहा था और इसके लिए दो रुपये दिए थे।"

विचारने लायक बात कि किसी ने उस लड़के को नहीं रोका-टोका कि कहाँ, किसने, किसको मार डाला, लूट लिया और सब बौखला उठे। वही बात कि आँकड़ा बनाने में सब चूक गए और बहुत कुछ खो बैठे।

हमारे ही देश की एक लोक कथा है कि किसी तरह एक आदमी का नाक कट गया। उसने सोचा कि सब लोग अब मुझे नकटा कह कर हँसेंगे और समाज में जीना मुश्किल हो जाएगा। आदमी बुद्धिमान था। सुबह ही सुबह ज़ोर ज़ोर से कीर्तन के स्वर में पुकारने लगा—हे प्रभु ! तुमने खूब दर्शन दिए। वाह ! कैसा रूप है तुम्हारा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जय हो ! जय हो ! हाथ जुड़े हुए और मुँह आसमान की ओर उठा हुआ।

मौहल्ले-पड़ौस के लोग जागे-भागे और उसे घेर लिया—"क्या बात है, क्या बात है ?" उसने कहा— "रात एक संत के दर्शन हुए। उन्होंने उपदेश दिया कि यह नाक अहंकार का रूप है और अहंकार भगवान और मनुष्य के बीच में दीवार है। तुम अपना नाक काट दो, तो तुम्हें भगवान के दर्शन हो जाएँगे। विश्वास कर मैंने अपना नाक काट दिया। तभी से मुझे भगवान के साक्षात दर्शन हो रहे हैं।" और वह फिर उसी तरह हाथ जोड़ कर जय हो ! जय हो ! पुकारने लगा।

बस फिर क्या था। एक के बाद एक आदमी अपना नाक काटने लगा और उसकी तरह जय हो ! जय हो ! पुकारने लगा। बात उड़ी उड़ी राजा तक पहुँची, तो राजा भी वहीं आगया और भगवान का दर्शन पाने के लिए तलवार से अपना नाक काटने लगा। उसका मंत्री भी उसके साथ था। उसने राजा को रोक कर अपना नाक काट लिया, पर उसे ईश्वर का दर्शन नहीं हुआ। तब उसने नंगी तलवार दिखाकर उस आदमी से पूछा, तो डरकर उसने सच-सच हाल बता दिया। दूसरों ने भी स्वीकार किया कि हम इसकी मूर्खता का शिकार हो गए और नाक कटने की लाज बचाने को ईश्वर के दर्शन का ढोंग करने लगे। इस तरह मंत्री की बुद्धिमानी से राजा का नाक कटने से बच गया और राजा ने जल्लाद को बुला कर उन सब नकटों को फाँसी पर चढ़ा दिया।

लोक-कथा समाप्त हुई, पर इसका पाठ क्या है ? इसका पाठ यही है कि उस धूर्त की बातों में फँस कर नाक कटाने वाले वे सब लोग आँकड़ा बनाने में चूक गए, यहाँ तक कि राजा भी, पर मंत्री ने स्वयं नुकसान उठा कर भी ऐसा आँकड़ा बनाया कि राजा और दूसरे हज़ारों भटकने से बच गए।

हाँ बच गए, उसके लिए मंत्री जी को बधाई, पर राजा भी प्रशंसा का पात्र है कि उसने मंत्री की बात मानी और उन्हें जाँच पड़ताल का–श्री भगवन्तसिंह के शब्दों में–आँकड़ा बनाने का अवसर दिया, पर बहुत बार ऐसा होता है कि प्रवाह में सब बह जाते हैं और उस मंत्री की तरह कोई बुद्धिमानी की बात कहता भी है, तो उसे कोई नहीं सुनता—उल्टे उस कहने वाले को ही मूर्ख बताया जाता है।

न रेल थी, न मोटर, न हवाई जहाज़। मदमस्त समुद्र, बीहड़ बनों और सघन पहाड़ों के रास्ते, हज़ारों मीलों के खतरों भरे, संकट भरे, फिर भी धर्म की जोत से जगमगाते और साहस से उद्दीप्त मतवाले मनुष्य भारत से बाहर जाते, समुद्रों को लाँघते, धर्म-प्रचार करते, व्यापार करते, पर फिर घर न लौट पाते। जो जाता है लौट कर नहीं आता, यह भावना देश में बन चली। कुछ पंडितों ने घोषणा की कि समुद्र-यात्रा धर्म के विरुद्ध है। बस सारा देश इस घोषणा के माया-जाल में उलझ गया और बर्मा, लंका, स्याम, तिब्बत, जावा, सुमात्रा, बाली, मोरीशस, इण्डोनेशिया, चीन जाने कहाँ-कहाँ भारत की विजय पताका फहराने वाले कदम, कुछ मूर्ख पंडितों द्वारा घड़े कुछ श्लोकों के कैद खाने में घिरकर अपने साहस की डोर तोड़ बैठे ! वही बात कि पंडितों की बात का देश ने सही आँकड़ा नहीं बनाया और भारत माता की आकाश में उड़ती-कूदती कोयल पिंजरे का पंछी बन बैठी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६४० में मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में पाकिस्तान का प्रस्ताव पास हुआ। मुस्लिम लीग के नेताओं ने कभी और कहीं भी अपने पाकिस्तान का स्वरूप देश के मुसलमानों के सामने नहीं रखा, पर देश के पढ़े-लिखे और अनपढ़े मुसलमान पाकिस्तान की चाह में पागल होउठे— उसी में अपने भविष्य की उज्ज्वलता मानने लगे।

मेरे नगर के एक होनहार वकील युवक थे भाई मुश्ताक अहमद। वे मुस्लिम लीग द्वारा समर्थित एक बहुत प्रभावशाली बुजुर्ग को हराकर म्युनिसिपल बोर्ड के सदस्य चुने गए, पर बाद में वे भी मुस्लिम लीग में शामिल होगए। मैं एक दिन उनके घर गया। बड़े प्यार से मिले, चाय मंगाई। चाय पीते-पीते मैंने कहा—"मुश्ताक भाई, पाकिस्तान का साफ ढाँचा आपके नेता ने देश के सामने नहीं रखा ; फिर भी उनके और दूसरे नेताओं के भाषणों, वक्तव्यों, लेखों और बातचीतों से पाकिस्तान की शक्ल और सूरत को जो कुछ मैं समझ पाया हूँ, उससे यह समझ में आता है कि पाकिस्तान बनने से सिन्ध-सरहद-और पंजाब के मुसलमानों को कुछ खास अधिकार मिल जाएँगे, पर यू० पी० के मुसलमानों को तो उससे फायदे के बदले नुकसान ही होगा !"

बोले—"भाई साहब, पाकिस्तान के बारे में यह दलील तो एकदम पुरानी और घिसी-पिटी हो गई है; कोई नयी दलील आप दें तो बात आगे बढ़े।" थोड़ी देर रुक कर बोले—"भाई साहब, मुसलमानों के लिए पाकिस्तान नफा-नुकसान की बात नहीं, जीते जी जन्नत-स्वर्ग-पा लेने की बात है।"

मैं चला आया और १४ अगस्त १६४७ को पाकिस्तान बन गया। दोनों तरफ खूब मारकाट मची कि एक बार तो सारा राष्ट्रीय जीवन ही अस्तव्यस्त हो गया। मुश्ताक भाई अपनी कोठियाँ और जायदाद छोड़कर पाकिस्तान चले। स्टेशन पर मैं भी मिलने गया, तो बहुत परेशान थे। मैंने पूछा—"मुश्ताक भाई, ताने के लिए नहीं, जानने के लिए, हालत को समझने के लिए पूछ रहा हूँ कि पाकिस्तान पर मेरी उस दलील के बारे में आपकी अब क्या राय है ?"

उनका चेहरा मायूस हो उठा और मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर बोले—"अरे पण्डित जी, कुछ न पूछिए, बहुत बेवकूफ बने और बर्बाद हो गए।"

इस सबका क्या अर्थ, क्या मतलब, क्या माने ? यही कि करोड़ों आदमी जिन्ना साहब की बात का सही आँकड़ा तैयार करने में चूक गए।

पंचतन्त्र की एक नीति-कथा है कि एक कर्मकाण्डी पण्डित किसी यजमान से दान में एक बछड़ा पाकर गाँव की ओर चले, तो शाम हो आई। उन्होंने बछड़े को कन्धे पर उठा लिया और जल्दी-जल्दी चलने लगे। रास्ते में उन्हें चार ठग मिले। उन्होंने आपस में सलाह की कि आज ठगी में कुछ मिला नहीं। इस ब्राह्मण का यह बछड़ा मिल जाए तो आज शाम के भोजन का सुन्दर प्रबन्ध हो जाए।

योजना बना कर तीन आगे निकल गए और उनमें से एक ब्राह्मण के सामने आया—"पंडित जी पालागन !" पंडित जी खुश हुए—"सुखी रहो यजमान !" तब ठग ने उनके कन्धे की तरफ देखा और आश्चर्य से पूछा—"पण्डित जी, यह कुत्ता आपने कन्धे पर क्यों लाद रखा है ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कुत्ता! अरे मूर्ख, यह तो बछड़ा है!" ब्राह्मण ने कहा, तो व्यंग से हँस कर ठग ने कहा—अब इस देश में गौमाताएँ कुत्तों को जन्म देने लगी हैं, तो यह ज़रूर बछड़ा है और वह हँसता हुआ एक तरफ चला गया।

कुछ दूर पर दूसरा ठग ब्राह्मण को मिला और उसने भी अपने ढंग से उसे कुत्ता बताया, तो ब्राह्मण चिन्ता में पड़ गया, पर जब तीसरा ठग मिला और उसने पूरे ज़ोर से उसे कुत्ता कहा तो ब्राह्मण दुविधा में पड़ गया कि क्या यजमान ने मेरा उपहास करने के लिए मुझे बछड़े के स्थान में कुत्ता दे दिया है।

शाम हो गई थी, अन्धेरा घिर आया था, इसलिए बछड़ा साफ दिखाई दे नहीं रहा था। तभी मिला चौथा ठग और उसने ब्राह्मण के आत्म-सम्मान पर एक करारी चोट मारी—"महाराज, इस कुत्ते के स्पर्श से आपका यज्ञोपवीत अपवित्र हो रहा है, आपको लाज नहीं आती!" ब्राह्मण का आत्मविश्वास खण्डित हो गया और वह बछड़े को कन्धे से नीचे पटक, कन्धे झाड़ता आगे बढ़ गया। चारों ठग तो आसपास थे ही, उन्होंने बछड़ा उठा लिया और खुशी-खुशी वे अपने घर पहुँचे। प्रश्न है कि ब्राह्मण मूर्ख क्यों बन गया? उत्तर वही कि ब्राह्मण आँकड़ा बनाने में चूक गया।

स्वतन्त्र भारत की ही घटना है कि एक आदमी को विधान सभा के चुनाव में दूसरे आदमी ने हरा दिया। दोनों धनपति थे। हारे हुए धनपति ने एक गुण्डे को गुप्त रूप से अपने घर रख लिया और उसे मुँह माँगे रुपए देकर उससे तै किया कि जहाँ भी उस जीते हुए आदमी के सम्मान में पार्टी हो, वह उसे अपमानित करे। पहली ही पार्टी में जब बहुत-से हार पहन कर वह विजेता पुरुष खुशी-खुशी धन्यवाद देने को खड़ा हुआ, तो उस गुन्डे ने ज़ोर से चिल्ला कर कहा—"तुम मेरे ढाई हज़ार रुपए देते हो या मैं पंचों के सामने अपना मामला पेश करूँ?"

उन्होंने इसकी तरफ देखा, तो एकदम अनजान आदमी। हिम्मत कर उन्होंने पूछा—"कैसे ढाई हज़ार रुपए? भाई, किससे लेने हैं तुम्हें ढाई हज़ार रुपए?"

गुण्डा बोला—"अब पंचों में यह भलाई मत दिखाओ। नहीं तो सबके सामने खोल कर रख दूँगा सारा मामला!"

लोगों के मन में अब दिलचस्पी की एक लहर-सी दौड़ गई—क्या बात है? क्या बात है?

गुण्डे ने बड़ी गम्भीरता से कहा—"मैंने चुनाव के लिए इन्हें दस लड़कियाँ सप्लाई की थीं। जो असरदार आदमी किसी तरह इनके काबू में नहीं आया, उसके पास वे लड़कियाँ भेजी गईं। अपने को मिटा कर उन बेचारियों ने उन्हें इनकी मदद के लिए खड़ा किया और यह जीत गए। मैं झूठ नहीं बोलता, इन्होंने मुझे ढाई हज़ार रुपए पेशगी दिए थे, मैं उनसे नहीं मुकरता, पर बाद में ढाई हज़ार रुपए और देने का वायदा था इनका। अब यह कहते हैं कि चुनाव में बहुत खर्च हो गया है। आप लोग बताएँ कि इसमें मेरा या उन बेचारी लड़कियों का क्या कसूर है जिन्होंने दो महीने तक आपा बेचकर इन्हें जिताया?"

बड़ी फिट-फिट हुई और पार्टी तो खराब हो ही गई, उनकी जीत का सारा मज़ा ही किरकिरा हो गया। उन्होंने लाख सफाइयाँ दीं, कसमें खाईं, पर अधिकांश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों का विश्वास यह रहा कि लड़कियों की बात सच है !

अब आगे का सुनो हवाल। दूसरे दिन सुबह उन हारे हुए भाई ने उस गुण्डे को इनाम दिया, उसके काम की तारीफ की और उससे चले जाने को कहा, पर वह उनके घर से जाने को तैयार नहीं हुआ। उसने कहा—"अभी मैं बाहर निकलूँगा तो वह एम० एल० ए० मुझे कत्ल करा देगा।"

किस्सा कोताह यह कि तीन महीने वह उनके ही घर जमा रहा। खाना भी खाता, शराब भी पीता, कपड़े भी लेता और गुर्राता भी। वे उससे परेशान, करें तो क्या करें, क्योंकि न पड़ौसियों की मदद ले सकते हैं, न पुलिस की—बाहर बात निकली कि भण्डाफोड़ हुआ। एक दिन रात के समय जब सब सो रहे थे- वह बिना किसी से कुछ कहे चला गया, पर अपने साथ घर की जवान लड़की और कई हज़ार रुपयों का ज़ेवर भी लेता गया। कुछ दिन बाद इस लड़की ने बम्बई के एक होटल में आत्महत्या कर ली; क्योंकि वह उसे अकेली छोड़ कर, बिना होटल का किराया आदि चुकाए, सब मालताल लेकर कहीं चला गया था !

यह क्या बात ? वही बात कि वह हारा हुआ भाई आँकड़ा बनानें में चूक गया। उसने पाप का, बुराई का, सहारा लेकर दूसरे का नाश-अपमान करने का कार्यक्रम बनाते समय यह नहीं सोचा कि बुराई तो बुराई ही है और उसे किसी भी उद्देश्य से पोषण देकर हम लाभ नहीं उठा सकते, शान्त-सुखी नहीं रह सकते। वह अनुभव से पहले यह न समझ पाया कि बुराई दुधारी तलवार है। हम उसे किसी की छाती पर रख उस पर खड़े हों, तो उसकी छाती तो कटेगी ही, पर हमारे पैर भी लहूलुहान होने से नहीं बचेंगे।

बात सबकी सुनिए, विचार सबके पढ़िए, दृश्य सब तरह के देखिए, पर सुन कर, पढ़ कर, देखकर ही उनके पीछे न दौड़िए; उन्हें अपने जीवन का, आचरण का अंग न बनाइए, जब तक आप उनकी जाँच-पड़ताल न कर लें, उन पर सोच-विचार न कर लें, उन्हें अच्छी तरह परख न लें।

बस वही श्री भगवन्तसिंह की बात—आँकड़ा बनाइए, आँकड़ा बनाना सीखिए, आँकड़ा बनाने की आदत डालिए और आँकड़े को एक राष्ट्रीय कला मानिए।

दुःख से बचने के लिए अज्ञान की दलील बेकार है। कोई अज्ञानी अगर बिजली के तार को छुएगा तो मरेगा ही। आत्मा को भी क्रोध, लोभ, मोह वगैरह करने से जन्म-जरा-मरण के दुख भोगने ही पड़ते हैं।

—अज्ञात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्द-भवन

श्री विश्वम्भरनाथ पाण्डे

सन् १८५७ के स्वाधीनता संग्राम की लपटें जब ठंडी पड़ने लगीं, तो विदेशी शासकों ने भयंकर प्रतिकार की योजना बनाई। लाखों बेगुनाहों को फाँसी के तख्तों या दरख्तों की शाखाओं पर फाँसी दे दी गई। इतिहास लेखक मालेसन ने लिखा है कि "इस प्रतिकार की आग से न बूढ़े बचे न बालक, न स्त्रियाँ बचीं, न पुरुष, न बलवान बचे, न अपाहिज।" चूँकि बहादुरशाह के सुनहरें सूरज वाले नीले झण्डे के नीचे ही इस अलौकिक क्रान्ति का सृजन हुआ था, इसलिए विदेशी सरकार ने प्रत्येक मुसलमान नागरिक को इसके लिए उत्तरदायी बनाया। चुन-चुन कर मुसलमानों को फाँसी पर लटकाया गया। इस स्थिति को सम्राट बहादुरशाह 'ज़फ़र' का कवि हृदय अपनी करुणा से भरी हुई नज़्म में इस प्रकार बयान करता है—

गई यक बयक जो हवा पलट,
नहिं दिल को अपने क़रार है।
करूँ ग़म सितम का मैं क्या बयाँ,
मेरा सीना ग़म से फ़िग़ार है।
ये रियाआ हिन्द तबाह हुई,
कहो क्या न इन पै जफ़ा हुई।
जिसे देखा हाकिमे वक्त ने,
कहा यह भी क़ाबिलेदार है।
कहीं ऐसा भी है सितम सुना,
कि दी फाँसी लाखों को बेगुनाह।
वले कलमागोयों की तर्फ़ से,
अभी दिल में उनके गुबार है।

बरसों के बाद जब प्रतिकार की आग भी ठंडी पड़ गई, तब 'फूट फैलाओ और हुकूमत करो' के कूटनीतिक सिद्धान्त पर अमल करने वाले चतुर विदेशियों के मन में शंका उठी कि एक पूरी की पूरी मुसलमानी जमात से ऐसा भयंकर बदला लेना कहाँ तक उचित हुआ। अपनी गलती महसूस करते ही तराजू के पलड़े का झुकाव दूसरी तरफ शुरू हो गया, तुरन्त मुसलमानों को महत्वपूर्ण अल्प संख्यक जाति का रुतबा दिया गया और उनके प्रति उदारता की नीति बरती जाने लगी। अंगरेज़ शासक मुसलमानों के एक ऐसे नेता की तलाश करने लगे, जो इस नीति को व्यावहारिक रूप देने में उनका मददगार और सहायक सिद्ध हो सके।

पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त (जैसा कि उस समय उत्तर प्रदेश विख्यात था) के लेफ्टीनेंट गवर्नर सर जान स्ट्रैची ने तत्कालीन गवर्नर जनरल के सामने सर सय्यद अहमद के नाम का सुझाव रखा। कुछ थोड़े से विचार-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनिमय के बाद अंगरेज़ शासकों ने सर सय्यद को भारत के मुसलमानों का पेशवा स्वीकार कर लिया और गवर्नर जनरल हर नीति सम्बन्धी मामले में लेफ्टीनेन्ट गवर्नर के माध्यम से सर सय्यद से विधिवत् सलाह मशविरा करने लगा।

सन् १८७० में सर जान स्ट्रैची ने सर सय्यद को एक पत्र में लिखा—"चूंकि खास सलाह मशविरे के लिए आपको अकसर इलाहाबाद तशरीफ लाना पड़ता है और अपने इलाहाबाद के क़याम में आपको काफी दिक्कतें और परेशानियाँ उठानी पड़ती हैं, इसलिए यह तजवीज़ पेश है कि इलाहाबाद में जनाब के लिए एक कोठी तामीर की जाए। कोठी तामीर हो जाने से आप इलाहाबाद में ज़्यादा दिनों तक क़याम फ़रमा सकते हैं। इस तजवीज़ के मातहत सरकार ने गवर्नमेंट हाऊस के नज़दीक बीस एकड़ जमीन मुहय्या कर ली है। कोठी के नक्शे तैयार कर लिए गए हैं, जो इस लिफाफे में आपकी मन्जूरी के लिए भेजे जा रहे हैं। सरकार चाहती है कि जब अगली बार आप इलाहाबाद तशरीफ लाएँ, तो इसी कोठी में मुक़ीम हों।"

सर सय्यद ने सर जान स्ट्रैची की यह तजवीज़ स्वीकार कर ली। ज़मीन की लिखा-पढ़ी सर सय्यद के नाम हो गई और सन् १८७१ तक कोठी भी बनकर तैयार हो गई। कोठी बन जाने के बाद जब सर सय्यद इलाहाबाद आए, तो विधिवत् गृह-प्रवेश की रस्म अदा की गई। सर सय्यद ने अपने बेटे के नाम से कोठी का नाम भी 'महमूद मंज़िल' रखा।

गृह-प्रवेश के अवसर पर प्रदेश के लेफ्टीनेन्ट गवर्नर और मुख्य अतिथि सर विलियम म्योर ने शुभ-कामना का जाम पीते हुए कहा—"मुझे हर तरह से आशा है कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को चिरस्थायी और दृढ़ बनाने में महमूद मंजिल एक ज़बर्दस्त केन्द्र साबित होगी।"

उपस्थित अतिथियों ने समर्थन के स्वर में 'आमीन' कहा।

अनेक वर्षों के बाद जब सर सय्यद के पुत्र महमूद अहमद इलाहाबाद हाई कोर्ट के जज बने, तो महमूद मंज़िल उनका निवास स्थान रहा। जस्टिस महमूद बहुत मिलनसार और प्रेमी स्वभाव के थे। बड़ी शायराना तबियत उन्होंने पाई थी। हाईकोर्ट के मुकदमों के फैसलों में भी वे स्वरचित शेर उद्धृत कर देते थे। कत्ल के एक मुकदमे में उनका यह शेर बहुत मशहूर हो गया था—

जो चुप रहेगी ज़ुबानें खजर,
लहू पुकारेगा आस्तीं का!

हाईकोर्ट से अवकाश प्राप्त करने के बाद जस्टिस महमूद ने इलाहाबाद छोड़ दिया। सर सय्यद के साथ-साथ महमूद मंजिल का राजनैतिक महत्व समाप्त हो ही चुका था। जस्टिस महमूद ने महमूद मंजिल को बेचने का फैसला कर लिया और सन् १८९२ में मुरादाबाद के रायबहादुर परमानंद पाठक के हाथों उसे बेच भी दिया। पाठक बन्धुओं ने भी धूमधाम से महमूद मंजिल में गृह-प्रवेश किया और अपनी कोठी का नाम नए सिरे से 'पाठक निवास' रख दिया।

पाँच-छः बरस में पाठक बन्धुओं को ऐसा महसूस हुआ कि उन्होंने एक सफेद हाथी पाल लिया है। पाठक-निवास उन्हें एक खर्चीला सौदा लगा; अतएव उसे बेच डालने का उन्होंने फैसला कर लिया। अपने इस इरादे को जब श्री परमानन्द पाठक ने अपने हाईकोर्ट के वकील पंडित मोतीलाल नेहरू के सामने प्रकट किया, तो वे तुरन्त पाठक-निवास खरीदने के लिए तैयार हो गए। चुनाचे सन् १८९८ ईसवी में पण्डित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोतीलाल नेहरू ने बीस हज़ार रुपए में 'पाठक निवास' खरीद लिया।

यूं कोठी थी तो बड़ी, मगर पण्डित मोतीलाल नेहरू के वैभवपूर्ण शानदार रहन-सहन को देखते हुए छोटी लगी। मोतीलाल जी ने उत्तर का पूरा दोमंजिला हिस्सा नया बनवाया। मुख्य कोठी के साथ-साथ दो छोटे-छोटे काटेज बंगले बनवाए। कोठी के अन्दर नहाने के लिए तालाब बनवाया और ड्राइंग रूम का नए सिरे से निर्माण कराया।

कोठी जब नई आनबान में सजधज कर तैयार हुई, तो प्रश्न उसके नामकरण का आया। महाकवि अकबर मोतीलाल जी के मित्रों में थे। मोतीलाल जी ने उनसे चर्चा की, तो अकबर बोले—"पंडित जी, मैंने अपनी कोठी का नाम 'इशरत मंजिल' रखा है। आप उसी का हिन्दी तर्जुमा अपनी कोठी के लिए रख लें।"

मोतीलाल जी ने पूछा—"वह क्या ?"

अकबर साहब ने कहा—"इशरत मंजिल का हिन्दी तर्जुमा होगा—आनन्द-भवन।"

मोतीलाल जी ने खुश होकर कहा—"बहुत उम्दा सुझाव है आपका। मैंने मंजूर किया। इस कोठी का नाम आनन्द भवन रहेगा।"

भाग्य का उलट-फेर इसी को कहते हैं कि जो कोठी ब्रिटिश साम्राज्य को स्थायी और दृढ़ करने के लिए बनाई गई थी, उसी कोठी में ब्रिटिश साम्राज्यवाद को समाप्त करने की महत्वपूर्ण योजनाएँ बनीं। पूरे २० वर्ष तक कांग्रेस का प्रधान कार्यालय वहाँ रहा। आनन्द-भवन की वह कोठी मोतीलाल जी ने सन् १९२८ में राष्ट्र को अर्पित कर दी और उसका नया नाम पड़ा—'स्वराज्य भवन'। महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस वर्किंग कमेटी की अनेक महत्वपूर्ण बैठकें आनन्द-भवन में ही हुईं। इन बैठकों में जो कार्यक्रम बनाया गया, उसी के परिणामस्वरूप ब्रिटिश साम्राज्य छिन्न-भिन्न हुआ।

गांधी-इरविन समझौते के पूर्व ६ फरवरी सन् १९३१ को लखनऊ में पण्डित मोतीलाल नेहरू की मृत्यु हुई। गान्धी जी और दूसरे नेता उनकी मृत्यु-शय्या के पास उपस्थित थे। मृत्यु से पूर्व मोतीलाल जी ने गांधी जी से कहा—"भारत के भाग्य का निर्णय इलाहाबाद के आनन्द-भवन में कीजिए। मुझे ले चलिए और मेरी मौजूदगी में यह निर्णय कीजिए। मातृभूमि के भाग्य-निर्णय के सम्बन्ध में सम्मानपूर्वक जो भी समझौता हो, मैं उसमें भाग लेना चाहता हूँ। यदि मुझे मरना ही है, तो मैं स्वतन्त्र भारत में मरूँ। मेरी आखरी नींद गुलाम देश में नहीं, वरन स्वतन्त्र देश में हो।"

इस तरह महमूद मंजिल से लेकर स्वराज्य भवन तक की कहानी भारत की आज़ादी की कहानी है। आज 'स्वराज्य भवन' अखिल भारतीय राष्ट्र-बाल-संस्था का केन्द्र है।

सच्चा स्वराज्य तो अपने मन पर राज्य है। उसकी कुंजी सत्याग्रह, आत्मबल अथवा दयाबल है। इस बल को काम में लाने के लिए सर्वथा स्वदेशी बनने की ज़रूरत है।

—गांधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं किसका बेटा हूँ ?

श्री ईशकुमार 'ईश'

•

पंखड़िया पण्डित और लाला मड़चू राम;
कवि ईशकुमार 'ईश'
कि मुहावरे की भाषा में
'नाक पकड़ो, तो दम निकले !'
पर देख रहा हूँ २० वर्षों से उसे
बिना रुके राह चलते, आगे बढ़ते—
साहित्य में भी, जीवन में भी !
कहूँ अपने पैरों पर टिके-टिके,
न कुरसी पर, न मंच पर;
जैसे स्वावलंब की एक रेखा हो वह !
हाँ रेखा;
जिसमें इंगित, जिसमें रूप;
इंगित भाव पूर्ण, तो रूप प्रभाव पूर्ण !

'मैं किसका बेटा हूँ ।'

यह कोई रहस्य की बात नहीं है। बड़ी सरलता से मैं अपने पिता जी का नाम बता सकता हूँ, उनकी उत्पत्ति और विस्तार का ऐतिहासिक वर्णन कर सकता हूँ। जन्म से ३० वर्ष की आयु तक का मेरा लालन-पालन उन्होंने किन-किन अवस्थाओं में कैसे-कैसे किया, यह सब भी मुझे ज्ञात है। उनकी भोली भावनाओं से ओत-प्रोत धार्मिक प्रवृत्तियाँ, उदार प्रकृति, निश्छल सदाशयता और चारित्रिक सरलता आदि गुणों के कारण मैंने देखा है कि युग की टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं के प्रतीकों ने बार-बार उन्हें ठगा—जीवन के चौराहे पर सदैव नचाया और एक महान मौन साधक की भाँति वे ५८ की वय तक नाचते रहे। भोलेपन की भी सीमा होती है, लोग उन्हें ठगते रहे, छलते रहे, तंग करते रहे; इतना ही नहीं समय-समय पर उनके व्यक्तित्व पर भी आक्रमण करते रहे पर वे थे कि एक परमहँस की भाँति सब कुछ सहन करके भी हँसते ही रहे।

क्रोध भी उन्हें आता था, पर वह घर की चहार दीवारी के अन्दर ही अन्दर। आज भी जब उनके पुराने साथी, जिन्हें यह पता नहीं कि वे अब इस असार संसार में केवल अपनी स्मृति छोड़ कर परलोकवासी हो चुके हैं, पूछते हैं—"अरे भाई, भगत जी कहाँ हैं ?" दूसरा कहता है—"मुनीम जी से तो बहुत दिन मिले हो गए; क्या करते हैं अब वे ?"

मैं खोया-खोया-सा यही उत्तर उन्हें दे पाता हूँ—"जी, वे तो अपना जीवन पूर्ण कर हमें छोड़ गए।" मैं सुनता हूँ, वे स्मृतियों में डूब कर कहते हैं—"भगवानदास था बड़ा सीधा। लोगों ने उस बेचारे को परेशान बहुत किया। भोले भी बहुत देखे, पर वह तो बिल्कुल भोलानाथ था। मुझे तो भाई,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुनीम की बड़ी याद आती है। मैं और वे साथ-साथ कोठी में बैठते थे। बड़ा तंग करते थे सब उसे, पर वह हँसता ही रहता था। बुरा कभी नहीं माना उसने।" और इसी तरह की बहुत-सी बातें !

तभी उनका त्रिपुण्ड और त्रिवली से युक्त उन्नत ललाट, स्नेहमय सरल नेत्र और हल्का साँवला सरल चेहरा मेरी आँखों के सामने भगवती दुर्गा की साधना में लीन दिखाई देने लगता है।

और प्रातः स्मरणीया, देवी स्वरूपा, परम पूज्या मा का, तो मैं अनन्तकाल तक ऋणी रहूँगा, जिन्होंने घोर आर्थिक संकट-काल में भी रातों रात गोटे के फूल बना-बना कर उससे प्राप्त अल्पराशि से—हम भाई-बहिनों का लालन-पालन किया और जहाँ तक सम्भव हुआ शिक्षित भी, पर जब मैं इस योग्य हो गया था कि कम से कम दोनों समय के लिए भर पेट रोटी तो ला ही रहा हूँ, तो वे चलीं गईं; नहीं-नहीं, कोई अज्ञात उन्हें ले गया, मेरी आँखों के सामने, पर जिसे मैं देख नहीं पाया। वह डर गया था शायद मुझसे कि कहीं मैंने उसे देख लिया, तो मा के जीवन से पहले उसे मेरे जीवन से लड़ना पड़ेगा। ओह, वह कौन था, जो दिये की बाती ऐसी बुझा गया कि मैं अपने प्राणों की ज्योति से भी उसे नहीं जला सकता-कभी नहीं जला सकता। मैं अपने सौ-सौ जीवन पूर्ण कर देने पर भी ऐसी अच्छी मा कहाँ पाऊँगा। मुझे याद है उनके देहावसान पर मेरा बचपन यह सोच-सोच कर बहुत रोया था कि अब मुझे बेटा कहने वाला इस संसार में कोई नहीं रहा।

ऐसी अवस्था में यह प्रश्न कि 'मैं किसका बेटा हूँ ?' मेरे लिए महत्वपूर्ण नहीं है, पर मेरी ३॥ वर्षीया पुत्री इला भारती बड़े स्नेह के साथ दिन भर में कई-कई बार मेरे गले में अपना हाथ डाल कर, टेढ़ी-तिरछी गरदन करके, अत्यन्त सहज भावुकता से भरे नयनों को नचा कर जब मुझसे यह पूछती है—"बाबू जी ! तुम तिसते बेते हो ?" तो मेरा हृदय भर आता है और उस भोली बालिका को मैं क्या उत्तर दूँ, यह न सोच पाकर बस उसकी ओर बड़े प्यार में डूबा-डूबा देखने लगता हूँ। मुझे न जाने क्यों, उसके हृदय से मा का सरल स्नेह छलकता हुआ अनुभव होता है और जब मेरा उत्तर न पाने पर वह स्वयं ही फिर पूछती है—"बाबू जी, तुम मेले बेते हो ?" तो मैं उन्मन होने पर भी हँसते हुए कह देता हूँ—"हाँ बेटे ! मैं तुम्हारा बेटा हूँ।"

तभी वह फिर कहती है—"बब्बू ते नई हो, भाभी (मा) ते नहीं हो ?" और मुझे बड़ी दृढ़ता के साथ कहना पड़ता है—'नहीं!' सुनकर वह नाचने लगती है यह कह-कह कर—"बाबू जी, मेले बेते हैं, बाबू जी, मेले बेते हैं।"

इला का यह पूछना रोज की बात हो गई है और दिन में एक बार नहीं, कई-कई बार। बहुत बार मैं उसकी स्नेहातुर बुद्धि के ऐसे प्रदर्शन पर अत्यन्त प्रसन्न होता हूँ और कई बार सोचता हूँ कि काश ! मैं फिर एक बार सचमुच बेटा बन पाता !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास करो

श्री जी० सी० हैलन

विश्वास करो—
यह प्रलयंकारी आँधी-दानवी,
यह महा विनाश का ग्रन्थ,
जो तुच्छ दीमक ने रचा,
यह बिजली की कड़क-गरज,
जो मानव पर प्रलय बन हँसती है—
है उसी कलाकार की कृति !

विश्वास करो—
यह मधुबन की कलिका,
जिसमें इतनी कोमलता,
जिसमें इतनी पावनता,
जो मानों युगों के अभ्यस्त हाथों
इतने यत्न से बनी,
जिसमें न स्याही है, न धब्बा,
जिसमें न विष है, न विनाश,
जिसमें प्रकृति का सोलह-शृङ्गार
मुस्काता, झूमता, इठलाता,
मानव पर नव आशा बन छा जाता है,
है उसी कलाकार की कृति !

विश्वास करो—
यह मृत्यु की यम-संगत घटा,
जिसमें छिपते कितने ही सलोने चान्द;
और यह प्रचण्ड प्रभाकर,
जिसमें सितारों के सुमन-समूहों पर भी
कड़ा पहरा कि वे झाँक तक न सकें;
और यह हाहाकार
कि न-घुट सको, न मर सको,
है उसी कलाकार की कृति !

विश्वास करो—
ये नवजात शिशु,
स्वच्छतम, पवित्रतम, सुन्दरतम,
निर्दोष, निष्कलंक,
जिनके अंग-अंग में
हिम की निर्मलता निहित,
हैं उसी कलाकार की कृति !

विश्वास करो—
ये कवि दिव्य कलाकार,
जो रचते रंजित कल्पनाओं से,
भव्य, मधुर, अमर कृतियाँ,
और ये दिव्य चित्रकार,
जो रचते युगों की उच्छ्वास तूलिका से
मानवता का चित्रमय इतिहास,
हैं उसी कलाकार की कृति !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफाई सिखाने का स्कूल

श्री रतनसिंह 'हिमेश'

किसी ने दरवाज़ा खटखटाया।

मैंने दरवाज़ा खोला, तो पड़ौसी महोदय चम्बा के चप्पल हाथ में लिएं सामने खड़े थे और होंठों की कटोरी बनाए हँस रहे थे। मैंने उन्हें अन्दर बुला कर बैठा लिया। बैठते ही उन्होंने कहा—

"ये चप्पल कैसे हैं?"

"अच्छे हैं" मैंने गौर से चप्पलों को देखते हुए कहा।

"आपको इनमें कोई विशेषता नहीं नज़र आती?"

"विशेषता तो यह है कि न तो ये चम्बा के चप्पल लगते हैं और न पेशावरी; कुछ अजीब-से हैं।"

"यही तो इनकी खासियत है जनाब! ये मेरा अपना डिज़ाइन है। मैंने ढली में जाकर स्वयं बनवाए हैं। अब आप देखिए कि इनसे एड़ी में गर्द नहीं लग सकती और आगे चप्पल हैं पूरे, लेकिन सारी तारीफ तो कीमत की है। आप क्या सोचते हैं कि इनकी कीमत क्या है?"

यह प्रश्न उन्होंने चप्पल मेरी नाक के पास लाकर पूछा, परन्तु इससे पहले कि मैं कोई उत्तर दूँ, उन्होंने स्वयं ज़ोर देकर चप्पल हिलाते हुए कहा—"तेरह रुपए! सिर्फ तेरह रुपए! है नहीं कमाल?" इस बार उनके होंठों की कटोरी देखने योग्य थी और वे मुझसे अथाह प्रशंसा की प्रतीक्षा कर रहे थे।

"हाँ, कीमत तो ठीक है। मैंने भी दो साल हुए, ग्यारह रुपए में ऐसे चप्पल लिए थे, परन्तु उनमें यह एड़ी नहीं थी।"

"हाँ-आँ-आँ-आँ! यही तो ब्यूटी है इन चप्पलों की। इन एड़ियों के लिए ही मैंने चार रुपए अधिक दिए हैं।"

वैसे चप्पल कम खर्ची का वाहिद इलाज है। अजी, क्या रखा है इन फिज़ूल के खर्चों में; यह खरीदो, वह खरीदो! आज एक पैंट पहनी, तो कल दूसरी!! मेरी शादी को आठ वर्ष हो गए। मैंने बीबी के लिए कपड़े नहीं बनाए। वह अभी तक विवाह के कपड़े ही समाप्त नहीं कर सकी और बताऊँ आपको, जब भी वे समाप्त हुए, मैंने खद्दर के सिलवाने हैं। खुद मुझे बाज़ार जाना पड़ता है, लोगों से मिलना पड़ता है, इसलिए पैंटें सिलवाता हूँ, पर जिस दिन मैं गाँव में रहना आरंभ करूँगा, मैं भी पैंटें नहीं सिलवाऊँगा।"

उन्होंने होंठों के दोनों किनारों पर आए थूक को साफ करने के लिए विश्राम किया कि तभी मैंने कहा—"आप इतने अमीर होते हुए भी सादगी का ऐसा आदर्श स्थापित करते हैं, यह आश्चर्य है!"

वे एक ओर का थूक ही साफ कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाए थे कि बोल पड़े—"हाँ, आप मुझे ठीक समझते हैं, इसीलिए तो मैं आपसे मेल-जोल रखता हूँ। अब आप सुनिए कि मैंने कल नौकर भी हटा दिया है।" वे एक बार फिर होंठों की कटोरी बनाकर मेरी ओर देखने लगे।

"अच्छा?" मैंने आश्चर्य की मुद्रा में पूछा; यद्यपि मुझे कोई आश्चर्य नहीं हो रहा था।

"जी हाँ, २५ रुपए उसको मैं मासिक वेतन देता था और खाने का आजकल हमारे स्टेण्डर्ड के मुताबिक नौकर पर कम से कम भी चालीस रुपए व्यय आ जाता है। फिर सिनेमा, सिगरेट और अल्लम-पल्लम के भी दस रुपए और आये महीने फटे-पुराने कपड़े, तो इनके भी दस रुपए। बताइए, तो कितने हुए?"

मैं उंगलियों पर गिनने लगा, तो बोले—"आप रहने दीजिए। गलती कर जाएँगे हिसाब में। पच्चीस और चालीस पैंसठ, जमा दस बराबर है पछत्तर, जमा दस हो गए पचासी; गोया नब्बे हुए, बल्कि सौ ही समझिए। बताओ, है फिज़ूल-खर्ची कि नहीं? यह भी छोड़ो। ये मैं दे सकता हूँ, इसलिए देता आया हूँ, मगर हमें क्या हक है कि हम तो ऐश करें और एक नौजवान अपना जीवन हमारे बर्तन मांजते हुए गुजारे? ये सरमायादार लोग समझते नहीं कि कितने इज़्म इसी गलती के कारण फैल रहे हैं। अब बताओ, मैंने कैसा आदर्श कायम किया यह?"

"वाह, यह तो खूब आदर्श है। आप तो कमाल ही करते हैं!"

इसी समय श्रीमती जी ने खाना तैयार होने और आफिस को देर हो जाने की सूचना देकर उनसे मेरा पीछा छुड़ाया। श्रीमती जी की इस महान अक़्ल के काम पर मैं फूला नहीं समाता। वास्तव में वे बोर को बहुत शीघ्र पहचान जाती हैं और मेरा उद्धार करने के लिए कोई न कोई बहाना बना कर उपस्थित हो ही जाती हैं।

(२)

कई दिन बाद मैं नहा-धोकर कपड़े पहन ही रहा था कि दरवाज़े पर दस्तक हुई। मेरा दिल एकदम बैठ-सा गया। इधर खाना तैयार हो रहा था और उधर घड़ी मेरे कर्तव्य की सूचना दिए जा रही थी, पर बचने का कोई उपाय न था। दरवाज़ा खोला। वही चिर-परिचित कटोरी युक्त चेहरा मेरे सामने था। इससे पहले कि मैं हाल-चाल पूछता, वे देहली के अन्दर आ चुके थे।

"भई, मैं तो समझता हूँ कि आदमी को पढ़ना चाहिए और खूब स्वाध्याय करना चाहिए।" उन्होंने कुर्सी पर बैठते ही कहा।

"हाँ, यह तो है ही" मैंने हामी भरी।

"इसीलिए मैंने तो बीबी और बच्चों को ताकीद कर दी है कि वे खूब पढ़ें।"

"यह बहुत अच्छा किया आपने।"

उन्होंने पैंतरा बदल कर बात शुरू की। शायद पहला तीर उनकी राय में तुक्का सिद्ध हो गया था—"यार, मुझे ये देश-सेवा के सब ढंग अच्छे नहीं लगते।"

"हाँ, ये तो सब ढोंग हैं, लोगों को ठगने के उपाय।" मैंने उनकी बात आगे धकेलने के विचार से कहा।

"बस, तुम्हारी राय ठीक है, इसीलिए मैंने हमेशा देश-सेवा का अपना ही रास्ता अपनाया है। आप जानते ही हैं कि स्वास्थ्य पर राष्ट्र का आधार है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जी हाँ, स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ आत्मा रहती है।"

"बिलकुल ! मैंने" वे फुसफुसाए "दो स्त्रियों को ६ रुपए पर सफाई सीखने के लिए नौकर रख लिया है।"

मैंने उनकी बात को न समझ कर भाव-शून्य चेहरे से उनकी ओर देखा।

"आप समझे नहीं ? एक को मैं पाँच रुपए देता हूँ; उसे बर्तन साफ करना सिखाया जाता है। दूसरी को चार रुपये देता हूँ; उसे झाड़ू देना, पुस्तकों को ठीक रखना, कपड़ों पर प्रेस करना आदि अन्य सफाई की बातें सिखाई जाती हैं। काफी समय लग जाता है मेरा! बताइए, कोई और कर सकता है इतनी कुरबानी ?"

कटोरी इस समय प्रशंसा से लबालब होना चाहती थी और मैंने भी वैसा ही किया, पर मैं और गहरी डुबकी खाने वाला था ही कि बीबी की कृपा से पीछा छूट गया।

बाद में मैंने हिसाब लगाया कि पहले उन्हें तीन रुपये प्रतिदिन के व्यय से काम करवाना पड़ता था। अब वही काम पाँच आने प्रतिदिन में करवा लेते हैं और पहले केवल एक नौकर था, अब दो हैं। मैंने श्रीमती जी से कहा—"तुम भी सफाई सिखाने का ऐसा ही स्कूल खोल लो, तो क्या बात है!" सुनकर वे हँस पड़ीं और मुझे भी हँसी आ गई!

卐

सुन्दरतम निर्माण

रावणत्व से मा धरती के, कंपित पावन प्राण!
समर-भूमि में चलें निरन्तर, तेरे भीषण बाण!
निशिचर-कुल कृतार्थ हो जाए, पा-पा कर निर्वाण!
बस नवीन जीवन का यह ही, सुन्दरतम निर्माण!!

श्री ब्रह्मानन्द 'वन्धु'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर तुमने यह बात न सोची !

श्री शेरजंग गर्ग

•

तुमने कहा, न मुझको अब तुम सपनों में भी कभी बुलाना,
मुझको नींद कहाँ आएगी, पर तुमने यह बात न सोची !

करते यदि संकेत तनिक तो,
तुमसे पीर बदल सकता था,
आँसू तक बनकर आँखों से,
प्राण, तुम्हारी ढल सकता था,

जग की बदनामी से डरकर, तुम कहते हो राह बदल लूँ,
मेरी राह कहाँ जाएगी, पर तुमने यह बात न सोची !

जिसमें हो न तुम्हारी गरिमा,
ऐसा कोई गीत न गाया,
सचमुच मैंने सकल जगत में,
तुम जैसा अवलम्ब न पाया,

अपने आँगन में गाने पर, तुमने ही बन्दिश लगवादी,
मेरी पीर कहाँ गाएगी, पर तुमने यह बात न सोची !

चातक की नादान रटन का,
तुमने अर्थ नहीं जाना है,
पागल प्रेमी की अनन्यता को
बस केवल छल माना है ।

तुमने तो कह दिया त्याग दो, विधु को पाने की इच्छाएँ,
मेरी चाह कहाँ छाएगी, पर तुमने यह बात न सोची !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री नज़ीर बनारसी;

भारत की धरती का प्यारा पूत और शायर !

श्री रमेशचन्द्र झा

•

बापू के महाप्रयाण के बाद उनके प्रति अर्पित की गई श्रद्धांजलियों के कई सुन्दर संकलन प्रकाशित हुए। 'बापू की समाधि पर' नाम से एक संकलन प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में मेरी भी एक रचना प्रकाशित हुई। यह पवित्र अनुष्ठान दक्षिण बिहार की किसी संस्था ने किया था। इस संकलन में एक रचना मिली 'नज़ीर बनारसी' की। उसमें एक शेर था—

"मेरे गाँधी, ज़मीं वालों ने
तेरी कद्र जब कम की,
उठाकर ले गए तुझको
ज़मी से आसमाँ वाले।

इसी शेर को लेकर नज़ीर बनारसी की ओर मैं मुखातिब हुआ। यह शेर आज भी मेरे दिमाग पर उसी तरह छाया हुआ है, जैसे भारत पर बापू की आत्मा और आज भी वह पूरी रचना मुझे अपनी रचना की तरह याद है।

अपने काम से मैं काशी गया, तो चौधरी एण्ड संस के स्वत्वाधिकारी श्री कुबेरसिंह के पास केशर और मधुर ने नज़ीर बनारसी की चर्चा की और वह चर्चा इतनी गम्भीर हुई कि कुबेर जी भी प्रभावित हुए। कहने लगे कि "लोग ग़ालिब के दीवान छाप रहे हैं, मुझे नज़ीर बनारसी का दीवान छापना है; तुम लोग नज़ीर साहब से बातें करो।"

मालूम हुआ कि नज़ीर साहब के पिता जी बनारस के अच्छे हकीमों में रहे हैं। शायरी नज़ीर साहब के गले पड़ी, पर नज़ीर ने अपने को खानदानी पेशे से अलग नहीं किया। वे खुद एक अच्छे हकीम हैं। बनारस के मदनपुरा मुहल्ले के उनके निजी आलीशान मकान में ही बहुत बड़ा दवाखाना है, जहाँ हमेशा भीड़ लगी रहती है।

कहने का मतलब, नज़ीर भाई, नुस्खे भी लिखते हैं और नज़्म भी। कहा तो यह भी जा सकता है कि नुस्खा और नज़्म कोई दो चीज़ नहीं हैं, दोनों का एक ही काम है—इलाज करना, मगर एक मर्ज़ पर असर करता है, दूसरा मरीज़ पर।

नज़ीर साहब के आलीशान मकान को देखकर यह खयाल हुआ कि वे भी आला आदमी हैं और उनसे जरा सँवर-सम्भलकर बातें करनी पड़ेंगी, पर जब हम सीढ़ियाँ गिनते हुए, ऊपर की मंज़िल पर नज़ीर साहब के बैठकखाने के भीतर दाखिल हुए, तो वे मारे खुशी के उछल पड़े और कुछ इस तरह हाथ मिलाया कि जैसे दिल ही मिला दिया। फिर परिचय और पान। कुल मिलाकर यही लगा कि नज़ीर एक साधारण आदमी है और इसीलिए वे असाधारण हैं।

गया का पेड़ा अगर आपको बहुत भाता है, तो पान से परहेज़ रखने वाला आदमी भी काशी जाकर पान से परहेज़ रख नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता, मगर एक बात कि काशी के तमोली काली पत्ती जर्दा कम ही रखते हैं, बल्कि नहीं ही रखते। नज़ीर साहब ने पान बढ़ाया और जर्दे की डिबिया भी आगे बढ़ाई, तो मुझे कहना पड़ा कि—"कई दिनों के बाद काली पत्ती खा रहा हूँ।" तभी—"भई, एक बीड़ा और।" कहते हुए नजीर साहब ने पान का डब्बा आगे बढ़ा दिया।

पुरानी परम्परा के निर्वाह के लिए यह लिखना बिल्कुल गलत होगा कि मुझे भाई नज़ीर से मिलकर बड़ी खुशी हुई, वरन् कहना तो यह चाहिए कि मुझे नज़ीर भाई से मिलकर बहुत आश्चर्य हुआ। आश्चर्य इसलिए कि देखने-सुनने में वे पूरे बनारसी रईस, नाटे कद के आदमी, बदन से काफी हट्टे-कट्टे, बिल्कुल एक खलीफा की तरह, पर दिल से नाजुक, तो दिमाग से साफ-सरल। आयु लगभग पचास साल, मगर देखकर आपकी आँखों को हमेशा धोखा हो जाय कुछ ऐसी मिट्टी, कुछ ऐसी बनावट। नज़ीर साहब एक ईमानदार आदमी हैं, भीतर से भी और बाहर से भी।

नज़ीर की यह मुलाकात कुछ ऐसी मुलाकात रही कि जैसे कोई अपना, अपने से मिलता है। फिर बातचीत का सिलसिला चला, तो कभी घर की, कभी बाहर की, कभी अपनी, तो कभी उनकी; मगर हरेक प्रसंग के साथ अपनत्व और यों ही वह चर्चा उर्दू की काव्य-धारा पर उतर गई। नज़ीर ने कहा—"उर्दू वालों से मैंने कहा, एक बार नहीं बार-बार कहा कि उर्दू अदब को हिन्दुस्तान की ज़मीन पर जीने दो। जब तक उर्दू से फारस की बू नहीं जाती, वह जिन्दा नहीं रह सकती।" जैसा कि मालूम हुआ, यह कहकर नज़ीर ने अपने सिर आफत मोल लेली, फिर भी वे तनिक घबराये नहीं और बेतकल्लुफी के साथ कहा—

"मेरा मन है शहरे गोकुल की तरह साफ-सुथरा,
मेरी साँस ऐसी जैसे कोई बाँसुरी बजाए,
मेरी एक आँख गंगा, मेरी एक आँख जमुना-
मेरा दिल खुद एक संगम, जिसे पूजना हो आए।"

और यह बात सही है कि नज़ीर बनारसी का दिल, गंगा और जमुना दोनों का संगम है, ज़िन्दगी साफ-सुथरी है और खयाल ?, क्या कहने नज़ीर भाई के खयालो-तखैयुल के !

नाम के नज़ीर, मगर आदमी बेनज़ीर। नाम के साथ उपनाम लगाना प्रायः उर्दू शायरों की परम्परागत चीज़ है, पर नजीर का मूल नाम ही आज उपनाम हो गया है। नज़ीर का पूरा नाम है नज़ीर अहमद। इस तरह नज़ीर आज नज़ीर बनारसी के नाम से जाने जाते हैं।

आदत से अक्खड़, तो मिजाज़ से फक्कड़, मगर हमेशा खिलता हुआ चेहरा, चमकती हुई चौड़ी पेशानी। जो कुछ कहना हो आपके सामने बिना किसी हिचक के कह देने वाले आदमी, न इनकी फिकर, न उनकी परवाह। कल-परसों तक उर्दू के बहुतेरे शायर नज़ीर बनारसी से कटे-कटे फिरते थे, मगर नज़ीर किसी का रास्ता रोक कर कभी कुछ कहने न गए। आज वे लोग भी इस बात को महसूस करने लगे हैं कि नज़ीर का कहना ही सही रहा।

धर्म-तीर्थ मक्का के जमजम का पानी इस्लामी मज़हब के अनुसार बहुत पाक माना जाता है। आबे जमजम को मुसलमान पश्चिम रुख होकर बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ स्वीकार करते हैं। एक बार उनके कोई रिश्तेदार मक्का से हज करके आए। नज़ीर उनके पास गए। उनके रिश्तेदार ने नज़ीर साहब को आबे जमजम पीने के लिए दिया। आदत से लाचार नज़ीर अपने को रोक न सके और झट कह दिया—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नज़ीर आए थे पीने आबे जमजम,
लिए थे हाथ में गंगाजली भी !"

उनके रिश्तेदारों के बीच यह घटना चर्चा का विषय बन गई। किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ। कहा तो यह भी गया कि नज़ीर काफिर है। यहाँ तक हुआ कि हुक्का-पानी बन्द किया जाए, पर नज़ीर पर इसका कोई असर न हुआ और अपनी सफाई के लिए नज़ीर बनारसी ने और कुछ तो नहीं कहा, पर यह लिखने से वे नहीं चूके—

मेरा दर्द तुम न समझे,
मुझे सख्त इसका मलाल है।
ज़रा फिर सम्भल के जवाब दो,
मेरी ज़िन्दगी का सवाल है।
ये गजब का तूने सितम किया,
कि मुझे भी कह दिया बेव़फा,
वो 'नज़ीर' नाम का आदमी,
जो वफा की ज़िन्दा मिसाल है !

नज़ीर बनारसी की रचनाओं का एक दीवान 'गंग-ओ-जमन' प्रकाशित है। 'गंग-ओ-जमन' की भूमिका लिखते हुए जनाब रघुपति सहाय फिराक गोरखपुरी ने लिखा है—"नया हिन्दुस्तान उनके अकसर नज़्मों और गजलों में अंगड़ाईयाँ लेता हुआ नज़र आता है, उनके अलफाज़ के ज़ेरो-बम में हम नज़ीर ही के दिल की धड़कनें नहीं सुनते, बल्कि नई हिन्दुस्तानी तहज़ीब और ज़िंदगी के दिल की धड़कनें भी सुनते हैं।"

किसी भी भाषा के साहित्य को साधारण जनता तक ला देने के लिए यह ज़रूरी है कि उसकी भाषा बोलचाल की भाषा हो। टकसाली भाषा किसी पर जबरन लादी जा सकती है, उसे स्वेच्छा से कोई स्वीकार नहीं कर सकता। भाई नज़ीर ने 'गंग-ओ-जमन' के आरम्भ में अपनी ओर से लिखा है कि—"सर तेज बहादुर सप्रू ने

श्री रमेशचन्द्र झा

इलाहाबाद के एक तरही मुशायरे में, जिसके वे सदर थे, मेरी गज़ल सुनने के बाद फरमाया कि—"अगर उर्दू यही होती, जो नज़ीर साहब की गज़ल की ज़ुबान है, तो शायद उर्दू को आज ये दिन देखने नसीब न होते।"

"हजारों साल नरगिस,
अपनी बेनूरी पै रोती है,
बड़ी मुश्किल से होता है,
चमन में दीदावर पैदा।"

सर इकबाल का यह शेर हिन्दुस्तान की ज़मीन पर लिखा गया। हिन्दुस्तान की ही ज़मीन को लेकर सर इकबाल ने कहा कि—"सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।" इस ज़मीन के दूसरे मशहूर शायर जनाब ब्रजनारायण चकबस्त ने भी विदेशी शासन से दबे-पिसे हिन्दुस्तान की तस्वीर उतारते हुए कहा था—

"अगर जिये भी तो कपड़ा नहीं बदन के लिए,
मरे तो लाश पड़ी रह गई कफन के लिए।"

तनिक शुबहे की बात नहीं कि सर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इकबाल और चकबस्त लखनवी की ज़मीन को ही नज़ीर ने अपनी जमीन बनाई और यह भी सही है कि नज़ीर के दिल की धड़कन, सारे हिन्दुस्तान के दिल की धड़कन है। नज़ीर ने भी कितनी सफाई से कहा है—

"न जनाब शेख का है,
न जनाब बरहमन का,
है वतन तो सिर्फ उसका,
जो वतन के काम आए।"

तो यह मान लिया जाए कि यह वतन नज़ीर का है, जो अपने को वतन के लिए हमेशा सुरक्षित रखता है। उर्दू काव्य-धारा की जो अपनी परम्परा है, उसको लेकर मुझे कुछ भी नहीं कहना है, बस इतना कि भारतीय कविताओं के शीर्षक बदले, छंद भी बदले, लेकिन उर्दू कविता अपनी जगह खड़ी-खड़ी लोगों की ओर देखती रह गई। हम भाई नज़ीर से सहमत हैं कि उर्दू शायरी का उनवान (शीर्षक) बदलना होगा और खयालों को ताज़गी देनी होगी। पण्डित जवाहरलाल नेहरू के जन्मदिवस पर नज़ीर ने कहा है—

पर्दा-पर्दा साज़ है, जिसका वो ऐसा साज़ है,
उसकी हर आवाज़ पूरे मुल्क की आवाज़ है,
जिसको जितना नाज़ है अपने वतन पर ऐ नज़ीर,
उसको उतना ही जवाहरलाल पर भी नाज़ है!

नज़ीर भाई को जवाहरलाल पर जैसा नाज़ है, देश की जमीन नज़ीर पर भी वैसा ही नाज़ करेगी यह मेरा विश्वास है!

जब हम ईश्वर से प्रेम करते हैं

श्री मेहेरबाबा

•

** जब हम समस्त मानव-जाति से प्रेम करते हैं और परायों के लिए भी हमारे हृदय में वैसी ही आत्मीयता होती है जैसी कि हमारे स्वजनों के प्रति है, तब हम ईश्वर से प्रेम करते हैं।*

** जब हम दूसरों के दोषों के बजाय अपने दोष खोजने लगते हैं, तब हम ईश्वर से प्रेम करते हैं।*

** जब हम अपने लिए दूसरों को लूटने के बजाय, दूसरों के लिए अपने को लुटाने लगते हैं, तब हम ईश्वर से प्रेम करते हैं।*

** जब हम दूसरों के सुख-दुख को अपना मानकर उनकी अनुभूति से एकरूप हो जाते हैं, तब हम ईश्वर से प्रेम करते हैं।*

** जब हम अपने दुर्भाग्य की चिन्ता करने के बजाय यह अनुभव करते हैं कि दूसरे कितने ही लोगों की अपेक्षा हम अधिक भाग्यशाली हैं, तब हम ईश्वर से प्रेम करते हैं।*

** जब हम अपने भाग्य से संतोष रखते हैं और उसे ईश्वर की इच्छा समझकर धैर्य एवं सहिष्णुता के साथ स्वीकार करते हैं, तब हम ईश्वर से प्रेम करते हैं।*

** जब हम यह समझते और अनुभव करते हैं कि किसी भी प्राणी को दुख न पहुँचाना आराधना का ही एक रूप है, तब हम ईश्वर से प्रेम करते हैं।*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलती रेल में नीलाम

श्री ईश्वरदत्त वर्मा

卐

अम्बाला कैंट से सहारनपुर तक चलने वाली शटल-रेलगाड़ी-के डब्बे में आठ नौ पैसिंजर बैठे थे। कलानौर स्टेशन पर पाँच और आदमी हमारे डब्बे में आए। पहले दो आदमी घुसे, फिर सफेद कमीज़-पायजामा पहने एक आदमी घुसा, जिसके हाथ में काले रंग का एक बड़ा थैला था—वह नीलाम से सामान बेचने वाला था। उसके पीछे-पीछे उसका एक नौकर भी डब्बे में घुसा, जिसके दोनों हाथों में सामान से भरे हुए दो बड़े-बड़े थैले थे। जब गाड़ी चलने को हुई, तो एक लंबे से सरदार साहब दाखिल हुए।

नीलामी से सामान बेचने वाला आदमी दोनों बैंचों के बीच खड़ा हो गया और गाड़ी चलते ही उसने अपना धन्धा शुरू कर दिया—

"देखो भाई साहबजियों! मेरे पास हर किस्म का माल है। शीशे, कंघे, साबुन, कैंची, मशीनें वग़ैरह; जो मैं आप को दिखाऊँगा और जिसकी बोली आप लोगों के सामने इसी कमरे में दी जावेगी। हर कोई बोली लगा सकता है। बोली लगाने की कोई पाबन्दी नहीं, पर पुगता होगा तो माल दिया जाएगा, वर्ना रुपय्या दिखाने पर एक आना रुपय्या बख़्शीश—इनाम दिया जाएगा।"

मैंने गोर्की की 'जनता के बीच' पुस्तक को एक तरफ रखा और ज़रा-सा मुस्कराया। मेरे पड़ौसी ने जब ज़रा ग़ौर से मुझे मुस्कराते देखा, तो मैंने धीरे से कहा—"इनाम और बख़्शीश कैसे मुतज़ाद (विरोधी) लफ्ज़ हैं। ये लोग लफ्ज़ों का सही प्रयोग भी नहीं जानते।"

यह पहला चक्कर था, जिसमें मैं, एक मिनट के लिए ही सही, उलझा; हालाँकि वह लफ़्ज़ों का बिल्कुल सही इस्तेमाल जानता था। उसने आवाज़ लगाई—"यह एक फोल्डिंग तस्वीर है। चाहो तो इसे जेब में रख लो, चाहो तो ट्रंक में धर दो। टूटने का ख़तरा नहीं। खोल कर देखो—एक तरफ भगवान कृष्ण की तस्वीर है, दूसरी तरफ मुँह देखने का शीशा है। चाहो अपनी शकल देख लो, चाहो तो भगवान के दर्शन कर लो। बाज़ार में लेने जाओ, तो चार रुपए से कम की न मिलेगी। इसके साथ ही रंग बिरंगे धागों की रील का एक डब्बा है। दो रुपए से कम का बाज़ार में नहीं मिलता। इन दोनों चीज़ों की इकट्ठी बोली दी जाएगी।"

एक नवागंतुक मुसाफिर ने बोली लगाई—"चार आने।"

दूसरे नवागंतुक ने बढ़ाई—"पाँच आने।"

मेरे घर के सामने म्युनिसिपैलिटी का एक नल है। सुबह उठकर उसे चलाओ, तो पानी नहीं देता, गेड़ते रहो कोई नतीजा नहीं। अंदर को ऐसे साँस लिए जाएगा, जैसे कोई प्यासा कुत्ता हो। तब घर के अंदर रात के रखे हुए पानी की एक बालटी लाकर हम उस नल के अंदर लोटे से पानी छोड़ते हैं। फिर जो गेड़ते हैं, तो प्रवाह कायम हो जाता है और नलका चल निकलता है। इन दोनों मुसाफिरों ने नीलाम के नल में यह पानी डाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो नल चल निकला। धीमे से थरकती-सी आवाज़ में एक ने बोली दी—"छह आने।"

सात आने, आठ आने, और फिर एक सीधे-भले ग्रामीण के नौ आने! पुरानों में कोई नौ आने से न बढ़ा, पर दोनों नवागंतुक बोली लगाते रहे। फिर भी एक रुपए से बोली ऊँची न गई। नीलाम वाले ने नवागंतुक से 'रुपय्या' दिखाने को कहा। उसने रुपय्या जेब से निकाला। नीलामिए ने उससे रुपया अपने हाथ में ले लिया और तब सवालों की एक झड़ी-सी लगा दी—

"रुपया तुम्हारा है मेरा?"

"मेरा।"

"बोली तुम्हारी है मेरी?"

"मेरी।"

"धरम से?"

"धरम से।"

"हिन्दू हो मुसलमान?"

"हिन्दू।"

"धरम से बोलते हो?"

"हाँ"

"सच बोलते हो कि झूठ?"

"सच।"

तब नवागंतुक को नीलामिए ने एक रुपय्या वापिस कर दिया और कहा कि "लो इनाम-बख़्शीश की एक इकन्नी।" तस्वीर और तागों का डिब्बा उसने अपने झोले में डाल लिया।

यह लफ़्ज़ों का दूसरा सही प्रयोग था। इतनी बड़ी मुहारनी शायद कोई भी पढ़ा-लिखा व्यक्ति दोहराने को तैयार न होता, मगर उन्हें समझदार लोगों की ज़रूरत कब थी। सवालों की इस झड़ी से आत्म-सम्मान वाले व्यक्तियों को, जो बड़ी-बड़ी बातों पर भी कसम खाना अपनी तौहीन खयाल करते हैं, उसने नीलाम के पचड़े से अलग और तटस्थ कर दिया—बिना कुछ कहे!

फिर उसने एक गरम स्वीटर अपने झोले से निकाला और बोली शुरू हुई। दोनों नवागंतुक, वह ग्रामीण और एक फौजी सरदार बोली में हिस्सा ले रहे थे। ग्रामीण की बोली पर नीलामिए की फुर्ती ने फिर मेरा थोड़ा-सा ध्यान आकर्षित किया। नीलाम का जो ढंग है कि आखरी बोली पर काफी देर रुका जाता है, उसका काफी विज्ञापन किया जाता है और साथ वालों को बोली बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है—वह न हुआ। मैंने अपने दिल को समझा लिया कि जल्दी में है, नीलाम का लम्बा चौड़ा समय नहीं मिलता, दो स्टेशनों के बीच केवल चन्द मिनट होते हैं और बाद में इन्हें अगले डिब्बे में जाना होता है। दो रुपए उस स्वीटर पर आखिरी बोली थी। नीलाम वाले ने ग्रामीण को रुपए निकालने के लिए कहा। रुपए अन्दर की जेब में थे। अन्दर की जेब से जब उसने पाँच-पाँच, दो-दो वाले नोट निकाले, तो उसकी उँगलियाँ उन नोटों को कुछ अजनबी ढंग से छू रही थीं। रुपए-रुपए के दो नोट ग्रामीण ने थरकते हाथों से नीलाम वाले को दिए और फिर वही मुहारनी प्रारम्भ हुई।

"नोट तुम्हारे हैं मेरे?"

कफ़ ने जैसे उसके गले को घेर रखा हो, मरी-सी आवाज़ में उसने उत्तर दिया—

"मेरे।"

"माल तुम्हारा है मेरा?"

उत्तर में अधिकतर वह सिर भर हिला देता था। उसने सिर हिला दिया।

"हिन्दू हो मुसलमान?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हिन्दू।"

"गऊ को मानते हो?"

सिर हिला।

"गंगा जी को मानते हो?"

जल्दी से सिर हिला।

"सच बोलते हो झूठ?"

"सच।"

"बोली तुम्हारी है?"

सिर हिला।

"रुपए तुम्हारे हैं?"

फिर से सिर हिला।

वह ग्रामीण जब मुहारनी का उत्तर देता था या प्रश्नों के उत्तर में सिर हिलाता था, तो मेरे दिल में बड़ी दया और करुणा उपजती थी। एक अजीब मन्ज़र था। सवाल करने वाला जितना चुस्त था, जवाब देने वाला उतना ही सुस्त। ऐसा लगता था कि नीलाम वाले के मुँह से जब अगला सवाल निकलता था, तो वह ग्रामीण पिछले सवाल का जवाब दे रहा होता था।

नीलाम वाले ने दोनों नोट उसे लौटा दिए। अपना स्वीटर अपने थैले में रखा और दो आने उस भोले आदमी की तली पर रख दिए। फिर कुछ ऐसा कड़वा मुँह बनाया, मानों वह बड़ा निराश हो, कमाई होने की बजाए कुछ पल्ले से निकल जाने के कारण क्षुब्ध हो और मानों एक आखिरी दाव और लगाना चाहता हो। फिर उसने साबुन के दो बन्द डिब्बे निकाले। प्रत्येक डब्बे में तीन-तीन टिकियाँ थीं, उन पर उर्दू में लिखा था—"बाल सफा साबुन।" वह निहायत घटिया किस्म का सामान था। इस पर आखिरी बोली फ़ौजी सरदार ने दी और एक रुपए में वे दोनों डिब्बे नीलाम वाले ने फ़ौजी को दे दिए।

नीलाम वाले ने तब एक खाली थैला हाथ में लिया, मैं उचटे ध्यान से कभी डब्बे के अन्दर का नज़ारा देख लेता था, कभी बाहर का। कुछ इस क़िस्म की आवाज़ डब्बे में सुनाई दी—"यह एक कैंची है, बाज़ार में साढ़े पाँच रुपये से कम की न मिलेगी। यह एक बाल काटने वाली मैशीन है। कोई भी नाई खुशी से इसके लिए आठ रुपये बाज़ार में खर्च देगा, यह साबुनों के चार डब्बे हैं, यह स्वीटर है, यह तागे की रीलों के डब्बे हैं, एक कंघा है, एक शीशा है, एक अलीगढ़ का ताला है, यह—है, यह···है जिसकी कीमत बाज़ार में···कम न होगी। बोलो भई, इस सारे सामान की बोली लगाओ। सरकारी बोली चार रुपये की है। इससे कम की बोली मन्ज़ूर न की जाएगी।"

थैला नीलाम वाले के हाथ में था। बोली प्रारम्भ हुई। वे दोनों नवागंतुक बढ़ने लगे—

पाँच रुपये

छह रुपये

सात रुपये

आठ रुपये

पौने नौ रुपये

थैला भी हाथों में घूमने लगा। कभी नीलाम वाले के हाथ में, कभी इस नवागंतुक के हाथ में, कभी दूसरे के हाथ में। पैसे आने छूट चुके थे, रुपयों पर नौबत आई थी। मैं फिर एक दफ़े मुतवज्जे हुआ।

मरी-सी आवाज़ में उस ग्रामीण ने भी साथ वाले से पूछा—"नौ रुपये?"

"नौ रुपये!" नीलाम वाले ने दोहरा दिया।

"नौ रुपये।" एक

"नौ रुपये।" दो

"रुपये दिखाओ।" नीलाम वाले ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामीण से कहा और वह जो पहले इनाम-बख्शीश-की चार-पाँच इकन्नियें मुफ्त में ले चुका था, इस जेब से, उस जेब से रुपया-रुपया दो-दो रुपये निकाल कर नीलाम वाले की तली पर धरने लगा। रुपये निकालने में उसके हाथ भारी पड़ते थे। उसके पास वाला और सामने वाला कुहनियाँ मार कर उसे जल्दी करने के लिए कह रहे थे; मानों उनको अगले नीलाम में दिलचस्पी है और उनका वक्त हर्ज़ हो रहा है। नीलाम वाला भी जल्दी मचा रहा था। मुझे कुछ गड़बड़ का ख़दशा हुआ—सब रुपये नीलाम वाले के हाथ पर रखे जा रहे हैं—कहीं हाथ-चालाकी से वह एकाध रुपया इधर-उधर न कर दे!

ग्रामीण अब भी ख़ामोश था। हम वह लोग हैं कि खामोश रहते हैं और आखिरी दम तक यह उम्मीद लगाए रहते हैं कि अचानक ही कोई अच्छाई हमारे हक में एकदम बाहर उछलकर आ गिरेगी। हम अपने आपको ढलवान पर फिसलने देते हैं और जानते होते हैं कि हम ढलवान पर तेज़ी से फिसले जा रहे हैं, पर फिर भी यह उम्मीद लगाए रहते हैं कि गर्त से पहले कोई शक्ति अचानक हमें पकड़ कर रोक लेगी। ग्रामीण भी शायद अच्छाई की उम्मीद लगाए हुए था। सोचता होगा कि शायद अब भी रुपये वापिस कर दिए जाएँगे और शायद आठ-नौ इकन्नियें फिर मुफ्त में हाथ लग जाएँगी। रुपये नीलाम वाले के हाथ में इकट्ठे होते जा रहे थे, मेरी नज़रें रुपयों पर थीं कि फिर मुहारनी प्रारम्भ हुई—

"रुपये तुम्हारे हैं?"

सिर हिला।

"नौ हैं?"

"हाँ!"

गाड़ी की चाल से भी तेज़ नीलाम वाले की ज़बान चल रही थी और उसका पीछा करना कठिन था।

"धरम से?"

सिर हिला

"हिन्दू हो कि मुसलमान?"

"हिन्दू।"

"गऊ को मानते हो?"

"हाँ।"

"गंगा मैया को मानते हो?"

सिर हिला।

"अपनी मर्ज़ी से बोल रहे हो?"

"हाँ।"

"कोई ज़बर्दस्ती तो नहीं है?"

फिर सिर हिला।

"बोली तुम्हारी है?"

कुछ सिर हिला।

गाड़ी धीरे-धीरे चलने लगी। रेलवे स्टेशन (सरसावा) नज़दीक आ गया। थैला ग्रामीण के हाथ में दे दिया गया। उसके हक्के-बक्के हाथों ने थैला पकड़ा। गाड़ी खड़ी होने को हुई, नीलाम वाला उतर गया, उसका नौकर भी उतर गया। गाड़ी खड़ी हुई, ग्रामीण के साथ वाला भी उतर गया, उसके सामने वाला भी उतर गया।

गाड़ी फिर चली। मैंने कहा—"नाना! तुम तो लुट गए। भला तुमने इतनी बोली क्यों लगाई?"

मैस्मरेज़्म दूर हो चुका था। वह झीना-सा विश्वास भी टूट चुका था कि दिन-दहाड़े चलती गाड़ी में कोई लूट थोड़े ही हो सकती है। कोई अज्ञात ताकत एकदम हस्तक्षेप करेगी और मेरा नुकसान होते-होते बच जाएगा, यह भ्रम भी हट चुका था।

नाना ने सिर हिलाया। उसे कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ नहीं आ रही थी।

"तुमने इतनी बोली क्यों लगाई? क्या तुम्हें इस सारे सामान की ज़रूरत थी?" मैंने पूछा।

"मैंने तो नहीं लगाई। मैंने तो अपने साथ वाले से पूछा था कि नौ रुपये?" ग्रामीण ने उत्तर दिया।

"फिर तुम उसके हर सवाल पर हाँ क्यों करते गए, सिर क्यों हिलाते गए?"

बूढ़े ने फिर सिर हिलाया कि वाक़ई उसने सिर हिलाया था। पास वाला युवक मुस्करा पड़ा। बोला—"अपने देश के गाँवों में ऐसे ही लोग बसते हैं कि अगर अपने मन्तव्य को कोई उनका मन्तव्य कह कर प्रगट करे और फिर उसे दोहराता ही जाए, तो स्वयं मौजूद रहते हुए भी तत्काल प्रतिरोध नहीं करते, बल्कि इंतजार करते हैं कि आगे क्या होने वाला है और फिर जब प्रतिरोध करने का खयाल उनके मन में आता है, तो बात इतनी दफ़े दोहराई जा चुकी होती है और उनके अपने कानों ने सारी दुनिया के सामने सुनी हुई होती है कि उनकी ज़बान जड़ हो जाती है। तब वह सिर्फ़ हक्के-बक्के हो जाते हैं और आखीर में अपनी किस्मत पर दिमाग़ का सारा वज़न डालकर फिर ज्यों के त्यों हो जाते हैं।"

मैंने कहा—"ज़रा दिखाइए तो झोला। देखूँ, आपने नौ रुपये में क्या-क्या खरीदा है?"

सीट पर मैंने झोला उलट दिया। देख कर मैं हैरान रह गया। झोले में न कैंची थी, न अलीगढ़ का ताला। उसमें शीशा, कंघा, गहरे रंग का एक स्वीटर, बाल सफा साबुन के तीन डिब्बे, दो-तीन रीलों के डिब्बे, जिनमें गत्ता अधिक और धागा कम था मौजूद थे; बाल काटने वाली पुरानी और नाकिस मशीन भी थी।

और लोग भी सामान देखने लगे और देखकर बोले—"यह तो बिल्कुल लुट गया।"

"हद हो गई!" मैंने कहा—"यह तो सरासर डाका है। मैं तो उसके हाथों की तरफ़ देखता रहा कि वह रुपये न हेर-फेर ले और इधर थैले में सब सफ़ाई हो गई।"

मैं बहुत गुस्से में आया—"अगला स्टेशन आने दो। उन्हें हम पकड़ेंगे।"

एक ने कहा—"ये कई होते हैं और मिले रहते हैं, मगर बाबू जी! आपने यह तमाशा शायद पहली ही दफ़ा देखा है?"

"हाँ।" मैंने कहा, तो वे बोले—"हम तो इस गाड़ी से अक्सर आते-जाते हैं। कई दफ़ा ऐसा तमाशा देखा है। ये लोग पक्के बदमाश हैं और बागड़ियों को, पूरबियों को, भोले-भालों को और फौजी सिपाहियों को इसी तरह लूटते हैं।"

"फौजी सिपाहियों को भी?" मैंने पूछा।

"हाँ" उन्होंने कहा—"उनसे अधिक भोला शिकार कोई नहीं होता। अकेले-दुकेले हों और घर जा रहे हों, तो सस्ता उपहार घर ले जाने के शौक में एकदम फँस जाते हैं।"

"आप जानते थे कि ये लोग ऐसे हैं, तो आपने पहले ही क्यों नहीं इसे सावधान किया? क्यों बेचारे को लुटने दिया?"

"बदमाश हैं-दस नंबरिये। रोज़ का आना-जाना है। इनसे बैर बाँध कर गुज़र नहीं। सबके सामने बेइज़्ज़ती कर देते। अभी चार-पाँच रोज़ पहले इन्होंने प्लेट-फार्म पर एक मुसाफिर के पेट में चाकू घुसेड़ दिया और भीड़ में यह जा, वह जा। कोई पकड़ नहीं सका। शरीफ़ आदमी को तो बाबू जी, अपनी इज़्ज़त बचानी भारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, पराए झगड़े में कौन पड़े !"

मैंने महसूस किया–मेरा जोश थोड़ा-सा ठंडा पड़ गया। मैंने कहा—"अगले स्टेशन पर रेलवे वालों को रिपोर्ट करेंगे।" मुँह फिराकर उपेक्षा के एक पारब्रह्म तरीके से, जैसे कि अब कुछ न किया जा सकेगा, उन्होंने उत्तर दिया—"रेलवे वालों से ये लोग मिले रहते हैं। सब अधिकारियों से इनकी साँठ-गाँठ रहती है। खाते हैं और खिलाते हैं।"

यहाँ ऐसा है या नहीं, कौन जानता है, लेकिन अपने अनुभव से सब जानते हैं कि देश भर में ऐसा मेलजोल है इसलिए यहाँ भी मैंने उसकी बात सच मान ली और कुछ करने का मेरा जोश और भी ठंडा पड़ गया।

एक दूसरे साथी ने कहा—"यह तो अव्वल दर्जे की ऐयारी है। इसका कुछ न कुछ उपाय तो होना ही चाहिए।"

पहले साथी ने उत्तर दिया-"उपाय तो ज़रूरी है, मगर आप ही बताइए कि यदि इनकी रिपोर्ट करें, तो आप गवाही देने आएँगे। मैं अपनी नौकरी से छुट्टी ले कर इस पराई आग को बुझाने आऊँगा? और फिर मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त रायसाहब! यह ग्रामीण अपने देस जा रहा है। नौ रुपये के बदले वहाँ से पेशी भुगताने आएगा? वे बदमाश हैं, हज़ारों के मालिक हैं, सब कुछ कर लेंगे। यह आदमी, जो उनकी हर बात पर हाँ करता और सिर हिलाता चला जा रहा था, वकील की जिरह के सामने टिक सकेगा?"

सचमुच उनकी बातों का जवाब न था। प्रतिरोध की इच्छाएँ क्षीण से क्षीण होती चली गईं। दुर्घटना केवल एक दिलचस्प मौजू बन कर रह गई, जिस पर डब्बे में चर्चा जारी थी। उन्होंने कहा—

"वे लोग संगठित रूप से इस डिब्बे में आए और हम लोग चाहे संख्या में उनसे अधिक ही रहे हों, मुत्तहिद न थे। उनके आने से पहले आपस में कोई राहो-रब्त न था। हम सब अलग-अलग थे, इसलिए उस संगठित आक्रमण का मुकाबला न कर सके।"

उन्होंने फिर कहा—"हम तब कोई रुचि न ले रहे थे, जब बोलिएँ लग रही थीं। हमने तब कोई ध्यान न दिया, जब वे सब लोग एक साथ इस डब्बे में आए। हमने तब भी कोई गिनती न रखी थी, जब उसने सामान थैले में डाला था। अब हम लोग दिलचस्पी ले रहे हैं, जबकि साँप निकल चुका है।"

ग्रामीण रो रहा था। वह बहुत ही भला था, बहुत ही सीधा। बोला—"बाबू जी, सिर पर टोकरिएँ ढो-ढो कर ये रुपये इकट्ठे किए थे और घर जा रहा था।"

मैंने कहा—"अब अपनी मूँछ और सर के बाल बचाओ नाना! यह जो तुम्हारे थैले में है, बाल सफा साबुन है। इसे कपड़े और सिर धोने वाला साबुन न समझ बैठना। अब तुम सिर्फ इतना ही कर सकते हो कि इसे फेंक दो और अपने बाल बचाओ, वर्ना तुम्हारे सीधेपन का एक तमाशा हमने देखा है, दूसरा तुम्हारे घर और गाँव वाले देखेंगे। साबुन लगा कर धोओगे, तो तुम्हारी घनी मूँछें साफ हो जाएंगी, घर वाली के सफेद बाल चले जाएँगे।"

नाना को मेरी बात समझ आ गई। उसने साबुन के डब्बे फेंक दिए, फिर मशीन फेंकी और अन्त में झोला भी फेंक दिया। वह इस लूट की कोई यादगार अपने पास न रखना चाहता था !!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धेय बाबूजी के साथ एक दिन

अखिलेश

विशाल उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री सम्पूर्णानन्द !

भारत के विद्वद्वरेण्य आचार्य श्री सम्पूर्णानन्द !

अपनों के श्रद्धेय और प्रिय बाबूजी श्री सम्पूर्णानन्द !

उत्तर प्रदेश-सरकार के विमान की घूं-घू सुनाई दी, तो सबकी आँखें धरती से उठ आसमान पर जा टिकीं और सबके मुँह से एक साथ निकला—आ गए बाबू जी ! इन सबमें राज्य के अधिकारी थे, राष्ट्रीय कार्यकर्ता थे, नागरिक थे। मैंने सोचा—सम्पूर्णानन्द जी सबके बाबू जी हैं; जैसे गाँधी जी सबके बापू जी थे ?तब सम्पूर्णानंद जी एक शासक और एक विद्वान से पहले एक व्यक्ति हैं और उनकी लोकप्रियता का रहस्य उनके पद और उनकी विद्वत्ता में नहीं, उनके व्यक्तित्व में, उनके चरित्र में है।

विमान से उतरे, तो निगाह घड़ी पर ! विमान निर्धारित समय से एक घंटा लेट था और यह बाबू जी की सहज-संस्कारी नियमितता के विरुद्ध है, पर पता चला कि विमान उनके कारण नहीं, वे विमान की खराबी के कारण लेट हैं। बाबूजी को गुरुकुल विश्वविद्यालय के संग्रहालय भवन का शिलान्यास करने जाना था, इसलिए कार की ओर अभिमुख होते हुए वे बोले—"तो फिर चला जाए !"

जिलाधीश श्री नरेन्द्रसिंह सिरोही ने अपने सधे हुए स्वर में कहा—"ज़रा-सी चाय ले लीजिए, पाँच मिनट और सही।" अस्वीकृति बाबूजी के मन में जगी, पर जीती स्वीकृति ही। बोले—"ऐसी इच्छा है, तो यही सही।" साफ है कि यह हम सबका मन रखना था। मैं सोचता रहा—बाबूजी में सिद्धान्तों के प्रश्न पर चट्टान की दृढ़ता भी है, पर निजी व्यवहार में सहृदय कोमलता भी। वही बात कि उनकी लोकप्रियता का रहस्य उनके पद और उनकी विद्वत्ता में नहीं, उनके व्यक्तित्व में, उनके चरित्र में है। वे अनुचित बात पर अड़ते हैं, तो उचित बात पर बह पड़ते भी हैं।

समय की बात, उनके इस स्वभाव का एक नमूना तुरन्त ही देखने को मिल गया। हवाई अड्डे के निरीक्षण भवन में चाय की व्यवस्था थी। उस ओर कदम बढ़ाकर चले, तो एक स्थानीय कांग्रेसी बन्धु ने कहा—"बाबूजी, आपसे २-४ मिनट बात करनी है; ताकि ज़िले के हालात आपको बताए जा सकें।" चलते-चलते ही बोले—"२-४ मिनट और एक ज़िले के हालात; ये दोनों बातें तो मेल नहीं खातीं। अच्छा यह रहेगा कि किसी समय लखनऊ आइए और भरपूर समय लीजिए।" बस वे सज्जन आगे कुछ न कह पाए और मैं सोचता रह गया—कितने सुलझे हुए हैं बाबूजी !

बाबूजी अब चाय की मेज़ पर और आसपास दूसरे लोग। चाय बनाते हुए एक सज्जन ने दूसरे से पूछा—"आप एक चम्मच चीनी लेते हैं या डेढ़ ?" बाबूजी ने अपने चश्मे के भीतर ही भीतर उधर देखा और बोले—"यह एक और डेढ़ की बात अक्सर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनता हूँ, पर बड़ी अजीब लगती है।"

अपने प्याले की चीनी को चम्मच से घुमाते हुए सामने ही खड़े 'पायलट' ने इस सम्बन्ध में एक संस्मरण सुनाया कि एक बार श्रीमती सरोजिनी नायडू ने इसी प्रकार प्याले में चीनी डालते हुए किसी से पूछा—एक चम्मच ? दो ? तीन ? चार ?, पर तब भी उन्होंने गर्दन न हिलाई, तो श्रीमती नायडू ने कहा—मुनासिब यह रहेगा कि आपके लिए एक प्याला चाय में एक ही प्याला चीनी मिलाई जाए और वह चाय प्याले में नहीं, केतली में ही तैयार हो।

अपनी खामोश हँसी हँसकर बाबूजी बोले—"खैर, इस हद तक तो मैं नहीं जाता, पर एक प्याले में दो चम्मच की बात मुझे भी अनुचित नहीं लगती।"

गुरुकुल विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि श्री धर्मपाल शास्त्री ने शायद यों ही बाबूजी की तरफ देखा, पर बाबूजी ने उसे तकाज़ा-सा माना और बोले—"देखिए, अब जो देरी हो रही है, वह मेरे कारण नहीं, आपके कारण है" और अपनी धूप-छाहीं मूछों को रूमाल से साफ करते हुए बोले—"अच्छा, तो अब चला जाए।"

लगभग सवा घन्टे की यात्रा के पश्चात हम गुरुकुल पहुँच गए। भारी जन-समूह के बीच द्वार पर बाबूजी का स्वागत हुआ। एक जलूस के रूप में लगभग एक फर्लांग पैदल चलने के पश्चात यह आ गया वह पंडाल, जिसमें आज का समारोह आयोजित था। पंडाल में प्रविष्ट होने से पहले बाहर खड़े ही खड़े स्वयं-सेवकों ने जन-मन-गण की धुन बजाई। उस समय मैंने देखा, बाबूजी उसमें तल्लीन हो गए हैं और ध्वनि की ताल के अनुसार कभी-कभी झूम भी पड़ते हैं।

पंडाल के द्वार पर ही अतिथियों के जूते रखने की व्यवस्था थी। बाबूजी का 'अनपॉलिश्ड' बूट भी व्यवस्था के अनुसार रख दिया गया और टीन के एक गोल टुकड़े पर लिखा नम्बर उन्हें भी दिया गया। बाद में पंडाल से बाहर निकलने पर उसी नम्बर के क्रम से उनका जूता भी निकला; उन्हें इस व्यवस्था में एक-दो मिनट की प्रतीक्षा करनी पड़ी, पर मुझे लगा कि उन्होंने इस प्रतीक्षा को असुविधा नहीं माना और व्यवस्था की मान्यता को बल दिया। इन्हीं क्षणों में बाबूजी के जीवन की अनेक झाँकियाँ मेरी स्मृति में घूम गईं; जिनमें वे दौड़े हैं और जिनमें वे दौड़ते-दौड़ते रुके हैं-रुके रहे हैं। तब सोचा—बाबूजी में छलाँग भी है और प्रतीक्षा भी है !

संग्रहालय के संचालक श्री हरिदत्त वेदालंकार की प्रार्थना पर अब उन्हें मंच पर सभापति का आसन ग्रहण करना था। यह मंच चार सीढ़ी ऊपर था। सीढ़ी का तख़्ता कमज़ोर तो नहीं है, उन्होंने जाँचा और अपने को सम्भाल कर वे ऊपर चढ़ गए। यह उनकी हमेशा की आदत है। मैं उनके साथ कई उत्सवों में रहा हूँ और सीढ़ी की मजबूती के प्रति मैंने उन्हें सदा सतर्क पाया है। इसमें उनकी शारीरिक स्थूलता भी कारण है और मानसिक सूक्ष्मदर्शिता भी। मजबूत पथ पर मजबूत कदम उनकी जीवन-नीति ही है !

माइक पर आते ही उन्होंने सबसे पहले देरी के लिए हार्दिक खेद प्रगट किया। उसके पश्चात अपने भाषण में कहा—"६० वर्ष पहले एक शिक्षा-संस्था के रूप में गुरुकुल की स्थापना हुई थी, किन्तु अन्य स्कूलों एवं कालेजों की भाँति अपने विद्यार्थियों को केवल सच्चरित्र, विद्यावान और जीविकोपार्जन में समर्थ बनाना ही इसका उद्देश्य नहीं, बल्कि प्राचीन संस्कृति की रक्षा करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी इस संस्था का उद्देश्य था। उस समय अंगरेजी सरकार पश्चिमी सभ्यता की पोषक थी, पर देश में कुछ ऐसे भी लोग थे, जो हज़ारों वर्षों की भारतीय सभ्यता को हाथ से नहीं जाने देना चाहते थे। उन्हीं दृढ़ विश्वासी और निष्ठावान लोगों ने इस गुरुकुल के रूप में अपनी भावनाओं को मूर्त रूप देने का प्रयास किया।

गुरुकुल वालों का सम्बन्ध आर्य-समाज से है। बहुत-से मामलों में आर्य-समाज से मेरा मतभेद है, पर उसके बाद भी मेरे मन में इस संस्था के प्रति अगाध प्रेम है। मुझे यहाँ आने से स्फूर्ति मिलती है और मैं अपना काम करने के लिए बल पा जाता हूँ। इसीलिए जब अवसर मिलता है, यहाँ आने का यत्न अवश्य करता हूँ।"

गुरुकुल को यह श्रद्धांजलि देने के बाद उन्होंने कहा—"संग्रहालय में निर्जीव पत्थर के टुकड़े, मूर्तियाँ और कागज़ पर बनी तस्वीरें आदि रखी जाती हैं, किन्तु इन आँखों से नहीं, हृदय की आँखों से देखने पर ये जड़ पदार्थ बोलने लगते हैं। २-४ मूर्तियाँ ही सैंकड़ों वर्षों का इतिहास बता देती हैं और लाखों मनुष्यों के उद्‌गारों, आशाओं और आकांक्षाओं को खोलकर हमारे सामने रख देती हैं।"

एक उदाहरण देकर उन्होंने बताया—"प्राचीन ग्रन्थों में यह उल्लेख है कि भगवान कृष्ण के पौत्र साम्ब को कोढ़ हो गया, तो पारसियों के पुरोहित मगों (वैद्यों) ने उनकी रोग-मुक्तता के लिए भगवान सूर्य की आराधना की। अपनी उस काल की मूर्ति में सूर्य भगवान शक लोगों की भाँति शलवार और बूट पहने हुए हैं। बाद की उपलब्ध मूर्तियों में बूट नहीं मिलते। कुछ काल और बीतने पर शलवार भी उतर गया और उसका स्थान धोती ने ले लिया। इन तीन-चार मूर्तियों से स्पष्ट समझ में आता है कि किस प्रकार शक लोग भारत में आए और फिर हिन्दू संस्कृति से प्रभावित होकर उनका विलीनीकरण हुआ। जो पुराना इतिहास हम अनेक ग्रन्थों के पृष्ठों में पढ़ पाते हैं, वह प्राचीन मूर्तियों की सहायता से ज़रा-सी देर में समझ में आ जाता है।"

पुरातन काल में भारत और उसकी संस्कृति का दुनिया से कितना सम्पर्क था और हम लोग कहाँ-कहाँ तक फैले थे, इस सम्बन्ध में उदाहरण देते हुए बाबू जी ने बताया—"मिस्र और सूडान में बहने वाली नील नदी के बारे में पश्चिम के विद्वान यह तो जानते थे कि वह भूमध्य सागर में गिरती है, किन्तु उन्हें उसके उद्‌गम का पता नहीं लग पाया था। तब एक दिन जर्मन विद्वान श्री 'स्पीक' को अग्नि-पुराण में इस नील नदी का उल्लेख मिला। साथ ही यह भी कि इसके उद्‌गम के पास एक सरोवर है और चन्द्रमा का पहाड़ भी। खोज करने पर ये सब चीज़ें नील नदी के उद्‌गम के पास मिलीं। अग्नि पुराण में नील नदी के इस उल्लेख का अर्थ है कि किसी समय किसी रूप में भारत का सम्बन्ध मिस्र के उस स्थान से अवश्य रहा होगा।"

प्राचीन साहित्य के प्रति हमारे देश में जो उपेक्षा भाव रहा है, उसके सम्बन्ध में उन्होंने एक मार्मिक संस्मरण सुनाया—"कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हम अपने प्राचीन ग्रन्थों का सही मूल्य नहीं आँक पाते और दुर्लभ ग्रन्थ बनिये की दूकान पर सौदा बाँधने में इस्तेमाल कर लिए जाते हैं। अथर्ववेद की पैप्पलीय शाखा की पुस्तक दुर्लभ थी। अचानक उसकी एक प्रति शारदा लिपि में काश्मीर में मिली। एक जर्मन विद्वान उस पुस्तक को देखने के लिए उस समय के काश्मीर नरेश (सदरे रियासत कर्णसिंह के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पितामह) से आज्ञा माँगी। अनुमति नहीं मिली, तो उस समय के वायसराय द्वारा हस्तक्षेप करने पर वह पुस्तक उस जर्मन विद्वान को देखने को दी जा सकी। बाद में यह मानकर कि एक विधर्मी द्वारा इस पुस्तक का स्पर्श हो जाने के कारण वह भ्रष्ट हो गई है, उन्हीं काश्मीर नरेश ने पैप्पलीय शाखा की वह एक मात्र पुस्तक उसी विद्वान के पास भेज दी। उसने अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण उस पुस्तक को ठीक कराया और उसके एक-एक पन्ने का फोटो लेकर उसे छपवाया। अब डॉ. रघुबीर की देखरेख में उसके अनुवाद आदि की उचित व्यवस्था की जा रही है।"

अन्त में बाबू जी ने कहा—"इन सब बातों का यह तात्पर्य है कि संग्रहालय के रूप में गुरुकुल जो कार्य कर रहा है, वह परमावश्यक है और राष्ट्रीय हितों की यात्रा का एक महत्वपूर्ण कदम है।"

इसके पश्चात् बाबू जी ने पंडाल से बाहर आकर एक लाख रुपये की लागत से बनने वाले इस संग्रहालय-भवन का विधिवत् शिलान्यास किया। मैंने देखा, एक विद्वान के रूप में विभिन्न ग्रन्थों की रचना करने और मुख्य मंत्री के रूप में अनेक आदेश लिखने में ही नहीं, एक निर्माता के रूप में लोहे की 'करनी' का सही उपयोग करने में भी उनके हाथ पूरी तरह दक्ष हैं। करनी ऐसे करीने से उन्होंने पकड़ी-चलाई कि जैसे वे राजनीतिज्ञ नहीं, एक राज ही हों।

शिलान्यास के पश्चात् उन्होंने संग्रहालय के विभिन्न कक्षों का निरीक्षण किया। चारों ओर घूमकर उन्होंने भारत की पुरातन संस्कृति की प्रतीक विभिन्न प्राचीन मूर्तियों, मुद्राओं, चित्रों, लिपियों, शस्त्रास्त्रों एवं हस्तलिखित ग्रन्थों आदि को बड़ी तल्लीनता से देखा; जैसे एक श्रेष्ठ विद्यार्थी अपने अध्ययन में लीन हो! बात यह है कि बाबूजी की गणना इतिहास और संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ भारतीय विद्वानों में है और वे इस विषय के मर्मज्ञ हैं।

उनके व्यक्तित्व का मुख्य प्रश्न ही यह है कि मूल रूप में वे साहित्यिक हैं, सामाजिक हैं या राजनैतिक हैं? एक बार उन्होंने कहा था कि मेरा जीवन मेरे बस में होता, तो मैं योगी बनता! सचाई यह कि उनकी मूल वृत्ति साधक की है!

'आटोग्राफ' हमारे यहाँ की एक देश-व्यापी बीमारी है। दूसरों का मन रखने की दृष्टि से बाबूजी इसके लिए इन्कार तो नहीं कर पाते, पर शायद इस शौक को पसन्द नहीं करते। कहा तो, कि वे एक साधक हैं और साधक के जीवन में शौक के शौक की गुँजायश कहाँ होती है?

गुरुकुल विश्वविद्यालय में ही उनके भोजन की व्यवस्था थी और समय अब हो ही चुका था। यह लीजिए, अब हम खाने की मेज पर थे–शिक्षा-उपमंत्री श्री दीनदयालु शास्त्री, पं० पूर्णचन्द्र विद्यालंकार, श्री नरेन्द्रसिंह सिरोही, पुलिस-कप्तान श्री महेशचंद शर्मा, श्री बी० एल० चक (निजी सचिव) एवं गुरुकुल के कुछ प्रमुख अधिकारी। एकदम मौन वातावरण में भोजन चल रहा था। तभी हास्य की मुद्रा में श्री सिरोही ने शास्त्री जी से कहा—गुरुकुल काँगड़ी की जिन दवाओं से आप स्वस्थ बने रहते हैं, उनका सेवन हमें भी तो कराइए।" शास्त्री जी के साथ सब लोग तो हँसे ही, पर बाबूजी ने भी उस हँसी में रस लिया और एक विशिष्ट मुस्कान के साथ बोले–"क्यों शास्त्री जी?" और एक बार फिर सब हँस पड़े; जैसे भोजन के बाद चूरन!

बाबूजी जी ने पूरी मेज पर एक निगाह घुमाई कि कोई भोजन तो नहीं कर रहा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रौर उठ गए। उन्होंने हाथ धोकर अपनी चाँदी की डिबिया का पान खाया, तो मैंने सौंफ-इलायची की प्लेट उनके ग्रागे बढ़ा दी। ज़रा-सी सौंफ उन्होंने ली, तो मैंने इलायची की ग्रोर उनका ध्यान ग्राकर्षित किया। बाबूजी ने एक बार मेरी ग्रोर देखा; जैसे कह रहे हों कि क्यों जी, उँगली पकड़कर पहुँचा पकड़ते हो; पर मेरा बालपन जीत गया ग्रौर दो इलायची उठाकर उन्होंने मुँह में रख ली।

भोजन के बाद बाबूजी गंगापार स्थित लालजीवाला निरीक्षण भवन में चले गए। वहाँ उनके कुछ देर विश्राम करने की बात थी, पर मिलने वाले इतने थे कि विश्राम सम्भव न हुग्रा। उनके एक पुराने मित्र भी उनसे मिले। तभी कुछ ऐसा निश्चय हो गया कि वे मित्र महोदय बाबूजी के साथ ही हवाई जहाज़ द्वारा लखनऊ जाएँगे। वे गाड़ी लेकर अपना सामान लाने के लिए चले गए, पर चलने का समय हो गया ग्रौर वे लौटकर नहीं ग्रा सके। इस स्थिति में कोई सहृदय मनुष्य भी यही सोचता कि नहीं ग्राए, तो रहने दो फिर, पर बाबूजी इससे बहुत ग्रागे गए ग्रौर निश्चय किया कि निरीक्षण भवन से चलकर उन्हें रास्ते में ले लिया जाए। खास बात यह कि उनके स्थान का किसी को ठीक पता नहीं था, पर किसी प्रकार पता लगा कर उनके स्थान पर पहुँचा गया, तो जाना कि उनका नौकर कमरे की चाबी लेकर कहीं चला गया है ग्रौर ग्रभी तक नहीं लौटा। इसी से वे सामान लेकर निरीक्षण भवन नहीं पहुँच पाए ग्रौर ग्रब भी चलने में मजबूर हैं।

सारी स्थिति ग्रब सामने थी ग्रौर वह उबा देने वाली स्थिति हो सकती थी, पर बाबूजी ने एक सरल मुस्कान के साथ उनसे कहा—"कोई बात नहीं, लखनऊ ग्राइए, तो मिलिए।" मैंने मन में सोचा—बाबूजी के व्यक्तित्व का यह कितना बड़ा गुण है कि वे हर क्षण ग्रपने को मुख्य मंत्री के रूप में नहीं देखते। इस समय भी वे मुख्य मंत्री कहाँ थे? ग्रपने एक मित्र के एक सामान्य मित्र ही तो थे!

लखनऊ के लिए सरसावा हवाई ग्रड्डे से विमान के उड़ने का समय समीप ग्रा रहा था, इसलिए गाड़ी ग्रब तेज़ी से चल पड़ी। ग्राज बाबूजी भोजनोपरान्त का विश्राम नहीं ले पाए थे, इसलिए यह कार्य वे चलती गाड़ी में करने लगे। वे जब इस प्रकार के विश्राम की मूड में होते हैं, तो सिगार भी पी लेते हैं। उन्होंने चाहा कि इस समय सिगार सुलगा लें, पर चलती गाड़ी में यह सम्भव न हुग्रा, तो उसके लिए क्षण भर को गाड़ी रुकी।

हरद्वार से चले ग्रौर बीच में कहीं भी रुके बिना सरसावा पहुँच गए। प्रतीक्षा करता हुग्रा विमान उड़ने के लिए तैयार था। उसमें सामान रखा गया। मैंने पूछा—"बाबूजी, ग्रक्सर ऐसी व्यस्तता रहती है?" बोले—"सो तो ग्रब है ही।" फिर भी मुझे ग्राश्चर्य हुग्रा, जब उन्होंने कहा—"तुम्हारा भेजा 'विकास' पढ़ लेता हूँ।" मैंने पूछा—"कोई ग्रादेश दीजिए।" बोले—"निष्ठापूर्वक कार्य करते रहो।" मैंने सोचा—"यह निष्ठापूर्वक कार्य ही तो बाबूजी के साधनामय जीवन की कुँजी है।

ग्रब बाबूजी विमान में थे ग्रौर वन्दना एवं ग्रभिनन्दन के भीने वातावरण में यह विमान जिस तरह घूँ-घूँ करता हुग्रा प्रातःकाल ग्राकाश से उतरा था, उसी तरह सायंकाल के समय बाबूजी को लेकर लखनऊ के लिए उड़ चला!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नए लेखकों की पाठशाला

कौशिक जी का नुस्खा

श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक हिंदी की कहानी-कला के प्रथम पुरोहितों में थे। कहना चाहिए, वे उनमें थे, जिन्होंने हिन्दी कहानी की बेल को रोप-सींचकर इस लायक किया कि वह सुगन्धित फूल दे सके।

उन्हें यह सफलता कैसे मिली? वे किस तरह कहानी लेखक बने? नए लेखकों के लिए ये प्रश्न महत्वपूर्ण हैं और इनका उत्तर मिले, तो वे प्रेरणा भी पा सकते हैं और मार्ग-दर्शन भी।

श्री शम्भुनाथ चतुर्वेदी की कृपा से नए लेखकों के लिए वह उत्तर सुलभ है। श्री कौशिक जी को सिनेमा देखने का शौक था और शौक क्या, व्यसन ही था—वे कानपुर में आने वाला हर सिनेमा देखते थे। कौशिक जी ने अपनी कहानी कला को माँजने में इस व्यसन से मदद ली और एक नया नुस्खा तैयार किया।

वे सिनेमा देखने जाते और आधा देखकर घर चले आते। इस तरह आधी कहानी तो उनके पास होती ही, बाकी आधी वे अपनी कल्पना से लिखते-पूरी करते। दूसरे दिन फिर सिनेमा जाते और उसे पूरा देखकर अपनी कहानी से मिलाते।

स्वाभाविक है कि अक्सर दोनों में फर्क रहता और कभी-कभी दोनों में एकता होती। दोनों हालतों में वे तुलना करते, विचार करते। इससे कहानी की बारीकियों पर उनका ध्यान जाता, वे उन बारीकियों को अपनी कहानी में लाने की कोशिस करते।

स्पष्ट है कि ये कहानियाँ छपने के लिए नहीं, हाथ माँजने के लिए ही थीं, पर यह भी सच है कि फाड़कर अंगीठी में जलाई जाने वाली इन्हीं कहानियों ने उन कहानियों को जन्म दिया, जिन्हें अपने प्रतिष्ठित पत्रों में छापने के लिए धुरन्धर सम्पादक कौशिक जी से बार-बार प्रार्थना करते थे।

प्रश्न यह है कि कौशिक जी के इस नुस्खे का तत्व क्या है? इसका तत्व यह है कि नए लेखक में लिखने का चाव तो होता है; पर भाव नहीं होता कि वह क्या लिखे, कैसे लिखे? सिनेमा की हो या दूसरे लेखक की लिखी-छपी कहानी हो, उसे आधी पढ़कर नया लेखक बनी-बनाई राह पा जाता है और उसे आगे लिखने की गति मिल जाती है।

इस गति का उपयोग करने से नए लेखक में यह आत्मविश्वास पैदा होता है कि मैं तो पूरी कहानी भी लिख सकता हूँ। मुझे क्या जरूरत है कि मैं दूसरे की आधी कहानी पढ़ कर उसमें आधी अपनी जोड़ूं; क्योंकि यह कहानी तो बेकार रहती है—न यह किसी दूसरे लेखक की रहती है, न मेरी। मैं पूरी कहानी लिखूँ, तो भले ही वह कहीं न छपे, चीज़ तो मेरी है। मैं उसे अपने साथियों को दिखा-सुना तो सकता हूँ।

फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि स्वर्गीय कौशिक जी का यह नुस्खा बिल्कुल नए लेखकों के लिए बहुत लाभदायक है। इतना और कि यह कहानियों के साथ लेखों पर भी लागू होता है—दूसरों के आधे लेख पढ़कर उन्हें पूरा करने से भी हाथ मँजता है। हाँ, लेखों का चुनाव हर लेखक अपनी रुचि के अनुसार कर सकता है और करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई पीढ़ी के गीतकार–९

प्राध्यापक श्री देवेन्द्र 'दीपक'

श्री जीवनप्रकाश जोशी

लोग अपने देवता को मन्दिर में सिंहासन देते हैं,
लेकिन जोशी अपने देवता को अपने मन में सिंहासन देता है।
लोग जल से अपने देवता का अभिषेक करते हैं,
लेकिन जोशी आँसुओं से अपने देवता का अभिषेक करता है।
लोग पूजा के लिए काँसे के थाल में माटी का दीप जलाते हैं,
लेकिन जोशी साँसों की थाली में आहों के दीप जलाकर अपने देवता की पूजा करता है।

इसीलिए शायद उसकी पूजा पावन है, विशिष्ट है, अपनी निजी है।

हर श्रेष्ठ कवि अपने काव्य में आत्मदान करता है। जोशी ने भी आत्मदान किया है। कहूँ कि आत्म प्रसार किया है और इस आत्मदान की विशेषता यह है कि उसका यह अपना निजी होते हुए भी सबका है—उसकी बात सबके दिल की बात है। एक वाक्य में यह कि उसके आत्मदान में जीवन के व्यापक तत्त्व भरे हैं और उस व्यापकता में यह विचित्रता है कि उसमें एक साथ ससीम एवं निस्सीम का आनन्द प्राप्त है।

बच्चन जी ने हिन्दी में जोशी जी का स्वागत करते हुए लिखा—"जोशी जी भावुक व्यक्ति हैं। उनकी भावुकता आधुनिक युग की ठोकरें खाकर भी विषाक्त एवं तीखी नहीं हो सकी। वे आस्थावान व्यक्ति हैं। स्निग्धता उनकी वाणी का सहज गुण है।" उसकी वाणी की स्निग्धता का कारण क्या है? सर्वप्रथम कारण यही कि वह आस्थावान व्यक्ति है—जो कहता है पूरे विश्वास, पूरी आस्था और पूरे मन से कहता है। पूरे मन से पूरी बात आती है, तो आश्चर्य क्या? दूसरा कारण यह कि उसने जो भी कहा-लिखा तप कर लिखा है—कल्पना के गुब्बारे नहीं उड़ाए? जोशी अभावों की नगरी का कुमार है। उसने संघर्षमय जीवन व्यतीत किया है। उस के जीवन-तरु पर गहन दुखों के पतझर ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानों अपना स्थायी वास ही बना लिया है लेकिन इस संघर्ष ने उसे जीवन दिया है। गति दी है। इसी कारण न वह रोता है, न दूसरों को रोने देता है—

और तुम्हारे आगे यह जो नीमखड़ा है, कितना कड़वा कड़ी धूप को सहने वाला !
यों जीवन की मृदुता का उपहास बना है, पर जलते राही को ठन्डक देने वाला !!
और शिवालय में शिव की मूरत कहती, विष पीकर भी तुम माथे पर चाँद उगाओ !
रोना है, तो तुम अपने कमरे में रोओ, बाहर केवल गीत सुनाओ, हास लुटाओ !!

वह अंधेरे में चलता है, क्योंकि वह उनमें है, जिन्हें अपना पथ स्वयं बनाना और अपना पाथेय स्वयं जुटाना होता है। ठोकरें लगती हैं, तो वह बैठ नहीं जाता, क्योंकि अंधकार के बाद प्रकाश के आने में उसका विश्वास है। उसके साहस को बधाई कि वह अंधेरे में बढ़ने वाले दूसरे पथिकों को विश्वास दिलाता है—'एक किरन तेरे स्वागत में खड़ी हुई है।' फिर घबराने का क्या काम ? बैठ जाने की क्या जरूरत ? बढ़े चलना ही ठीक है तब तो !

छोटी-छोटी ठोकरों पर, ज़रा ज़रा - सी बात पर दम तोड़ने वालों को वह समझाता है—

तू चिल्लाया, चीखा, हल्की सी ठोकर से
देख उन्हें, जो हर ठोकर से खेल रहे हैं !
तूने अपने तिल से दुख को पर्वत समझा,
देख उन्हें जो पर्वत-सा दुख झेल रहे हैं !

इस तरह जोशी आशा का कवि है, उद्बोधन का कवि है। यहां एक खतरा है कि दूसरों को उद्बोधन देते देते आदमी प्रचारक न बन जाए, पर जोशी इस खतरे से दूर है, क्योंकि वह कह कर नहीं कहता, सहकर कहता है। वह पर-उपकार के लिये परोपकार नहीं करता, स्वउपकार से परउपकार करता है और निश्चय ही यह जीवन की एक बड़ी बात है।

जोशी की लोकप्रियता का रहस्य ही यह है कि वह वैयक्तिक सत्ता को लोक-सत्ता में विलीन करने की कला में माहिर है। वह व्यक्ति है, पर समाज का व्यक्ति है--इससे भी आगे समाज के लिए व्यक्ति है। इस समाज में संघर्ष ही नहीं है, सौन्दर्य भी है-अभाव ही नहीं है, प्यार भी है। इसी से वह उन्हें प्रिय है, जिन्हें सौन्दर्य और प्रेम की चाह है और उन्हें भी, जिन्होंने अभावमय जीवन बिताया है और उन्हें भी जो सामाजिक विषमता और आर्थिक शोषण के शिकार हैं।

जोशी के काव्य के दो पहलू पाठक के समक्ष आते हैं और वह हैं प्रेम और प्रगति। व्यष्टि के क्षेत्र में प्रेम और समष्टि के क्षेत्र में शोषण के विरुद्ध जिहाद। उसकी शक्ति का अभिनन्दन कि इन दोनों ही पथों पर वह जब बढ़ता है, तो इतनी दृढ़ता से बढ़ता है कि उसके हाथ की मशाल को सौ तूफान मिलकर भी नहीं बुझा सकते।

जोशी के काव्य की पृष्ठभूमि विकासशील है। इसी से वह प्रेम, जो आरम्भ में रूप के आकर्षण के सहारे उगता है, आगे चलकर आग के आकर्षण के सहारे चलने लगता है। एक वाक्य में जोशी स्थूल से सूक्ष्म की ओर चलता है और तब एक दिन उसका यह सूक्ष्म विराट का सूक्ष्म बन जाता है—

तुम मिली सृष्टि की सम्पदा मिल गई, दृष्टि को प्यार के सौ गगन मिल गए,
मिल गए सौ जनम के मुझे मधु चषक, जब तुम्हारे नयन से नयन मिल गए।

यह है जोशी के प्रेम-प्यार का अँकुराया रूप, पर वह मधु-चषक पीकर नालियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर गिरता नहीं फिरता–संघर्ष की नई शक्ति प्राप्त करता है। यह है उसके प्रेम-प्यार का तरुण रूप—

कापुरुष कहता उन्हें मैं दर्द से जो भागते हैं,
प्रेम पथ पर शीश पर धर जो कफन बढ़ते नहीं हैं !
जीतने को प्यार का अधिकार दुनिया के करों से,
जान को धर कर हथेली पर तभी लड़ते नहीं हैं !!

और यह है उनके प्रेम-प्यार की पूर्णता–चरम परिणति, जहाँ संघर्ष नहीं, शान्ति है–अतृप्ति नहीं, अर्पण है—

एक प्रेमी का हृदय ही देवता का रूप !
प्रेम प्रभु की रचना का सार, प्रेम प्रभु का ही रूपाकार,
विश्व वीणा की मृदु झंकार, प्रेम अमृत का फेनिल ज्वार !

जोशी आँसू की धारा में रागों के दीपक तैराता है और उन्हीं झिलमिलाते दीपकों के प्रकाश में चिन्तन करता है। अपने इस चिन्तन में जोशी बच्चन के शरीरी पथ से दूर और महादेवी के अशरीरी पथ के निकट होता है—

कौन रचता चित्र मेरे शून्य पट पर आन ? फिर अधूरे छोड़ होता शीघ्र अन्तर्ध्यान !
नील नभ से अर्धनिशि में झाँक मुख अवदात, है बुलाता कौन वह ज्योतिर्जलज के तीर?

क्या यह चिन्तन एक निवृत्ति है ? ना यह एक प्रवृत्ति है और स्वस्थ प्रवृत्ति है; क्योंकि जीवन के बहुधारात्मक रूप को अपनी दृष्टि में समाए चलती है, इसी दृष्टि के तीन रूप हैं—

दो मुझे अनुभूति वह, जो जोड़ दे चिर को अचिर से ;
दो मुझे अभिव्यक्ति वह जो जोड़ दे थिर को अथिर से।

× × ×

क्षमता दो, पत्थर को दूं वाणी ममता की ,
क्षमता दो, दुष्कर को दूं वाणी समता की ,
क्षमता दो, कर सकूं प्रेम से घृणा उजागर ,

× × ×

उक्ति न दो हे देव ! नव्य कर्मणा लहर दो।

जोशी अपनी पीढ़ी में यहीं सामर्थ्यवान है कि उसके एक हाथ में लोक है, तो दूसरे में परलोक। कहना चाहिए कि वह कल्पना का नहीं, यथार्थ का साधक है और उसने जीवन के सभी रूपों को स्वीकार किया है। इसी से उसकी कला कला के लिए नहीं, जीवन के लिए है, जीवन के विविध रूपों के लिए है—

कला-कौशल वह सब अपदर्थ, सृजन साहित्य सभी वह व्यर्थ,
रहे जो जन-जीवन में व्यर्थ, न आए जो मानव के अर्थ !

× × ×

जहाँ पर बहता श्रम का स्वेद, जहाँ श्रम रचता जीवन-वेद;
जहाँ श्रम जीवन धर्म अभेद, वहाँ की मिट्टी पुण्य सफेद !

इस प्रकार जीवन प्रकाश जोशी, नई पीढ़ी का एक कला-साधक, जिसके लिए कला-साधना का अर्थ है जीवन-साधना। और जीवन; जिसमें कुछ तरल है, कुछ ठोस, पर तरल ऐसा कि ठोस अपने में लिए और ठोस ऐसा कि तरल से लचीला-कहूँ, उगता, खिलता जीवन!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन के झरोखे से

गुरु गोविन्द सिंह

एक बार गुरू गोविन्दसिंह शिकार खेलते-खेलते अपने किसी शिष्य-राज्य में जा निकले। फिर राजमहल में गये। राजा, रानी, बच्चे, नौकर और सभी सेवा में जा उपस्थित हुये। गुरूजी ने पीने को पानी माँगा। राजा ने इस सेवा का मेवा पाने का अवसर अपने बड़े पुत्र को प्रदान किया।

राजकुमार जलपात्र में जल लेकर आया। जल लेते समय गुरूजी की दृष्टि राजपुत्र के हाथों पर पड़ी। हाथ बड़े प्यारे थे। हस्त-कमल ही समझें।

"तुम्हारे हाथ बहुत सुन्दर हैं, युवक! गुरूजी ने कहा तो राजकुमार गर्वित हो बोला, "जीवन में पहली बार इन हाथों से किसी के लिये कुछ किया है गुरूजी।

गुरु गोविन्दसिंह ने बिना पिये ही जलपात्र लौटाते हुये कहा, "वत्स, हम ऐसे दम्भी हाथों का जल नहीं पी सकते। पहले इन हाथों को लोक सेवा से पवित्र करो।"

यूक्लिड

एक बार यूक्लिड सिकन्दरिया के राजा प्लोटेमी को जयमिती पढ़ा रहे थे।

राजा ने पूछा, "क्या जयमिती सीखने का कोई आसान मार्ग नहीं है?" "महाराज" यूक्लिड ने उत्तर दिया, "हमारे देश में दो प्रकार के मार्ग हैं, आम प्रजा के लिये तो ऊबड़-खाबड़ और शाही खानदान के लिये 'राज मार्ग', किन्तु जयमिती में सबको एक ही मार्ग से हो कर जाना पड़ता है। विद्या में कोई 'राज-मार्ग' नहीं।"

बृजेन गोस्वामी

बृजेन गोस्वामी साहसी युवक हैं और उन्हें बचपन से ही दुनिया देखने की धुन थी। १९५६ के अन्त में वे एक कैमरा और मामूली-सा सामान लेकर साईकिल पर विश्व यात्रा करने को निकले और उत्तरी भारत के विभिन्न नगरों में घूमने के बाद, पश्चिमी पाकिस्तान, अफगानिस्तान, ईरान, ईराक और मिश्र आदि देशों की उन्होंने सैर की।

जब वे सूडान में थे, तो उनकी मां की मृत्यु हो गई और उन्हें १९५७ के अन्त में घर लौटना पड़ा, पर विश्व दर्शन की प्यास उनमें इतनी तेज़ है कि १९५९ के अन्त में वे फिर घर से निकल पड़े और आसाम, बंगाल, उड़ीसा और बिहार घूमने के बाद नेपाल जा पहुंचे।

साईकिल पर चढ़ वे दुनिया घूम रहे हैं, पर नेपाल की यात्रा में साईकिल ही उनपर चढ़ी। रास्ता पहाड़ी है इसलिये हाथों पर साईकिल उठाए वे काठमान्डू पहुँचे। आसाम में नागाओं ने उन्हें जासूस समझ कर गिरफ्तार कर लिया और भाग्य से ही सिर कटते कटते बचा। इसी तरह खतरों और दुर्गमताओं का आनन्द लेते हुए बृजेन गोस्वामी अभी तक ३६ हजार मील की विश्व यात्रा कर चुके हैं और देश के युवकों को साहसिकता का सन्देश देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने पढ़ने के कमरे में

देखा, पढ़ा, सुना

लार्ड और लेडी माउन्ट बैटन भारत की सत्ता भारतवासियों को सौंपने आए थे। भारत आने पर प्रथम काम यह किया कि उन्होंने अधिक से अधिक भारतीयों के सम्पर्क में आना आरम्भ किया और इसके लिए उन्होंने दावतों का आयोजन किया। लार्ड और लेडी माउन्ट बैटन दो वर्ष से भी कम समय रहे, किन्तु अल्प समय में उनकी दावतों ने रेकार्ड स्थापित कर दिया था।

जानते हैं इस अर्से में उन्होंने कितने अतिथियों को आमंत्रित किया? अतिथियों की संख्या ४२ हजार के आसपास है। इस सम्बन्ध में कुछ आँकड़े मैंने प्राप्त किए हैं। इनसे आप अनुमान लगा सकेंगे कि वे दोनों कितने मेहमान नवाज़ थे।

लार्ड और लेडी माउन्ट बैटन ने रात्रि भोज (डिनर्स) पर कुल मिलाकर ८३१३ अतिथियों को आमंत्रित किया। रात्रि-भोज के अतिरिक्त कई बार लोग दोपहर के खाने पर भी आमंत्रित किए गए। इनकी संख्या डिनर करने वालों से कुछ कम है। ७६०५ अतिथि दोपहर के खाने पर आए, किन्तु सबसे अधिक लोग चाय अर्थात् गार्डन-पार्टियों में आमंत्रित किए गए। वायसरीगल लाज के विशाल मुगल-उद्यान में लगभग सवा पच्चीस हजार लोगों ने लार्ड और लेडी माउन्ट बैटन का आतिथ्य स्वीकार किया।

इन दावतों के सम्बन्ध में एक और विशेष बात यह है कि इनमें से अधिकतर का खर्चा माउन्ट बैटन ने अपनी जेब से दिया; क्योंकि दावतों के लिए मिलने वाला भत्ता इतना अधिक नहीं था कि उससे ४० हजार से भी अधिक लोगों को खिला पिला कर स्वागत किया जा सकता।

१३ हजार की 'टिप'

अङ्गरेज़ी शब्द-कोष में एक शब्द है 'टिप'। आशा है इस अनोखे शब्द से आप भली प्रकार परिचित होंगे। कम से कम नगर निवासियों के लिए तो यह शब्द नया नहीं क्योंकि नागरिक सभ्यता में 'टिप' के ही बल पर तो आप अपनी धाक जमा सकते हैं।

आप यदि चाय पीते हैं तो चाय का पैसे देने के साथ-साथ आपको कुछ पैसा उस बैरा को देना होगा जिसने आपको चाय पिलाई है। तब ही तो वह आपको जाते समय सलाम और आते समय मुस्कुरा कर स्वागत करेगा। होटल में ठहरिये, टैक्सी में बैठिए, लिफ्ट में चढ़िए या फिर बाल ही क्यों न कटवाइए 'टिप' आपको देनी ही होगी। नहीं देते तो आप असभ्य, फक्कड़ समझे जाएँगे। खैर आप 'टिप' दें न दें यह आप जानें, हम तो आज आपको 'टिप-इतिहास' की एक महत्त्वपूर्ण घटना सुनाने आए हैं। तो लीजिए सुनिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात सन् '५४ की है। जापान की राजधानी टोकियो के एक मदिरालय में एक व्यक्ति बियर पीने आया। परिचारिका दो बोतलें ले आई। बोतलें आने पर जब उस व्यक्ति ने बिल का भुगतान किया तो उसने एक चैक परिचारिका को भी 'टिप' में दिया। परिचारिका ने जब चैक पढ़ा तो उसने समझा शायद वह व्यक्ति मजाक में चैक दे गया है; क्योंकि एक हजार पौंड का था।

दूसरे दिन उसने चैक की घटना अपनी एक सहेली को सुनाई। सहेली ने कहा कि बैंक गई थी या नहीं। इस पर परिचारिका ने हँस कर कहा यह तो मज़ाक मात्र है, लेकिन जब सहेली ने बहुत आग्रह किया तो वह बैंक पहुँच गई। उसके आश्चर्य की तब सीमा न रही जब बैंक-क्लर्क ने उसका चैक लेकर उसे एक हजार पौंड अर्थात् १३ हजार रुपये के लगभग दे दिए।

बाद में जब 'टिप' देने वाले व्यक्ति से पूछा गया कि उसने इतनी अधिक 'टिप' क्यों दी तो उसने बड़ा संक्षिप्त-सा उत्तर दिया—मुझे वह अच्छी लगी थी।

आज तक इतनी अधिक 'टिप' संभवतः किसी ने भी न दी हो।

['नवभारत टाइम्स' में श्री बच्चन श्रीवास्तव]

भीख नहीं चाहिए

सहरसा से मधेपुरा आ रहा था। कालेज की लम्बी छुट्टियाँ थीं अतः मेरे कई साथी भी ट्रेन में साथ ही थे। सहरसा से गाड़ी खुलते ही शीशा, कंघी और सुई आदि बेचने वाला एक पंजाबी बालक हमारे डिब्बे में चढ़ आया। फटी कमीज और मैला पाजामा। अवस्था कोई बारह-तेरह वर्ष की होगी। मासूम चेहरे पर गरीबी की मार स्पष्ट थी। सारे डिब्बे में उसने कई बार आवाज लगाई, परन्तु कोई एक कंघी का भी खरीदार न था। हारा-थका निराश बालक मेरे पास आया और बड़ी नम्रता से बोला— "एक कंघा ही लीजिए बाबू!" मेरे पास जेब में कंघा था अतः मैंने नकारात्मक भाव से सिर हिला दिया।

"सिर्फ एक कंघा ही ले लीजिए" उसने पुनः जोर दिया।

"अरे, नहीं लेना है कुछ भी हमें। क्यों दिमाग चाटता है?" एक साथी ने उसे डाँट दिया और उदास हो वह चुप हो गया। गाड़ी की चाल धीमी हो रही थी। शायद कोई स्टेशन आ रहा था। सहसा मेरे एक साथी को उस उदास बालक पर दया आ गई। जेब से दुवन्नी निकाल कर उसकी तरफ बढ़ाते हुए साथी ने कहा— "ये ले दो आने।"

बालक की आँखें हर्ष से चमक गईं। उसने लपककर पैसे ले लिए और दो कंघे मेरे दोस्त की तरफ बढ़ा दिए। गाड़ी स्टेशन पर पहुँच गई थी।

"मुझे कंघे नहीं चाहिएँ, ये पैसे तुम्हें यों ही दिए थे" — साथी ने लापरवाही से कहा।

बालक का चेहरा क्षण भर के लिए तमतमा गया और फिर सफेद हो गया। पैसा लौटाते हुए उदास, परन्तु दृढ़ स्वर में वह बोला—"मुझे भीख नहीं चाहिए बाबू जी।"

हम कुछ बोलें तब तक वह ट्रेन से उतरकर दूसरे डिब्बे की तरफ बढ़ गया था।

[अणुव्रत में श्री चंदन मल सिंघी]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नरक-स्वर्ग के चित्र

नरक

पति—साढ़े दस तो बज चुके हैं और अभी तक चूल्हे पर कड़ाही का पता नहीं है। क्या मेहमान शाम तक भूखे बैठे रहेंगे?

पत्नी—तो मैं क्या करूँ? सबेरे से उठकर ही तो काम में लगी हूँ। इतनी फौज को चायपानी नाश्ता करना भी तो पूरी रसोई है। उससे निबटी कि इस दूसरी रसोई में लगी। आखिर हाथ तो दो ही हैं।

पति—तो चार किसके होते हैं?

पत्नी—मौके पर सभी घरों में चार होते हैं। काम बढ़ जाने पर अकेली स्त्री पर सब काम नहीं छोड़ा जाता। दूसरे हाथ भी काम में लगते हैं।

पति—तो मैं मित्रों को बैठक में अकेला छोड़कर यहाँ रसोई घर में चूल्हा फूँकने बैठ जाऊँ?

पत्नी—मुँह तो गप्पें मारने के लिए है, उससे चूल्हा फूँकने का बेकार काम क्यों करोगे? पर जब गप्पों में मुँह चल ही रहा है तब चबने में चलाने की क्या जरूरत है? आज देर ही सही।

पति—जब तुम्हारी सहेलियाँ आती हैं, तब उनसे कभी ऐसी बात कही?

पत्नी—तब कहने की जरूरत ही नहीं पड़ती। मेरी सहेलियाँ हाथ रोककर मुँह नहीं चलाती। वे काम भी करती जाती हैं और मुँह भी चलाती जाती हैं।

पति—और कमाकर भी लाती होंगी।

पत्नी—बनाने के काम में जो कमाई है वह बाहर की कमाई से कम नहीं होती। जरा अपने मेहमानों को होटल में भोजन कराने ले जाओ, तब मालूम होगा कि बनाने की कमाई कितनी हुई है?

पति—हाँ! मेहमान होटल में जाएँगे और तुम पड़ी-पड़ी आराम करोगी।

पत्नी—मुझे आराम देने के पाप की चिन्ता न करो। मेरा आराम तो उसी दिन खत्म हो गया जिस दिन इस घर में आई। होटल में तुम सब खाने चले जाओगे, तब भी सबके कपड़े धोते-धोते मुझे शाम हो जाएगी।

पति—एक दिन जरा काम बढ़ गया, तो तुम्हारी सभ्यता का दिवाला निकल गया।

पत्नी—यह एक दिन की बात है? हर दिन कोई न कोई लदा ही तो रहता है। हमें तो कभी ऐसा मौका नहीं मिलता कि चलो, आज दूसरों के यहाँ भोजन करने जाना है इसलिए रसोई से छुट्टी है। मेरी बात जाने दो, पर तुम भी कब-कब दूसरों के यहाँ खाने जाते हो? सब मेरे यहाँ ही मुफ्त का माल उड़ाने को और मेरा कचूमर बनाने को हैं।

पति—जरा धीरे बोल! सुन लेंगे तो मेरी नाक कट जाएगी।

पत्नी—तो तुम मेरी गर्दन काट लेना। ज़िन्दगी से पिंड तो छूटेगा और मेहमानों को चूल्हे तक सब जगह खाली तो हो जाएगी।

पति का चेहरा लाल हो गया। दोनों के भीतर नरक तमतमाने लगा।

स्वर्ग

पत्नी—यह क्या करते हो? शाक तो मैं अभी बना लेती हूँ। तुम्हें हाथ लगाने की जरूरत नहीं है।

पति—तुम्हारी अद्भुत योग्यता, धीरज और सेवा-भाव का मुझे पता है, पर मेहमानों की सेवा का सारा पुण्य क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हीं लूट लोगी ? कुछ मुझे भी तो लेने दो।

पत्नी—पुण्य का हिस्सा तो बन्धा-बँधाया है। तुम्हारी कमाई में आधा हिस्सा मेरा, मेरी सेवा में आधा हिस्सा तुम्हारा तो सदा से तय है। अब तुम मेरे काम में हाथ बटाकर अपना हिस्सा बढ़ाने की कोशिश न करो।

पति—पर आज तो काम तिगुना है। इस तिगुने पुण्य में से थोड़ा मैंने ले लिया तो तुम्हारा क्या घटने वाला है ?

पत्नी—सो तो तुम सबने पहिले ही ले लिया। मेहमानों ने अपने-अपने कपड़े धो लिये, तुमने पानी भरकर रसोई में रख दिया। अपना बैठक खाना झाड़ लिया। बिस्तर वगैरह उठा लिये। इस तरह आधा पुण्य तो मेरा लूट ही लिया।

पति—खैर ! वह तुम्हारे खाते जमा कर दूंगा, पर रसोई जरा जल्दी हो जाय इसलिये कुछ हाथ तो बटाऊं ?

पत्नी—रसोई जल्दी ही होगी। हर दिन की अपेक्षा आधे घंटे से अधिक देर न होगी।

मेहमान—(रसोई घर में प्रवेश कर) देर की चिन्ता नहीं है भाभी ! पर आपसे मिलने का और बात करने का सौभाग्य भी तो मिलना चाहिये।

पत्नी—तो बैठिये ! मैं बात भी करती जाऊंगी और काम भी करती जाऊंगी।

मेहमान—बड़ी चतुर हो भाभी ! देवरों को शर्मिन्दा करने का कार्यक्रम तो बहुत अच्छा बनाया है। तुम अबला कहलाकर भी काम भी करोगी और बात भी। हम पहलवान होकर भी बातें करने के लिए हाथ पर हाथ रक्खें बैठे रहेंगे।

पत्नी—यह क्यों नहीं कहते कि भोजन में आधे घण्टे की भी देर सहन नहीं हो रही है ?

मेहमान—देरी का बिल्कुल डर नहीं है भाभी ! बल्कि हम लोग काम करेंगे तो काम का बोझ भले ही बट जाए, पर समय तो अधिक ही लगेगा। गप्पों में आपका हाथ भी ढीला कर देंगे। इस तरह जब देर हो जाएगी तब कड़ी भूख में ब्याज सहित सब वसूल करेंगे।

पत्नी—कर लिया वसूल। ससुराल की तरह चिगलते ही न रह जाओ तो बात !

मेहमान—पूरा मेहमान बना कर रक्खोगी तो यही होगा, पर कुछ काम करने दोगी तो इतने बेतकल्लुफ हो जाएंगे कि चिगलने की जगह निगलने लगेंगे। बोलो, चिगलाना है कि निगलाना ?

पत्नी—हारी बाबा तुम लोगों से। जो करना हो सो करो।

मेहमान—तो भाई साहब शाकभाजी बनाएंगे, मैं आटा गूनूंगा, बाकी लोग दाल चावल बीनेंगे, पूड़ियाँ तलेंगे।

पत्नी—तब मैं क्या बैठी-बैठी तमाशा देखूँ ?

मेहमान—तुम्हीं क्यों ? सभी मिलकर तमाशा देखेंगे और सभी मिलकर तमाशा करेंगे भी। बाकी तुम्हारे लिए पूड़ी बेलने का सबसे बड़ा काम है ही, क्योंकि हम लोग वह काम करेंगे, तो भारत, इंग्लैण्ड, अमेरिका के नक्शे ही बना डालेंगे।

सब लोग काम में लग गए, मजे की बातें होने लगीं, हंसी के फव्वारे उड़ने लगे। समय भी कटा और काम का भी बोझ न मालूम हुआ। श्रम और स्वर्ग का समन्वय हो गया।

['जैन जगत' में श्री सत्यभक्त]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक-परिचय

श्री मोहनजीत सिंह

पथेर पंचाली

टैगोर के कवित्वपूर्ण और शरत् बाबू के रोमेन्टिक बंगाल से सर्वथा भिन्न है विभूतिभूषण वन्द्योपाध्याय का बंगाल। विभूतिभूषण बाबू की पुस्तकों का अनुवाद अन्य भाषाओं में बेशक नहीं हो सका लेकिन वास्तव में कला और शैली के लिहाज़ से, भाव तथा कथावस्तु के लिहाज़ से उनका रुतबा टैगोर और शरत् से कहीं ऊंचा है। उनकी कृतियों की तुलना रोम्या रोलां, गाल्र्सवर्दी तथा हेमिंग्वे की कृतियों से की जा सकती है।

प्रस्तुत उपन्यास में, जो बंगाल के एक साधारण परिवार पर लिखा गया महा-काव्य है, लेखक ने 'सेक्स' के 'टच' से निरा अछूता रख कर भी मनोवैज्ञानिक तथ्यों से भरपूर बहुत मार्मिक चित्रण किया है। भावना शुरू से अन्त तक इतनी कि पाठक की आँखें सजल रहें।

हिन्दी साहित्य के बंगाली हीरो श्री मन्मथनाथ गुप्त ने इस पुस्तक का अनुवाद हिन्दी में करके कुछ कम महत्व का काम नहीं किया।

एक प्रति का मूल्य पांच रुपये और प्रकाशक हैं—राजपाल एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली-६।

राना बेनी माधव

'राना बेनी माधव' एक ऐतिहासिक उपन्यास है श्री अमर बहादुर सिंह 'अमरेश' का लिखा हुआ।

रायबरेली का यह तरुण लेखक 'अमरेश' लिखता है या आग बरसाता है? इसमें कुछ कर डालने की चाह ही नहीं, शक्ति भी है। कमाल का ज़ोर है इसकी कलम में। उपन्यास का विषय भी रुचि-पूर्ण चुना। 'अमरेश' के मन में विद्रोह की ज्वाला जल रही थी, कि विद्रोह की कहानी लिख डाली। उपन्यास पढ़ने पर ऐसा लगता है मानो सारी घटनाएँ आँखों के सामने घट रही हों। इस ज़िन्दादिल साहित्यकार को हमारी शुभकामनाएँ।

प्रस्तुत पुस्तक का मूल्य रु० ४.५० न. पै.। प्रकाशक—भारती प्रकाशन लखनऊ।

आधी रात का सबेरा

श्री हंसकुमार तिवारी जी के चार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटकों का संग्रह है 'आधी रात का सबेरा'।

श्री हंसकुमार तिवारी जी बिहार के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकारों में से हैं। प्रतिभावान कला-साधक। अभी तक लगभग ढाई दर्जन से अधिक पुस्तकें हिन्दी जगत को दे चुके हैं। तिवारी जी श्रम में विश्वास करते हैं, तभी तो उनकी रचनाओं में से वास्तविकता के दर्शन सहज ही हो जाते हैं।

सभी नाटक स्टेज पर खेलने के विचार से पूर्ण हैं। इनमें 'ढलती किरण' और 'आधी रात का सबेरा' तो मास्टरपीस हैं। तिवारी जी कवि और उपन्यासकार तो थे ही, लेकिन इस पुस्तक को पढ़ कर समाप्त किया तो जाना कि वे इस क्षेत्र में भी कुछ कम नहीं।

मूल्य एक प्रति का २॥) रु० प्रकाशक—मानसरोवर प्रकाशन, गया।

चैत्र जाते जाते

श्री लाडली मोहन मंजे हुए कहानीकार हैं। इनकी कहानियों की विशेषता यह है कि वे हर बार पाठक के सामने नए प्रकार के पात्रों को नए उबटन में पेश करते हैं।

'चैत्र जाते जाते' इन्हीं का लिखा लघु उपन्यास है। इसके सभी चरित्र साधारण होते हुए भी असाधारण हैं। वर्णनशैली में समरसता है। पढ़ना शुरू कर दें तो समाप्त करके ही उठने को जी चाहता है। यह लेखक की यशोवर्धन रचना है और उनसे ऊंची आशा करने को कहती है।

प्रस्तुत पुस्तक का मूल्य २।) रु०। प्रकाशक—कहानीघर, ठठेरवाड़ा, मेरठ।

नागिनें और बुलबुलें

कुछ दिनों पहले साहित्यकारों की एक सभा में चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने कहा था कि २७ वर्ष से कम की उम्र में कोई भी लेखक बनने का प्रयास न करे। उनके कहने का तात्पर्य था कि इससे पूर्व मनुष्य का अनुभव अपूर्ण होता है और साहित्यक्षेत्र में पैर रखने के लिये विस्तृत अनुभव उतना ही ज़रूरी है जितना अध्यवसाय के लिये अर्थ।

चलचित्र जगत से सम्बन्धित होने के कारण श्री किशोर साहू एक ऐसे लेखक हैं जिन्होंने ज़िन्दगी को देखा, परखा और जिया है। वे यथार्थ को कहते शरमाते नहीं और छोटी घटनाओं को भी अपनी कला से महान् रूप दे सकते हैं। तभी तो उनकी कहानियों में इतनी सजीवता है।

यथार्थ और सांकेतिकता के समावेश से मनोवैज्ञानिक तथ्यों से भरपूर ११ कहानियों का संग्रह है यह। कथावस्तु और वर्णनशैली महत्वपूर्ण है।

एक प्रति का दाम—चार रुपये मात्र। प्रकाशक हैं—किताब महल, ५६ए ज़ीरो रोड, इलाहाबाद-३।

सूनी घाटी का सूरज

यथार्थ, जीवन और संघर्ष का जोड़! यह जोड़ क्या एक प्रश्न है। इसी प्रश्न को सुलझाने का सफल प्रयास है यह उपन्यास—'सूनी घाटी का सूरज।'

लेखक श्री श्रीलाल शुक्ल ने बहुत ही सुन्दर शैली में आधुनिक समाज के रोमान्टिक जीवन के भीतरी और बाहरी रूप का कलापूर्ण चित्रण करते हुए यह उपन्यास लिखा है। व्यंग्य तीखे हैं। हृदय तक घाव करते हैं। अभिव्यक्ति सशक्त, मार्मिक भी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक प्रति की कीमत तीन रुपये। प्रकाशन स्थान–किताब महल, ५६ ए ज़ीरो रोड, इलाहाबाद–३।

तंतुजाल

हिन्दी कथा साहित्य में श्री रघुवंश एक ख्यातिप्राप्त कहानीकार हैं। उनकी कहानियाँ मानव समस्याओं की अथाह गहराइयों का पता लगाने में प्रमुख रही हैं। उन्हीं का पहला उपन्यास है यह—तंतुजाल।

विशाल पीपल का एक पत्ता! उसे हरा रखने के लिए पीपल के विशाल वृक्ष की सारी शक्ति लगी है, लेकिन एक विपरीत शक्ति उसे जर्जर बनाने में भी अनजाने कार्यरत है, तो रह जाता है एक सूखा पत्ता—यही है तंतुजाल।

श्री रघुवंश जी के उपन्यास 'तंतुजाल' का स्वागत करते हमें प्रसन्नता हो रही है। उनकी भाषा बड़ी सशक्त तथा शैली अनूठी है।

पुस्तक का मूल्य–६) रु० मात्र। प्रकाशक हैं—किताब महल, इलाहाबाद।

अनन्ता

डा० कंचनलता सभरवाल प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार हैं। कहानी, उपन्यास, नाटक और गद्यगीत पर उनको समानाधिकार है। वे लिखती हैं, कला के लिये। तभी तो उनकी कृतियां इतनी कलापूर्ण होती हैं।

मालवा के गुप्तों, थानेश्वर के वर्द्धनों और कन्नौज के मौखारिवंशीय राजाओं के केन्द्रीय सत्ता हथियाने के संघर्ष और अनन्ता तथा देवगुप्त के वेदनामय प्रणय की कथा ही तो इस नाटक की आधार शिला है। देवगुप्त–जो सारा जीवन गलत मार्गों पर चला। अनन्ता—जो चुपचाप जीवन के विष को गटकती रही और तड़पती रही।

डा० कंचनलता ने यह नाटक बड़ी सूक्ष्मता के साथ संवेदना भरी भाषा में अंकित किया है। उनकी यह रचना हिन्दी के प्रमुख अभिनेय नाटकों में से एक है।

मूल्य--ढाई रुपये। प्रकाशक---किताब महल, इलाहाबाद।

ओस और किरण

श्री विश्वम्भर मानव हिन्दी साहित्य के तपे हुये साधक हैं। इन्होंने जीवन के सही मूल्यों को खूब गहराई तक समझा है। तस्वीर के दोनों पहलू देखकर निर्णय देना, इनका स्वभाव बन गया है।

आधुनिक समाज में एक 'संक्रामक' पनपा है पिछली चौथाई शताब्दी में। प्रणय, परिणय—इसके विभिन्न रूप और उपजने वाली समस्याएँ। जाने कितने निराश हुए, जाने कितने पागल हुए और जाने कितने मर मिटे—क्योंकि वे इस 'संक्रामक' के शिकार बने, लेकिन बीमारी का असली रूप न जानते थे। बदपरहेज़ी की और सफ़ाया हुआ।

इस संक्रामक को श्री विश्वम्भर मानव ने खूब समझा और उसी के विश्लेषण के लिये सात नाटक लिखे। नाटक क्या हैं, —दर्पण हैं—चाहे जो अपना चेहरा देख ले। इसी दर्पण का नाम है 'ओस और किरण'।

मूल्य—तीन रुपये। प्रकाशक—किताब महल, इलाहाबाद।

मोतियों वाले

सरदार कर्त्तार सिंह 'दुग्गल' हिन्दी के बहुत आगे बढ़े कहानी लेखकों में से हैं। इनका पंजाबी, उर्दू तथा हिन्दी पर समानाधिकार है। शैली अनूठी तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा विशेष। आप उन साहित्यकारों में से हैं, जो बहुतों की भीड़ में रल नहीं सकते। वे खुद कोमल हैं, उनका शरीर कोमल, भाषा और भाव कोमल। इतने कोमल कि पाठक को भी कोमल बनालें।

मोतियों वाले में दुग्गल सरदार की वे कहानियां संग्रहीत हैं, जो हमारे आज के समाज का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनके पात्र मामूली होकर भी गैर मामूली होते हैं। कहानियां मन को कुरेदती हैं और नसों में खुशबूदार खून उछालती हैं। अच्छाई की राह दिखा कर अच्छे कामों, अच्छे भावों के लिये प्रेरित करती हैं। कहानी पढ़ें तो लगता है कि हमारा चुगिर्दा अच्छाइयों से भरा पड़ा है और हम धीरे धीरे अच्छे बन रहे हैं। अच्छाई के बीच किसे आनन्द न आएगा।

कीमत—ढाई रुपये। प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

अमरनाथ दर्शन

श्री हंसराज 'दर्शक' एक पंजाबी हैं और पंजाबी घुमक्कड़ होते हैं। सबूत की ज़रूरत नहीं, दुनिया के किसी तख्ते पर नज़र डालें, आपको पंजाबी वहां खड़ा मिलेगा।

दर्शक जी इतनी दूर तो नहीं गए, लेकिन फिर भी दुर्गम रास्तों को पार कर अमरनाथ तक ज़रूर पहुँचे। थे ईमानदार; लूटे आनन्द को मित्रों में बाँटने की सोची तो यह पुस्तक लिखी। अमरनाथ यात्रा पर यह सचित्र पुस्तक एक गाइड से कुछ अधिक है और पाठक को यात्रा का अच्छा विवरण देती है।

मूल्य — डेढ़ रुपया। प्रकाशक — श्री राम श्री कृष्ण, जी० बी० रोड, दिल्ली।

विवेक की कुंजी विद्या नहीं, स्वाभाविक विवेचन-शक्ति है। ज्ञान का प्रसार इस शक्ति के द्वारा होता है और इसी के बल पर मानव में सद् असद् का सम्यक् ज्ञान होता है। जिस व्यक्ति में यह शक्ति जन्मजात रूप में विद्यमान है, उसे बहुत अधिक विद्या की आवश्यकता नहीं होती और वह अपढ़ रहकर भी सफल हो सकता है।

—जेम्स ऐलेन

विश्वास के तीन लक्षण हैं—सब चीजों में ईश्वर को देखना, सारे काम ईश्वर की ओर नजर रखकर ही करना और हरएक हालत में हाथ पसारना तो उस सर्वशक्तिमान के आगे ही।

—जुन्नुन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि आप दैनिक पत्र पढ़ते हैं,
तो आपके लिए आवश्यक

यदि आप दैनिक पत्र नहीं पढ़ते,
तो आपके लिए अनिवार्य

विकास

विचारों की यात्रा में मील के पत्थर की तरह
दिशाबोधक साप्ताहिक

★

प्रधान सम्पादक
श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

★

वार्षिक मूल्य ५ रुपये

विकास लिमिटेड सहारनपुर, उ. प्र.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० ए. ७१७

मनोहर और आकर्षक पैकिंग

आपकी बिक्री को बढ़ाता है

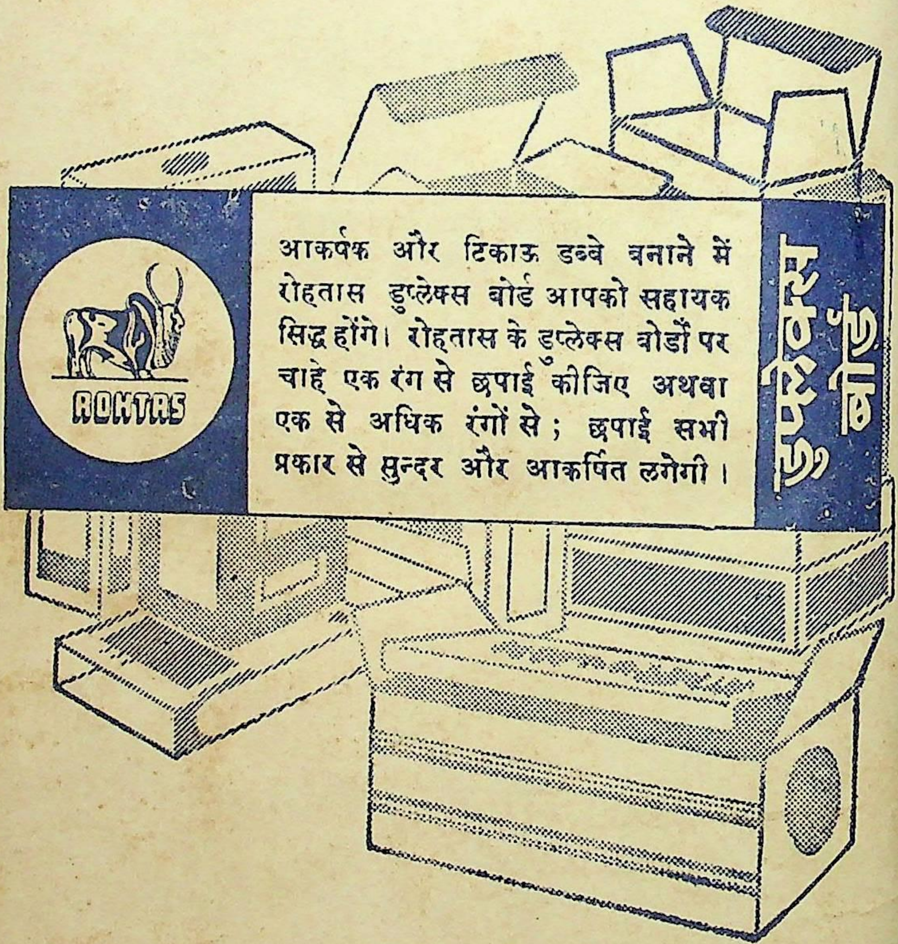

साहू जैन इंडस्ट्रीज़

रोहतास इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड

डालमियानगर, बिहार

देश में कागज और बोर्ड के सब से बड़े निर्माता

नया जीवन

अप्रैल १९६०

मुद्रक—अखिलेश द्वारा विकास प्रिंटिंग वर्क्स, सहारनपुर में मुद्रित-प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नया जीवन

जौलाई १९६०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कागज़ के एक छोटे पुर्ज़े पर
महात्मा गांधी ने आश्रम के
एक रोगी को रात में दो
बजे एक हिदायत लिखी थी।
अब यह पुर्जा एक कीमती संस्मरण है!

विदेश के एक अज्ञात कवि
द्वारा लिखा एक पुर्जा मिला
उसके मरने के बरसों बाद
वह उसी से अमर हो गया;
उस पर उसकी एक कविता लिखी थी।

कागज़ के बिना न
शास्त्र मिलते न साहित्य।
कागज़ हमारी सभ्यता की
एक पवित्र धरोहर है!

श्रेष्ठ स्वदेशी कागज़ों के निर्माता

स्टार पेपर मिल्स लि०

सहारनपुर : उत्तर-प्रदेश

मैनेजिंग एजेन्ट्स—**बाजोरिया एण्ड कम्पनी, कलकत्ता**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक समान सरल प्रणाली के लिए

देश भर में नाप-तौल की एक समान, सरल प्रणाली लागू करने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक और महत्वपूर्ण कदम उठाया गया है।

१ अक्तूबर, १९५८ को राज्यों और केन्द्र शासित क्षेत्रों के कुछ चुने हुए इलाकों में मेट्रिक बाटों का प्रयोग चालू किया गया था। अब इस वर्ष, अक्तूबर मास से इन इलाकों में केवल मेट्रिक बाट ही कानूनी रूप से मान्य होंगे।

अप्रैल, १९६० से जम्मू-कश्मीर के अतिरिक्त बाकी सारे देश में भी मेट्रिक बाटों का प्रयोग चालू कर दिया गया है।

अप्रैल, १९६२ से देश भर में मेट्रिक बाटों का प्रयोग अनिवार्य कर दिया जायेगा।

मेट्रिक प्रणाली

सरलता व एकरूपता के लिए

भारत सरकार द्वारा प्रचारित

DA 60/66

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महापुरुषों के संस्मरण
उन पद् चिह्नों के समान हैं
जिन पर चलकर
सामान्य लोग
जीवन और उसके उद्देश्यों का संधान
कर सकते हैं
सस्ता साहित्य मंडल
द्वारा प्रकाशित
यह जीवनी तथा संस्मरण-साहित्य
सब के लिए
सर्वोत्तम मार्गदर्शक है :

आत्मकथाएँ :

१ आत्मकथा (महात्मा गांधी)
संपूर्ण (अजिल्द) ४ ००
,, संक्षिप्त (अजिल्द) १ ००
२ मेरी कहानी (जवाहरलाल नेहरू)
संपूर्ण ८ ००
" ,, ,, संक्षिप्त २ ५०
३ आत्मकथा (डा. राजेन्द्रप्रसाद) ८ ००

जीवनियां :

१ गांधी की कहानी (लुई फिशर) ४ ००
२ एक आदर्श महिला
(विनायक तिवारी) १ ००
३ लोकमान्य तिलक
(पां. ग. देशपांडे) २ ५०
४ श्रेयार्थी जमनालाल
(हरिभाऊ उपाध्याय) संपूर्ण ६ ५०
" " ,, संक्षिप्त २ ००

संस्मरण-साहित्य :

१ मेरे समकालीन (महात्मा गांधी) ५ ००
२ दक्षिण अफरीका का सत्याग्रह
(महात्मा गांधी) ३ ५०
३ देशसेवकों के संस्मरण (म.गांधी) १ २५
४ अमिट रेखाएँ (सत्यवती मल्लिक) ३ ००
५ एक क्रांतिकारी के संस्मरण
(बनारसीदास चतुर्वेदी) ० ७५
६ मानवता के झरने
(ग.वा.मावलंकर) १ ५०
७ मेरे संस्मरण ,, ,, २ ००
८ मील के पत्थर (रामवृक्ष बेनीपुरी) २ ००
९ मेरी जीवन यात्रा
(जानकीदेवी बजाज) २ ००
१० मैं भूल नहीं सकता
(कैलाशनाथ काटजू) २ ५०
११ विनोबा के साथ सात दिन
(श्रीमन्नारायण) ० ५०
१२ साधना के पथ पर
(हरिभाऊ उपाध्याय) २ ५०
१३ बा, बापू और भाई
(देवदास गांधी) ० ५०
१४ बापू की कारावास कहानी
(सुशीला नैयर) १० ००
१५ बापू के आश्रम में
(हरिभाऊ उपाध्याय) १ ००

इन तथा अन्य पुस्तकों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिये और सत्साहित्य के प्रसार में अपना हाथ बटाने के लिये हमें लिखिये

सस्ता साहित्य मण्डल, (सत्साहित्य के प्रणेता, प्रकाशक और प्रसारक)
कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृषि का विकास

देश के अन्य भागों की तरह उत्तर प्रदेश में भी अधिकांश लोगों की जीविका खेती से चलती है। अतः यह स्वाभाविक है कि प्रदेश के विकास की कोई योजना बनाते समय खेती-बाड़ी के विकास पर समुचित ध्यान दिया जाए। सन् १६५१ में जब पहली पंचवर्षीय योजना बन कर तैयार हुई तो सरकार द्वारा कृषि की उन्नति तथा सामुदायिक विकास कार्य-क्रमों पर सम्पूर्ण धनराशि का लगभग चौथाई भाग खर्च करने के निश्चय का सर्वत्र स्वागत हुआ। जनता ने भी सरकारी सहायता के सहारे खाद्योत्पादन के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनने के लिए कठिन श्रम किया और योजना की अवधि पूरी होने से पहले ही प्रति वर्ष लगभग १० लाख टन अतिरिक्त खाद्योत्पादन का लक्ष्य पूरा कर लिया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भी कृषि की उन्नति के लिए समुचित प्रयास चल रहे हैं। इस बार कृषि तथा सामुदायिक विकास कार्यक्रमों पर पहले की अपेक्षा लगभग दूना धन खर्च करने का निश्चय हुआ है और इसी अनुपात में खाद्योत्पादन का लक्ष्य भी ऊँचा रखा गया है। सन् १६६०-६१ तक वार्षिक खाद्योत्पादन २४ लाख टन बढ़ाने का लक्ष्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए अनेक उपायों का सहारा लिया गया है। उदाहरण के लिए किसानों को सरल शर्तों पर ऋण तथा अच्छी किस्म के बीज, खाद, उर्वरक और कृषि-यन्त्र दिए गए हैं। अब तक ६६७ बीज क्षेत्र स्थापित किए जा चुके हैं तथा १०० और क्षेत्र वर्तमान वित्तीय वर्ष के अन्त तक तैयार हो जायेंगे। नेत्रजन, खाद के वितरण का कार्य भी तीव्र गति से चल रहा है।

इसके साथ-साथ तालाबों को गहरा करने, उनके तल में पाई जाने वाली घास आदि से खाद तैयार करने और उनका खेतों में उपयोग करने तथा खेती की प्रणाली में उपयुक्त परिवर्तन करने के विशेष कार्य-क्रम भी चलाए जा रहे हैं। आशा है इन प्रयत्नों के फलस्वरूप प्रदेश का वार्षिक खाद्योत्पादन निर्धारित लक्ष्य तक बढ़ाया जा सकेगा और सामान्य जनता आर्थिक उन्नति का अनुमान कर सकेगी।

सूचना विभाग : उत्तर प्रदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामू और श्यामू दो सगे भाई,
रामू स्वभाव का कड़वा,
श्यामू शान्त सज्जन,
दोनों का परिवार समृद्ध !

एक दिन रामू ने क्या कुछ कहा,
कि श्यामू भी बेकाबू होगया,
दोनों में मुकदमेबाजी छिड़,
और दोनों बरबाद हो गए !

स्वभाव का मिठास जीवन का वरदान है !
सदा मीठे रहिए !

★

श्रेष्ठ चीनी के निर्माता

गंगा शूगर कारपोरेशन लिमिटेड

देवबन्द :: उत्तरप्रदेश

जनरल मैनेजर—बी० सी० कोहली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़रूरी जानकारी

- प्रकाशन का समय—महीने की पहली तारीख है, पर १५ तारीख तक भी न पहुँचे, तो समझिए कि आपका अङ्क कोई दूसरे सज्जन पढ़ रहे हैं और उसके लिए कार्यालय को कार्ड लिखिए।
- वर्ष भर का मूल्य पाँच रुपये और साधारण प्रति का पचास नये पैसे है।
- लेखकों से प्रार्थना है कि उत्तर या रचना की वापसी के लिए टिकट न भेजें और अपनी प्रत्येक रचना पर अन्त में अपना पूरा नाम-पता अवश्य लिखें।
- एक मास के भीतर ही बुक-पोस्ट से उनकी रचना या स्वीकृति का पत्र उन्हें मिल जाएगा और छपने पर अङ्क निश्चित रूप से सेवा में भेजा जाएगा।
- अस्वीकृत छोटी रचनाएँ वापस नहीं की जातीं। हाँ, बड़े लेख और कहानियाँ, जिनकी नकल करने में दिक्कत होती है, निश्चित रूप से वापस कर दी जाती हैं। 'नयाजीवन' में वे ही रचनाएँ स्थान पाती हैं, जो जीवन को ऊँचा उठाएँ, पर उपदेशक की तरह नहीं, मित्र की तरह—मनोरञ्जक, मार्ग-दर्शक और प्रेरणापूर्ण!
- 'नयाजीवन' धन-साधन पर नहीं, साधना पर जीवित है, इसलिए लेखकों को वह प्यार-मान दे सकता है, धन नहीं।
- ग्राहकों से पत्र-व्यवहार में ग्राहक-संख्या लिखने की आवश्यक प्रार्थना है।
- 'नयाजीवन' में उन चीजों के ही विज्ञापन छपते हैं, जिनसे देश की समृद्धि, स्वास्थ्य, सुरुचि और पूर्णता बढ़े।
- तार का पता विकास प्रेस और फोन नं० १५३ है।

पत्र-व्यवहार का पता

विकास लिमिटेड, सहारनपुर, उ. प्र.

आरम्भ काल – १९५०

नयाजीवन

विचारों का विश्वविद्यालय

अनेक राज्य-सरकारों द्वारा स्वीकृत

जौलाई १९६०

प्रधान संपादक

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

•

प्रबन्ध संपादक—अखिलेश

•

सह-संपादिका—कविता वाशिष्ठ

हमारा काम यह नहीं है कि इस विशाल देश में बसे चन्द दिमाग़ी ऐय्याशों का फालतू समय चैन से काटने के लिए मनोरंजक साहित्य नाम का मैख़ाना हर समय खुला रखें! हमारा काम तो यह है कि इस विशाल देश के कोने-कोने में फैले जन-साधारण के मन में विशृङ्खलित वर्तमान के प्रति विद्रोह और भव्य भविष्यत् के निर्माण की भूख जगाएँ!

•

प्रेस व्यवस्थापक—रामकृष्ण शर्मा

•

प्रकाशक

विकास लिमिटेड
सहारनपुर • उत्तर प्रदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जय भारत — श्री ईशकुमार 'ईश', म्युनिसिपल प्रेस, दिल्ली ३

जाग रहा मैं, जाग रहा हूँ ! — श्री हरवंशराय 'बच्चन'
१३, विलिंगडन क्रिसेन्ट, नई दिल्ली ४

विचार और सम्मति — सम्पादकीय ६

घर की तीन कुंजियाँ;
रहना, सहना, कहना ! — कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ९

मान्य श्री जगजीवनराम के साथ ! — कुमारी ग्रेस आलीवर
विकास लिमिटेड, सहारनपुर १३

खण्डवा की तीर्थ-यात्रा के समय — डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
गोकुलपुरा, आगरा १७

जागृति का अभियान — श्रीमती सुमित्राकुमारी सिन्हा
आल इन्डिया रेडियो, लखनऊ २४

अजी, हम बाराती हैं ! — श्री सन्तोषकुमार जैन
त्रिलोकचन्द कम्पाउन्ड, कोर्ट रोड, सहारनपुर २५

इशारे — श्री कल्पनाथसिंह
जिला नियोजन कार्यालय, बाराबंकी २८

अल्हड़ मानवता के प्रतिनिधि
श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' — कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' २९

खैराती तांगे वाला — श्री माईदयाल जैन
४४५६९, डिप्टीगंज, दिल्ली–६ ३३

अपने पढ़ने के कमरे में — स्तम्भ ३६

पुस्तक-परिचय — श्री मोहनजीतसिंह, जे० के० नगर
जिला बर्दवान ४०

अतापता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जय भारत

श्री ईशकुमार 'ईश'

卐

आओ, आज धरा की मिट्टी में मिलकर जय भारत बोलें !
'हल' से हल कर लें धरती को,
और करें उर्वर परती को,
मानवता की अमर बेल के,
शत सहस्र पत्तों को खोलें,
आओ, आज धरा की मिट्टी में मिलकर जय भारत बोलें !
जन्म-जन्म की पौध लगाएँ,
आधारों के फूल खिलाएँ,
चिर भविष्य का आज सुनहला,
जीवनमय विश्वास सँजोलें,
आओ, आज धरा की मिट्टी में मिलकर जय भारत बोलें !
समय शिलाओं पर लिख जाएँ,
हम धरती की अमर कथाएं,
जो भी वसुधा तल पर आएँ,
अपनी चरण-चाप को तोलें,
आओ, आज धरा की मिट्टी में मिलकर जय भारत बोलें !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाग रहा मैं, जाग रहा हूँ

श्री हरवंशराय 'बच्चन'

卐

अंधकार के काले पंछी,
सुन, पूरब से आने वाली
कंचन-किरणों की झनकार,

मानवता की अमर पुकार ;
जाग रहा मैं, जाग रहा हूँ।

आभा से मत आँख छिपा रे,
दानव भागे, देव पधारे,
रात कटी-जग की देहली के

बदल गए हैं पहरेदार ;
जाग रहा मैं, जाग रहा हूँ।

काली रात, चमकती बिजली,
बरखा रोती, सरिता मचली,
प्रेम तरंगों पर जय पाकर

निश्चय पहुँचेगा उस पार ;
जाग रहा मैं, जाग रहा हूँ।

रावी का है याद किनारा,
याद मुझे है जलियाँ वाला,
याद भीष्म के प्रण-सा मुझको,

किया वहाँ जो कौल-करार ;
जाग रहा मैं, जाग रहा हूँ।

याद मुझे है रघुकुल-रीति,
याद पांडु-पुत्रों की नीति,
जोकि धर्म-सी अटल, समझले,

ओ दुःशासन के परिवार ;
जाग रहा मैं, जाग रहा हूँ।

जो सतवंती, सतगुनधारी,
आज नहीं वह अबला नारी,
दुःशासन-दल द्रुपद-सुता का

नहीं सकेगा चीर उतार ;
जाग रहा मैं, जाग रहा हूँ।

कृष्ण घिरे बृजबालाओं से,
और प्रीति की मालाओं से,
घिरा हुआ मैं, कंस! किसी दिन

होने को तेरा संहार ;
जाग रहा मैं, जाग रहा हूँ।

मिस्र देश ने ली अंगड़ाई,
अफ्रीका ने भुजा उठाई,
नींद कुम्भकर्णी तज करके

लंका में दी है ललकार ;
जाग रहा मैं, जाग रहा हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

बेबसी से कहते थे—"हाँ जी ! यह तो ऐसा ही है ! हम क्या करें ?" वहाँ अब वह चिढ़कर कहते हैं—'यह बहुत दिन चल नहीं सकता जी ! अब तो कुछ करना ही चाहिए ।" यानी पुरुषार्थ वृत्ति कुछ जागने लगी है; लोग निर्लज्ज और बढ़ती अनीति से अब घबराने और बिफरने लगे हैं, हर जगह लोग सोचने लगे हैं कि क्या करना चाहिए ?

मैं डॉक्टरों से, शिक्षकों से, समाज-सेवक-सेविकाओं से, फौजियों से और हर तरह के सरकारी मुलाजिमों और दफ्तरियों से बराबर दरियाफ्त करती रहती हूँ और हर जगह मुझे यही जवाब मिलता है कि लोगों की चेतना अब जागृत हो रही है, लेकिन संसार इस दरजे विषैला बना हुआ है कि उसे सुधारना प्रायः अशक्य-सा प्रतीत होता है। यानी दोनों धाराएँ साथ-साथ बहती नज़र आती हैं, एक पतितपावनी गंगा और दूसरी ज़हरीली और दुर्गन्धित गटर ।

लोग पूछते हैं—"स्त्रियों की निर्लज्जता का यह आलम है कि अब तो हम पुरुष पानी पानी होकर रह जाते हैं। युवकों और विद्यार्थियों का हाल ऐसा है कि भारत का भविष्य सोचते हम खौफ से लरज उठते हैं। इन्सानियत गायब हो रही है और हम जहाँ मुड़ते हैं हमें शैतान की ही भयावनी और विजयोन्मत्त शक्ल नजर आती है। फिर हम समझ नहीं पाते कि आप ऐसी आशा-वादी क्यों बनी हुई हैं ?"

मेरा जवाब बहुत सीधा-सादा होता है—"भई देखिये, यह तमाम कलजुग के वही लक्षण हैं, जो महाभारत में विस्तार से बयान हो चुके हैं और जो कलजुग के अन्त की सूचना देते हैं। मैं ख्वाबे अफ़ियुनी (नशा स्वप्न) नहीं देख रही। मेरी आशा दो अक़ीदों पर निर्भर है : एक कि कोई हालत शाश्वत नहीं होती और बुराई जब एक हद-को पहुंच जाती है, तो वह अपने ही सड़े से खतम होने लगती है। दूसरा कि अन्त में विजय भगवान की ही हो सकती है; और जिसे भगवान ने इन्सान बनाया सो कितने दिन अपने को शैतान बनाए रख सकता है।"

धूम्र पान

लोक-सभा में स्वास्थ्य मंत्री श्री करमरकर ने बताया कि विश्व-स्वास्थ्य-संगठन के अध्ययन दल की खोज से पता चला है कि फेफड़े के कैंसर का मुख्य कारण धूम्रपान—सिगरेट बीड़ी पीना ही है। भारत का कैंसर अनुसन्धान केन्द्र बम्बई भी इस विषय में खोज कर रहा है, पर टाटा मेमोरियल अस्पताल में फेफड़े के कैंसर के जो १ हज़ार ४६० मरीज भर्ती हुए उनके अध्ययन से पता चला है कि धूम्रपान से खाने की नली में कैंसर होजाता है। वहाँ की खोज से यह भी पता चला है कि तमाखू खाने और पीने से मुँह में भी कैंसर होता है।

कैंसर, एक रोग, पर मौत का अग्रदूत, जिसका अभी कोई इलाज नहीं और हम उसे बुलाते हैं धुआँ पी-पीकर, जिसमें कोई स्वाद नहीं और चाहने पर भी जिसे हम पी नहीं सकते। सुई से ऐटम बम तक बनाने वाला इंसान क्या सचमुच पशु ही है !

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हो गया। कहूँ—गुलामी पूरी तरह दूर हो गई, पर आदमी बुरी तरह बिकने लगा है !

इन वर्षों में साइनबोर्ड बड़े-बड़े और सुन्दर बन गए हैं, पर इन्हीं वर्षों में दूकानों के सामान की कीमत कम होगई है ।

इन वर्षों में गधों को खड़े खेत चरने का लाइसेंस मिल गया है, पर इन्हीं वर्षों में घोड़े काठी न मिलने से खाली खड़े हिनहिनाते रहे हैं !

इन वर्षों में दो पंचवर्षीय योजनाएँ पूरी होगई हैं, पर इन्हीं वर्षों में बकवाद का युग समाप्त होकर, उत्पात का युग भी आरंभ होगया है !

तो अपनी प्यारी स्वतन्त्रता की चौदहवीं वर्ष गाँठ मनाते समय स्थिति यह है कि निर्माण और नाश के घोड़े साथ साथ दौड़ रहे हैं और स्थिति चौंका देने वाली है, पर चौंक कर कायर हाथ-पैर ढीले कर देते हैं और बहादुर हाथ पैर कस लेते हैं ।

हम सब यह न भूलें कि हमें युग ने प्रजातन्त्र का महान उपहार दिया है और प्रजातन्त्र का सिद्धान्त है—जैसी प्रजा, वैसा राजा, जैसे हम होंगे, वैसा देश बनेगा, इसलिए नाश के घोड़े को हराकर यदि हम निर्माण के घोड़े को जिताना चाहते हैं, तो हम आज से ही अपने जीवन को उन बुराइयों से मुक्त करलें, जिनका अस्तित्व हम समाज से समाप्त करना चाहते हैं—चौदहवें स्वतंत्रता दिवस की यही मांग है, यही सन्देश है ।

भलाइयाँ उभरेंगी

आज चारों तरफ बुराइयां उभर रही हैं, अनैतिकता छा रही है और आँख खोल कर देखने वाले को डर लगता है कि क्या होने वाला है—इनका अन्त कहाँ होगा ?

कुछ लोग कहते हैं—सरकार के दमन से ही ये बुराइयाँ समाप्त हो सकती हैं, पर कुछ कहते हैं—धार्मिक भावना के पुनर्जागरण से ही इनका शमन होगा । सजग साधिका कुमारी रैहाना तैय्यब जी ने भी इस सम्बन्ध में अपना चिन्तन-अनुभव 'मंगलप्रभात' के द्वारा समाज के सामने रखा है । इस चिन्तन की विशेषता यह है कि उसमें हार्दिकता और बौद्धिकता का मनोरम संगम है; यही कारण है कि वह हमसे विचार की अपील करता है और हमारे मनों में आशा के दीप जलाता है।

रैहाना बहन कहती हैं—"विचार आता है, आज सत्संगों का बाजार जब इतना गरम है और इतने हजारों पर हजारों की मेदनियां उमड़ते समन्दरों की तरह इन सत्संगों की ओर बही जाती हैं, तो फिर दिल्ली के जीवन की आसुरिकता घटती क्यों नहीं नजर आती ? इसकी वजह एक ही सूझती है कि लोगों के संस्कार अन्दर-अन्दर से तो सुधरने लगे हैं, लेकिन बैरूनी हालतों के प्रभाव से संसार इस दरजे बिगड़े हुए हैं कि अपने समाज पर तो क्या, अपने घरानों तक पर यह बढ़ती इनसानियत असर नहीं जमा पाती । फिर भी कुछ-न-कुछ फर्क तो जरूर होता ही होगा ।

मेरे अपने हलके में मैं देख रही हूँ कि लोगों के मानस और विचारों में कितने मौलिक फर्क पड़ने लगे हैं । कुछ भाषा ही बदलने लगी है । जहाँ लोग एक लापरवाह

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार और सम्मति

चौदहवें वर्ष की देहली पर

भारत अपनी नई स्वतन्त्रता के चौदहवें वर्ष में प्रवेश करने जा रहा है। तेरह वर्ष कुछ नहीं होते और तेरह वर्ष बहुत होते हैं। देश में भी इन तेरह वर्षों में बहुत कुछ काम हुआ है और कुछ काम नहीं हुआ; क्योंकि जो होता है, वह बहुत-बहुत है।

हमारे नेताओं की जय; कि इन वर्षों में वे एक ऐसे महान भारत की नींव रखने में समर्थ हुए, जिससे विदेशी अभिभूत हैं, पर हमारे नेता जानें कि इन वर्षों में ही व्यक्ति 'ले' के मामले में इतना भूखा हो उठा है कि अकेले ही पूरे समाज को खा ले और फिर भी डकार न ले और वही व्यक्ति 'दे' के मामले में इतना दीन हो गया है कि हर काम के लिए समाज की ओर-शासन की ओर देखे।

इन वर्षों में हमारे आदर्श इतने ऊँचे उठ गए हैं कि दुनिया नीची हो गई, पर इन्हीं वर्षों में हमारे आचरण इतने नीचे गिर गए हैं कि हम ही उस निचाई को नाप न पाएँ।

इन वर्षों में हज़ारों-लाखों नए मकान बने हैं, जो ऊँचाई, मजबूती और आकार-प्रकार में चमत्कारी हैं, पर इन्हीं वर्षों में दस-बीस-पचास भी नए आदमी नहीं उठे, जो ऊँचाई, मजबूती और आकार-प्रकार में चमत्कारी हों।

इन वर्षों में हज़ारों-सैंकड़ों ऐसे मकान टूट गए, जो पुराने, जर्जर और खतरनाक थे, पर इन्हीं वर्षों में हज़ारों-सैंकड़ों ऐसे मानव भी टूट-बिखर-बिक गए, जो परखे, मजबूत और विश्वसनीय थे!

इन वर्षों में हर चीज़ महंगी हो गई, पर इन्हीं वर्षों में ईमान बेहद सस्ता

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मेरे गोश्रा श्रो' कश्मीर,
देखें मेरे दिल को चीर,
हर न सकेंगे, अब परियों को

जबरन बनके जिन खूँख्वार ;
जाग रहा मैं, जाग रहा हूँ ।

प्रेम पंख से मैंने नापी,
धरती से चन्दा की दूरी,
मेरा प्रेम बदल देगा युग,

नया बनाएगा संसार ;
जाग रहा मैं, जाग रहा हूँ ।

माना आधी - रात, अँधेरा,
किन्तु नहीं, मैं नहीं अकेला,
मेरे पीछे जगमग करते

तारक - दीप हज़ार-हज़ार ;
जाग रहा मैं, जाग रहा हूँ ।

जहाँ लगी हैं मेरी आँखें,
खोल वहाँ से नव-युग पाँखें
गगन चढ़ेगा, मेरी पलकों—

में खुलता ऊषा का द्वार ;
जाग रहा मैं, जाग रहा हूँ ।

अंधकार के काले पंछी,
सुन, पूरब से आने वाली
कंचन - किरणों की झनकार,

मानवता की अमर पुकार ;
जाग रहा मैं, जाग रहा हूँ ।

[श्री संतोखसिंह धीर की पंजाबी कविता का अनुवाद]

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर की तीन कुंजियाँ; रहना, सहना, कहना !

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

卐

घर का आकर्षण संसार का सब से बड़ा आकर्षण है और जिस का घर आकर्षक है, उसे किसी काल्पनिक स्वर्ग के पीछे दौड़ने की जरूरत नहीं; क्योंकि वह तो जीते जी ही स्वर्ग में है, पर प्रश्न यह है कि वह आकर्षक घर है क्या ?

हरेक मनुष्य चाहता है कि उसका घर आकर्षक हो, तो आप भी चाहते होंगे कि आपका घर आकर्षक बने, पर क्या आप जानते हैं कि आकर्षक घर क्या होता है ?

मैं देख रहा हूँ कि आप कुछ झुंझलाए-से हो रहे हैं, पर क्यों, मैंने ऐसी क्या बात कह दी कि आपको झुंझलाना पड़े और यों तिरछी-तनी आँखों से मुझे घूरना पड़े ?

ओह, आप मेरे प्रश्न से झुंझला गए हैं और सोच रहे हैं कि भला यह भी कोई प्रश्न है कि आकर्षक घर क्या होता है ? आपका गरम-गरम उत्तर है—अजी, आकर्षक घर और क्या होता, आकर्षक घर होता है !

मैं जानता हूँ आपका उत्तर ठीक है, पर इतनी बात आप भी मेरी मानलें कि आपका उत्तर वैसा ही ठीक है, जैसा उस दिन माधोराम का था। वह मेरे पास आया और कहने लगा कि मेरा एक खत लिख दो। कार्ड उसके हाथ में था, पेन मैंने अपनी जेब से निकाल लिया और तब पूछा—"कहो भाई माधोराम, किसे लिखा रहे हो खत ?"

बोला—"अजी, और किसे लिखाऊंगा खत, एक बेटा है बुढ़ापे का सहारा, उसे ही लिख दो कि गए हुए कई दिन हो गए; अब जल्दी लौट आए।"

"कहाँ गया है तुम्हारा बेटा ?" मैंने पूछा, तो बोला—"यहाँ से तो हरद्वार गया था, वहाँ से कहाँ गया, यह मुझे मालूम नहीं।"

मैंने झुंझलाकर कहा—"जब तुम्हें यही मालूम नहीं कि तुम्हारा बेटा अब कहाँ है, तो मैं उसे खत कहाँ लिख दूँ ?"

माधोराम पूरे विश्वास से बोला—"हरद्वार से किसी रिश्तेदारी में गया होगा या किसी दोस्त के घर। कहीं न कहीं तो होगा ही; तुम्हें इससे क्या, तुम मेरे बेटे के नाम खत लिख दो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधोराम बूढ़ा है और सभी कहते हैं सठिया गया है, इसलिए उसकी बात छोड़िए, पर जब आप चाहते हैं कि आपका घर आकर्षक हो और यह जानते नहीं कि आकर्षक घर क्या होता है, तो यह बताइए कि आप में और माधोराम में क्या फर्क है? भाई मेरे, यही जानना जरूरी नहीं है कि आकर्षक घर क्या है? यह जानना भी उतना ही जरूरी है कि घर आकर्षक बनता कैसे है?

"अच्छा, तो बताइए कि आकर्षक घर क्या होता है और घर आकर्षक कैसे बनता है?"

आकर्षण का अर्थ सीधा है—बार बार उसे पाने की, पाते रहने की, सदा पाए रहने की इच्छा होना, तो आकर्षक घर वह है, जिस में रहने वालों के मन में यह इच्छा हो कि वे हमेशा वहीं रहें—दूसरे शब्दों में जिस घर से उसके रहने वाले कभी अलग न होना चाहें, वही घर आकर्षक है।

घर में रहने वाले अनेक होते हैं, पर उनमें तीन मुख्य हैं—पति, पत्नी और बालक, तो आकर्षक घर वह है, जिसमें पति-पत्नी और बालकों में सद्भाव है कि वे सदा साथ रहें, एक होकर रहें। जहाँ यह सद्भाव है, वह यदि मामूली झोंपड़ी है, तब भी यह आकर्षक घर है और जहाँ यह सद्भाव नहीं है, वह धनधान्य से भरा महल भी है, तब भी आकर्षक घर नहीं है।

"ठीक है, यह तो अब समझ में आगया है कि आकर्षक घर क्या है, पर अब यह भी बताइए कि आकर्षक घर बनता कैसे है?"

उमीदें कम करो, यह आकर्षक घर का पहला नियम है। पति पत्नी से, पत्नी पति से, मा-बाप बालकों से और बालक मा-बाप से जब बहुत अधिक उमीदें करते हैं, असंभव मांगों की पूर्ति चाहते हैं, तो निराशा होती है और वह निराशा घर के आकर्षण को खाजाती है। लो, यों समझाऊँ मैं आपको कि उमीदें कम करो का अर्थ है कि घर का एक आदमी दूसरे आदमी से सब कुछ न चाहे और इसे आप यों समझें कि हर आदमी की कुछ अपनी आदतें होती हैं, जिन्हें वह बदल नहीं सकता। इन आदतों में कुछ आदतें, तो घर में दूसरों के अनुकूल-नापसन्द—होती हैं पर कुछ प्रतिकूल-पसन्द भी। आकर्षक घर वह है, जिसमें हर आदमी दूसरे की नापसंद आदतों को सहने की आदत डाल लेता है।

बोलचाल की भाषा का एक शब्द आपने सुना होगा—रहन-सहन। इसमें आकर्षक घर की कुंजी छिपी हुई है।

"रहन-सहन शब्द में आकर्षक घर की कुंजी छिपी हुई है? क्या है वह कुंजी? हमें तो कभी वह दिखाई ही नहीं दी!"

खैर, यह कोई बात नहीं कि वह कुंजी अभी तक आपको दिखाई नहीं दी, पर यह बात आवश्यक है कि अब आप उसे देख लें और देख क्या लें, उससे आकर्षक घर का ताला ही जो खोल लें। रहन-सहन के शब्द में छिपी कुंजी है रहना और सहना का जोड़। इसका मतलब है कि जिसे किसी के साथ रहना है वह स्त्री हो या पुरुष, पति हो या पत्नी उसे सहना जरूर पड़ता है। कहना चाहिए कि रहने की स्थिरता सहने की शक्ति पर निर्भर है—जो सह नहीं सकता, वह देर तक किसी के साथ रह भी नहीं सकता, इसलिए आकर्षक घर वह है, जिसमें रहने वाले एक दूसरे की मनपसन्द आदतों का सुख लेते हैं और नापसन्द आदतों को सहने की कला जानते हैं।

"तो क्यों जी, नापसन्द आदतों को सहना भी कोई कला है? चित्र-कला, संगीत-कला, लेखन-कला के नाम तो हमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी सुने थे, पर यह नापसन्द आदतों को सहने की कला क्या चीज़ है ?"

जी हाँ, नापसन्द आदतों को सहना भी एक कला है और आप ही नहीं, पहले मैं भी इसे नहीं जानता था। एक दिन मैं उद्योगपति श्री शान्तिप्रसाद जैन के पास बैठा गपशप कर रहा था। उनका घर एक आकर्षक घर है और आकर्षक घर क्या है, आकर्षक घरों का नमूना है। उनसे मैंने पूछा—घर को आकर्षक बनाने की कुंजी क्या है ?

बोले—"घर को आकर्षक बनाने की कुंजी यही है कि कुछ भूल जाएँ, कुछ याद रखें।"

मैंने उनसे कहा—"बात तो आप ने बहुत मार्के की कही है, पर इसे ज़रा विस्तार से कहें, तो इसका तत्व हाथ लगे।"

कहने लगे—"तत्व यही है कि घर में जो लोग रहते हैं, उनमें ज़्यादा बातें तो ऐसी होती हैं, जो मीठी होती हैं, पर कुछ बातें कड़वी भी होती हैं। अब ज़रूरत इस बात की है कि जो बातें मीठी हैं, उन्हें हम याद रखें और जो बातें कड़वी हैं, उन्हें भूल जाएँ, पर होता यह है कि हम याद रखने की बातों को भूल जाते हैं, और भूल जाने की बातों को याद रखते हैं; बस इस भूल से घर का आकर्षण नष्ट हो जाता है" तो नापसन्द बातों को, नापसन्द आदतों को भूल जाना; यानी सहने की आदत डाल लेना भी एक कला है—और यह कला घर को आकर्षक बनाने में चित्र-कला और संगीत-कला से भी ज़्यादा उपयोगी है।

इंगलैण्ड के बादशाह छठे जार्ज का नाम तो आपने सुना ही होगा। वे रोज भगवान से जो प्रार्थना किया करते थे, वह घर को आकर्षक बनाने में भी पूरी तरह लागू होती है, यह एक अजीब बात है। उनकी प्रार्थना के बोल थे—

* हे भगवान, मुझे शक्ति दो कि मैं उन चीज़ों को बदल डालूँ, जिन्हें बदल सकता हूँ।

* हे भगवान, मुझे शक्ति दो कि मैं उन चीज़ों को सहन कर लूँ, जिन्हें बदल नहीं सकता।

* हे भगवान, मुझे विवेक दो कि मैं बदलने लायक और सहने लायक का ठीक-ठीक निर्णय कर सकूँ!

"प्रार्थना तो यह उत्तम है, पर यह बात समझ में नहीं आई कि इससे आकर्षक घर कैसे बनता है ?"

हर बात ध्यान देने से समझ में आती है और आपका दिमाग़ हवाई जहाज की तरह ऊपर ही ऊपर उड़ता है। भाई मेरे, बात का अर्थ बात की गहराईयों में उतरने से हाथ आता है, तो इस प्रार्थना की गहराई यह है कि जब कोई दो स्त्री पुरुष एक घर में आ बसते हैं, तो उनका यह सोचना भूल है कि उनमें एक के लिए दूसरा कल्पनाओं, सपनों, इच्छाओं के अनुकूल यानी सौ फीसदी मनपसन्द होगा। इस भूल के कारण लाखों हृदय घायल पड़े हैं और जीवन बिखर गए हैं। असल में प्रश्न अनुकूल-मनपसन्द साथी पाने का नहीं, बनाने का है और दूसरे को अपने अनुकूल बनाने का तरीका राजा जार्ज की प्रार्थना में है कि हम कुछ बातों को बदल लें और कुछ को सह लें।

अच्छा तो अब आपकी समझ में मेरी बात आई कि आकर्षक घर वह है, जिसमें रहना; यानी रहने वालों के मन में हमेशा रहने की भावना है और सहना; यानी दूसरे की नापसन्द आदतों को सहने की भी भावना है, पर एक बात और बताऊँ मैं आपको कि आकर्षक घर की एक कुंजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहना और दूसरी सहना है, तो तीसरी कहना है।

"कहना! क्या कहना? यह एक नई पहेली आपने आरम्भ करदी भाई साहब?"

जी, यह कोई पहेली नहीं, यह तो आकर्षक घर का एक महत्वपूर्ण पहलू है! लीजिए, उसे आपको एक उदाहरण से समझाता हूँ—

बाबू बलदेवदास को तो आप जानते हैं।

"कौन बलदेवदास?"

अरे, बलदेवदास को भी आप भूल गए? वे ही हेडमास्टर साहब! पहले एक हाई स्कूल में हेडमास्टर थे, पर आजकल अपना स्कूल चलाते हैं। आप तो जानते ही हैं कि यह कोई आसान काम नहीं है। छह घण्टे पढ़ाना ही पसीने ला देता है, फिर स्कूल का प्रबन्ध। आज ये मास्टर जी रूठ गए, तो कल वे भाग गए। आज इस क्लास में लड़के कम, कल उसमें। इस महीने फरनीचर टूट गया, तो उस महीने मकान के किराये का झंझट-- एक न एक झमेला जान को लगा ही रहता है। स्कूल जाते हैं, तो घबराए हुए-से और लौटते हैं, तो परेशानी से चकनाचूर।

उस दिन वे ऐसी ही हालत में घर पहुँचे और चाय का प्याला मुँह से लगाया ही था कि श्रीमती जी ने आँखें तरेर कर पूछा—"वे चावल तुमने आज भी नहीं भिजवाए, न गुड़ ही भिजवाया, तुम काहे के हेडमास्टर हो; १०० लड़के तुम्हारे मदर्से में पढ़ते हैं, जिसके कान ऐंठो, वही काम करे, पर काम तो तब हो, जब तुम्हें चिन्ता हो। तुमने तो समझ रखा है कि मेरे भीतर खून के कुएँ भरे हैं पिओ, खूब पिओ; जिस दिन मर जाऊँगी, भूल जाओगे मदर्सा चलाना!"

"अच्छा कल भेज देंगे, घण्टा भर तो चैन ले लेने दिया करो।" ठण्डे स्वर में हेडमास्टर साहब ने कहा, तो श्रीमती जी स्वर को और भी ऊँचा कर बोली—"हाँ-हाँ, आपको चैन कहाँ? चैन के लड्डू तो मैं फोड़ती हूँ। जब से इस घर में आई, एक दिन मन का खाया नहीं, पहना नहीं, हाड़ झोंककर सब का पेट भरा। कोई मेम साहब मिलती, तो पता चलता मास्टर साहब को!"

कहते-कहते श्रीमती जी का चेहरा तमतमा उठा और आँखों में आँसू झलक आए—वे धमधम करती उठकर चली गई। मास्टर जी कहने लगे—स्कूल में जाओ, तो हाय हाय, घर में आओ तो हाय हाय; क्या मनहूस ज़िन्दगी है?

अच्छा बताइए, क्या बलदेवदास जी की श्रीमती ने कोई अनुचित—नामुनासिब बात कही थी? घर में सामान न हो, तो वे प्रबन्ध कैसे करें? उन्होंने चावल और गुड़ लाने को ही तो कहा था, पर रहना, सहना के साथ कहना का यही तो तत्व है कि हम क्या कहते हैं, इसकी कोई कीमत नहीं, कीमत इस बात की है कि कब कहते हैं और कैसे कहते हैं? श्रीमती जी आते ही अपनी बात न कहतीं और दूसरी भाषा में कहतीं, तो मास्टरजी में चाय पीकर चावल-गुड़ स्वयं खरीद लाने का नया उत्साह पैदा हो जाता, पर बेवक्त और बेढंग होने के कारण वही बात दुख की जड़ हो गई। इसलिए भाई मेरे, रहना, सहना और कहना की कुंजियाँ अपने पास रखिए और आराम से अपने आकर्षक घर में रहिए!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान्य श्री जगजीवनराम के साथ

कुमारी ग्रेस ऑलीवर

卐

बाबू जी (श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर') अपनी टॉक के लिए नई दिल्ली रेडियो स्टेशन जा रहे थे। मैं भी बालकों की तरह ज़िद करके उनके साथ चली गई। वे टॉक देकर जब स्टूडियो से ड्यूटी-रूम में आए, तो वहाँ के अधिकारी ने कहा—"आपका फोन है।"

"मिलाइए" उन्होंने कहा। फोन मिला—"जी, मैं प्रभाकर हूँ।"

"बाबू जी, नमस्कार। जी, आपके साथ भोजन करके तो बहुत सुख मिलता, पर इस समय एक जगह वचनबद्ध हूँ। हाँ, हाँ, आपने कैसे जाना कि मैं यहाँ पर हूँ?"

"अच्छा! उन्हें मेरा प्रणाम कह दें। मैं कल दस बजे आऊँगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फोन रखकर उन्होंने बताया कि "केंद्रीय रेल-मंत्री श्री जगजीवनराम जी का फोन था। उनकी पत्नी ने टॉक सुनकर उन्हें सूचना दी, तो उन्होंने फोन किया कि आजाओ साथ ही भोजन करेंगे।"

आज तक मेरे लिए केन्द्रीय मन्त्री फरिश्ते के समान कल्पना के ही विषय थे। मुझे अजीब-सा लगा कि उन्हें बाबूजी जैसे साधक का इतना ध्यान-मान है कि स्वयं फोन किया। मेरे मन में एक लालसा जाग उठी, पर क्या उसकी पूर्ति सम्भव है? मन ही मन उत्तर मिला—असम्भव है। फिर भी बाबू जी से पूछा ही—"बाबू जी, क्या आपके साथ मैं भी चल सकती हूँ कल?"

"जरूर चलना।" अपने स्वाभाविक स्वर में उन्होंने कहा। फिर भी झिझक की दीवार खड़ी रही—क्या उन्हें बुरा न लगेगा? बाबू जी बोले—"अरी, तुझे वे अपने बाबू जी से भी अधिक अपने लगेंगे। चिन्ता न कर।"

मुझे सोचने और कल्पना की उड़ान में उड़ने का मसाला मिल गया था रातभर के लिए। सचमुच मैं सोचती रही कि श्री जगजीवनराम जी बहुत रौबदाब के तेजवान व्यक्ति होंगे। कुछ बड़प्पन का बोझ होगा, तो कुछ अभिमान भी और फिर वे बड़ी शान से मिलेंगे। खैर, दूसरे दिन दस बजे बाबू जी और मैं उनकी कोठी पर पहुँचे। वे उस रोज़ कुछ अस्वस्थ थे। उनके सचिव द्वारा बाबू जी ने सूचना भिजवाई। उन्होंने लौट कर बताया कि हमें वहीं बुलाया है।

हम लोग कमरे में पहुँचे। मेरी नज़र एक ही क्षण में कमरे का निरीक्षण कर गई। अत्यन्त सादा कमरा। आश्चर्य तो मुझे उस समय हुआ कि जब मेरी आँख माननीय श्री जगजीवनराम जी तथा उनकी पत्नी पर पहुँची। वे अत्यन्त सादे खादी के वस्त्रों में थे। देखते ही खड़े हो गए और अत्यन्त विनम्रतापूर्वक झुक कर उन्होंने प्रणाम किया।

अब मेरे सामने दो बाबू जी थे। एक तो अपने बाबू जी यानी प्रभाकर जी, दूसरे बाबू जी के बाबू जी श्री जगजीवनराम जी—दोनों एक दूसरे के प्यारे और प्रसंशक। दोनों ने अतीत के पन्ने उलटने शुरू किए और न जाने कहाँ-कहाँ की बातें निकल पड़ीं।

प्रभाकर जी ने कुछ सख्त शब्दों में कहा—"बाबू जी, मन्दिर-प्रवेश-आंदोलन में आप अभियान से काम क्यों नहीं लेते? आज़ाद भारत के इस युग में प्रत्येक को समानता का अधिकार प्राप्त है, तो हम अपना अधिकार बलपूर्वक क्यों न प्राप्त करें?"

मैंने देखा कि श्री जगजीवनराम जी अब भी उसी तरह शान्त थे। उनके बोल भी उसी तरह मीठे थे। बोले—"प्रभाकर जी, वे (कट्टरपंथी) लोग अपनी स्त्रियों को मन्दिर के सामने लिटा देते हैं। उनके ऊपर से हमारा जाना क्या उचित है? मानवता और पशुता का प्रश्न खड़ा होता है। फिर प्रभाकर जी, हम मानवता का गला तो घोंट नहीं सकते; इसलिए सत्याग्रहियों को वापस लौटा लेते हैं।"

प्रभाकर जी उसी तरह बोले—"तब तो यह मुहम्मद गज़नवी का गायों वाला हाल हो गया।" वे अब भी उसी तरह सरलता से बोल रहे थे—"हाँ, यही समझिए।" मैं सोच रही थी कि इनके लिए मनुष्यता अधिकार से बड़ी है; यानी ये मंत्री से अधिक और पहले मनुष्य हैं।

श्री जगजीवनराम जी ने अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमती जी की ओर देखा और बोले—"अरे, इनका कुछ स्वागत तो करो।"

श्रीमती जगजीवनराम मुस्कराहट के साथ बोलीं—"पहले बातें तो सुन लूँ। स्वागत तो फूल-पत्ती से हो ही जाएगा।"

मैंने सोचा, अब ये घण्टी बजाएँगी; क्योंकि बड़े आदमियों के तो चारों ओर नौकर रहते ही हैं, पर मैं अधिक सोच भी न पाई थी कि श्रीमती जगजीवनराम उठीं और नंगे पैर चल दीं। मैंने सोचा, अब जो भी काम होगा वह नौकर ही करेगा, पर थोड़ी देर में श्रीमती जी लौटीं, तो स्वयं फलों की तश्तरी लिए। उफ़! मेरे विचारों की अनुचित दौड़ को कैसा झाँपड़ लगा, मैं कितनी विह्वल हो उठी, पर मेरा मन और भी गद्‌गद्‌ हुआ, जब कि उन्होंने स्वयं अपने हाथों से फलों को छील कर खिलाया।

बाहर के कमरे से अन्दर का कुछ भाग दिखाई पड़ रहा था। मेरी नज़रें वहाँ तक पहुँची, तो देखा कि एक बूढ़ी स्त्री का चित्र लगा था। मैंने सोचा, सम्भवतः यह जगजीवनराम जी की माता का चित्र होगा। शीघ्र ही मेरी समस्या का हल मुझे मिल गया। एक बूढ़ी स्त्री लकड़ी के सहारे कमरे में आई। उन्हें देखते ही श्रीमती जगजीवनराम उठीं और बड़ी फुर्ती से उनके पास पहुँच, उन्हें सहारा देकर कुर्सी पर बैठा दिया। प्रभाकर जी और जगजीवनराम जी की बातचीत चल रही थी।

मेरे कानों ने सुना—"मा, दवा पीलो।" आग्रहपूर्वक श्रीमती जगजीवनराम कह रहीं थीं। बूढ़ी मा अपने बुढ़ापे और बीमारी के कारण बोझिल शब्दों में बोलीं—"नहीं बेटा, तुम बातें करो, मैं फिर पी लूँगी।" श्रीमती जगजीवनराम फिर उसी प्यार एवं दुलार और आग्रह के स्वर में बोलीं—"पी लो मा, वरना फिर खाँसी चलेगी और परेशान हो जाओगी।" फिर वे बड़ी शीघ्रता से दवा ले आईं और मा के होंठ पर प्याला लगा दिया। मुझे यशोदा और कृष्ण की पवित्र ममता का स्मरण हो आया। पारिवारिक प्रेम की इस पवित्रता ने मेरे मन को पिघला दिया और मैं अपने हर्ष भरे आँसू रोकने का प्रयत्न करने लगी।

श्री जगजीवनराम जी कह रहे थे—"यह मन्दिर-प्रवेश का ही नहीं, यह तो जातिवाद का प्रश्न है। यह हमारे जीवन और संस्कारों में इस तरह समा गया है कि इसका हल होना सुगम नहीं जान पड़ता। जब तक यह जातिवाद जड़ पकड़े है, हम कितने भी आगे बढ़ जाएँ, फिर भी पीछे ही रह जाएँगे; क्योंकि हमारे बाहरी रूप बदलने से काम नहीं चलता, यह तो हमारी आत्माओं को बदलने का प्रश्न है। इसके लिए एक बड़ी क्रांति की आवश्यकता है और वह क्रांति है जातिवाद का नाश। मैं सोचता हूँ, जिस दिन यह नाश होगा, वह हमारे देश में सब से बड़ा दिन होगा और मेरा तो खयाल है कि संसार भर में उससे बड़ी क्रांति न हुई, न भविष्य में ही होगी।"

ज़रा रुककर वे बोले—"इतनी बड़ी क्रांति हम साधारण कामों से नहीं कर सकते। इसके लिए हमें लम्बे समय तक कठोर साधना करनी पड़ेगी।"

मैं सोच रही थी कि श्री जगजीवनराम जी एक साधारण आन्दोलनकारी नेता नहीं हैं। वे तो उन थोड़े-से समाज-निर्माताओं में हैं, जिनके दिमाग में नए समाज का एक स्पष्ट नमूना है। अभी तक मैं उनकी सरलता को ही सोच रही थी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर अब उनकी महानता का भी एक चित्र मेरे सामने आ गया था।

बातों ही बातों में प्रभाकर जी ने फिर कहा—"देहरादून में उस दिन आपका भाषण खूब जमा।" वे हँसकर बोले—"वह हमारी परीक्षा का दिन था।"

मैंने बातों से जाना कि वहाँ कांग्रेस महा समिति का अधिवेशन था और उस दिन पंडित जवाहरलाल नेहरू का सार्वजनिक भाषण था। भीड़ अपार थी और प्रश्न यह था कि नेहरू जी के भाषण के बाद जलसा समाप्त हो या कोई और भी बोले? नेहरू जी को भाषण देते ही चले जाना था। इसलिए सब की राय यह थी कि उनके मंच से हटते ही जलसा उखड़ जाएगा और किसी का भी भाषण नहीं जमेगा, पर श्री जगजीवनराम जी बोलने को तैयार होगए। नेहरू जी ने भाषण समाप्त करके बाबू जी से कहा कि आप बोलना आरम्भ कर दें। जब आपका भाषण जम जाएगा, तो मैं धीरे से चला जाऊँगा, पर बाबू जी ने उन्हें नहीं रोका और उनके जाने पर जब भीड़ उखड़ी-उखड़ी होगई, तो उन्होंने बोलना शुरू किया और जलसा पूरी तरह जम गया, कोई उठकर नहीं गया। इस संस्मरण में बाबू जी के आत्म-बल, आत्म-विश्वास, साहस और प्रभाव का एक भावपूर्ण चित्र मुझे मिला।

भाषणों की बात चली, तो श्री जगजीवनराम जी बोले—"भाषण एक कला है और इसे सीखने के लिए देश के साधारण कार्यकर्ताओं के पास जाना चाहिए; क्योंकि वे जनसाधारण में बोलते हैं। एक बार मैं एक जलसे में गया, तो एक देहाती कार्यकर्ता भाषण दे रहे थे। मुझे देखकर वे बैठने लगे; तो मैंने उनसे भाषण जारी रखने का आग्रह किया। उन्होंने भाषण में कहा कि कुछ लोग कहते हैं कि देश में कुछ काम नहीं हुआ। इसे आप यों समझिए कि एक बाल्टी में पानी भरा है और उसका शरबत बनाना है। एक आदमी उसमें एक मुट्ठी चीनी डालता है, फिर दूसरी मुट्ठी, फिर तीसरी मुट्ठी। अब बताइए शरबत बना या नहीं? पूरा शरबत बनाने के लिए छह मुट्ठी चीनी चाहिए। इस हिसाब से कहें कि पूरा शरबत नहीं बना, पर आधी चीनी पड़ चुकी है, इसलिए हम यह तो नहीं कह सकते कि बिल्कुल फीका पानी है। यही हाल देश का है कि बहुत-सा काम हो गया है, बहुत-सा हो रहा है।"

वे अस्वस्थ थे, हम चले आए, पर मैं रास्ते भर उन्हीं की बातों के स्मरण में डूबी सोचती रही कि एक देहाती कार्यकर्ता को इतना मान देना और उसकी बात पर इतना ध्यान देना साधारण गुण नहीं है और मान्य श्री जगजीवनराम जी अपने इसी असाधारण गुण के कारण ही महान भारत के जन नेता हो पाए हैं। उनके निकट मैंने जो क्षण बिताए, वे मेरे लिए हमेशा को तीर्थयात्रा के क्षण हो गए!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

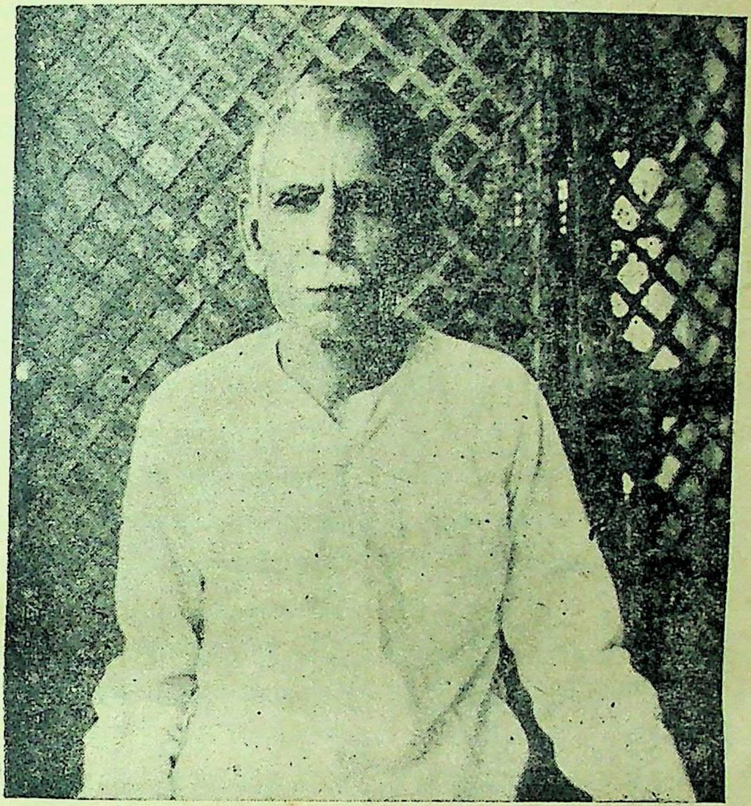

खण्डवा की तीर्थयात्रा के समय

डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

◆

[१]

सन् १९५२ में दिसंबर की छुट्टियाँ हुई, तो अचानक विचार आया कि क्यों न खंडवा की तीर्थ-यात्रा की जाय और बस मैं २८ दिसम्बर को प्रातःकाल २ बजे बंबई एक्सप्रेस में सवार हो, उसी दिन सायंकाल ५ बजे खंडवा पहुँच गया।

चतुर्वेदी जी एक पलंग पर तकिए के सहारे बैठे थे। मैं उनके चरण छू कर एक कुर्सी पर बैठ गया। वह कमरा, जिसमें वे बराबर पलँग पर तकिए के सहारे बैठे रहते हैं और रात को सो भी जाते हैं, अधिक बड़ा नहीं है। उसमें दो बड़ी-बड़ी अलमारियाँ हैं, जिनमें आवश्यक पुस्तकें और अन्य सामग्री रखी हैं। एक कोने में 'शैल्फ' में वे गुजराती, मराठी, अँग्रेजी, हिन्दी संस्कृत आदि भाषाओं की पुस्तकें हैं, जिनका अध्ययन वे बहुधा करते रहते हैं। एक जाली की छोटी-सी अलमारी में दवा की शीशियाँ रखी हैं। इनका उपयोग वे दिन में कई बार करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र उस कमरे में केवल चार हैं। एक नर्मदा के भेड़ाघाट का है। दूसरा महात्मा गांधीजी का है। यह आदमकद तैल-चित्र है। शेष दो फोटो हैं, जिनमें एक कवि की पूज्या माताजी का और दूसरा स्वयं कवि का, जिसमें वह अपने भाई के एक पुत्र के साथ हैं। मुझे लगा-कि चारों चित्र कवि की आत्मा की प्यास को बुझाने के लिए लगे हैं। यह भेड़ाघाट तो कवि को बचपन ही से प्रिय रहा है और उसके सौंदर्य का वर्णन करते-करते आज भी वे आत्म-विभोर हो जाते हैं। महात्मा जी के व्रत पर उनका जीवन ही देश की बलि चढ़ चुका है, माताजी के प्रति उनकी अपार श्रद्धा है और शिशु उनके खिलौने हैं। वे बराबर इसी कमरे में रहते हैं और यहीं आगंतुकों से मिलते हैं। केवल खाना खाने के लिए घर में जाते हैं।

मैंने चरण-स्पर्श करने के कुछ देर बाद उनके स्वास्थ्य के संबंध में पूछा, तो कहने लगे "मुझे सर्दियाँ बड़ी कष्टप्रद होती हैं, इसलिए मैं सर्दी के मौसम में कहीं नहीं जाता। अभी-अभी इन्फ्लूएँजा होकर चुका है।"

इस समय जो बातचीत हुई, वह गद्य-काव्य को लेकर हुई। 'साहित्य-देवता' के नाते वे हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ गद्यकाव्य-लेखकों में हैं और मैं गद्यकाव्य पर खोज कर रहा था। इसलिए, इस विषय पर जब उनके विचार जानने की अभिलाषा मैंने प्रकट की, तब उन्होंने कहा—'मैं गद्यकाव्य नाम की चीज नहीं मानता। मैंने तो जो कुछ गद्य में लिखा है और जिसे आप लोग गद्यकाव्य कहते हैं, वह मेरे निकट 'भाव की भाषा' है और मैं उसे इसी नाम से पुकारता हूँ। यह भाव की भाषा मुझे कैसे मिली, इसकी भी एक कहानी है। हुआ यह कि मैं आरम्भ ही से इस बात की तलाश में रहा कि कोई बहुत अच्छा गद्य मिले। बात यह है कि हमारा घर राधावल्लभ सम्प्रदाय का है। इस सम्प्रदाय के आचार्य हित हरिवंश हैं। इस सम्प्रदाय में राधादेवी कृष्ण की प्रथम सेविका है। राधावल्लभीय और कबीर, दो ही ऐसे सम्प्रदाय हैं, जिनका जन्म हिन्दी कविता से हुआ। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र राधावल्लभीय सम्प्रदाय के मानने वाले थे। इस सम्प्रदाय की मान्यता होने से हमारे यहाँ पाँच वैष्णव भजन गाए बिना भोजन नहीं मिलता था। यह अनिवार्य था। इसका फल यह हुआ कि क्राँति-युग में फरारी के दिनों में किसी जंगल में यदि किसी गौंड के यहाँ रोटी खाई, तब भी पाँच पद अवश्य गाए गए। उनमें एक चाव-सा रहा।

भाषा में यह बात इस प्रकार आई कि मुझे भोपाल राज्य में नादनेर गाँव में संस्कृत पढ़ाई जाती थी। अध्यापक थे मेरे बाबा (ताऊ जी)। इनमें प्रेम तो कम था, पर अध्यापक की प्रखरता बहुत थी। बड़े कड़े थे। उनका कहना था—संस्कृत पढ़ो, पर हिन्दी नहीं।' उस समय मेरी अवस्था १२-१३ वर्ष की थी। प्रायमरी पास करके गया था। उन्होंने हिन्दी पढ़ने पर तो रोक लगाई, पर मुझे मन्दिर-पूजा का अधिकार दे दिया। मन्दिर में मूर्ति के ऊपर का भाग खाली था, ताकि कोई मूर्ति के ऊपर पैर रखकर न जा सके। शेष दुछत्ती में एक तांबे की परात में बहुत से किताबों के बस्ते रखे थे। मैंने एक दिन दुछत्ती में पहुँचने के लिए रस्सी बाँधी और ऊपर चढ़ गया। जल्दी में एक पुस्तक हाथ लगी—लल्लूलाल जी का 'प्रेमसागर'। उसे लेकर मैं नीचे उतर आया और बस्ते ज्यों के त्यों जमा दिए।

पुस्तक तो ले आया, पर पढ़ूँ कैसे? समस्या का समाधान खोजा, तो ज्वार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करब से भरी एक बैलगाड़ी म छिपकर पढ़ने लगा। पुस्तक इसी में छिपा देता था। एक दिन मथुरा-गमन का प्रसंग आने पर मेरी आँखों में आँसू छलछला आए। मैं कह नहीं सकता, मेरी क्या दशा हुई। आज जब मैं अपने उस गद्य को देखता हूँ, जिसे लोग गद्यकाव्य कहते हैं, तब पाता हूँ, कि मेरे गद्यकाव्य का जनक 'प्रेमसागर' है और इस आधार पर मैं कह सकता हूँ कि हिन्दी को, गद्यकाव्य का जन्म देने में लल्लूलाल जी का पहला हाथ है।

इस प्रकार आगरा ही से पहले-पहल गद्यकाव्य का जन्म हुआ। जब 'प्रभा' पत्रिका निकलती थी, तब आगरा के ऋषीश्वरनाथ भट्ट और ब्रजनाथ गोस्वामी उसमें लिखा करते थे। मैंने उनसे लल्लूलाल जी के घर का चित्र मँगाया था। यद्यपि पिता जी हिन्दी के अध्यापक थे और घर पर तुलसी-कृत रामायण थी, तथापि उस दिन चोरी से 'प्रेमसागर' पढ़ने में जो आनन्द मिला, वह अपूर्व था।

दूसरा धक्का मुझे स्वामी रामतीर्थ की शैली ने दिया। उनके एक-एक वाक्य में अनन्त बलशाली प्रयोग हैं। उन्हें मैंने अंग्रेजी में पढ़ा। फिर भी मुझे लल्लूलाल जी की तरह रामतीर्थ भी परम वैष्णव हैं, यही लगा।

तीसरा हिन्दी गद्यकाव्य-लेखक मैं पूर्ण-सिंह को मानता हूँ। 'सरस्वती' में उनकी 'नयनों की गंगा' पढ़ी, तो मैंने कहा कि रामतीर्थ के शिष्य से यही आशा की जा सकती है।

राय कृष्णदास जी ने जब लिखा, तब बड़ा प्यारा लगा। मैं तो जीवन की सार्थक वस्तुओं का उपासक था। एक आदमी और पसन्द आया। वह था लाला हरदयाल। तर्क के अपरिमित जोर में यह आदमी धर्म का सन्मार्ग छोड़ गया; बाकी भाषा वही है, जो रामतीर्थ की देन है।"

इसी बीच एक शिशु ने आकर अपने खिलौने उनको दिखाए। वे यह चर्चा बन्द कर उसको समग्र भाव से खिलाने लगे और उसकी सन्तुष्टि के बाद बोले—"मुझे बंगला नहीं आती। मैंने जो गद्यकाव्य लिखे हैं, वे मेरी अपनी ही उमंग हैं। सन् १९१३ की रामनवमी को मैंने 'जियो और जीने दो'—नामक प्रथम गद्यकाव्य लिखा था। मैं अपने छोटे-छोटे गद्यखण्डों में किसी प्रभु के पास नहीं, किसी प्रिय के पास पहुंचना चाहता हूँ। मेरे लिए प्रभु और प्रिय में कोई अन्तर नहीं है। इसीलिए तो मैंने देश को भी कभी राधा और कभी कृष्ण मानकर उनकी आराधना की है।"

"तो क्या आप अपने 'वैष्णववाद' को क्रांति का प्रेरक मानते हैं?" मैंने पूछा।

उन्होंने कहा—"अवश्य। क्रांति मेरे वैष्णववाद से दूर नहीं है। 'वैष्णविज्म' शास्त्रीय धार्मिक जीवन के विरुद्ध विद्रोह था। शास्त्र का ईश्वर शेषनाग की गोद में बैठकर लक्ष्मी से पैर दबवाने का आदी था। यह संघर्ष है, जिसका मूल है ईश्वर। उसे ईश्वरत्व से उतार कर मजदूरी में लगाना है। वही ईश्वर धनुष-बाण से तुलसी की कुटिया रखाता है। मैंने अपने नारायण से सम्पूर्ण देश की कुटिया छववाली और जो देश बना, उसे नारायण मानने लगा।"

जब मैंने कहा कि यह तो आपकी एक मौलिक सूझ है, तब वे कहने लगे—"जिसे आप मौलिकता कहते हैं, वह मेरी लाचारियों का नाम है। मुझे देश की सेवा करनी थी। उसके लिए लेखनी ही का सहारा था, इसलिए उस समय यह सोचना आवश्यक था कि सतह पर से इतनी ऊँची उठी हुई चीज लिखूँ कि किसी पर संकट न बरस जाए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९२० में एक व्यक्ति के लिए लिखा था—

फिसल जाऊँगा, ललचा रहे,
तुम्हारी आज्ञा है मत हटो।
लिए वे दन्ड-भेद कस रहे
और तुम कहते हो मर मिटो।
आपदाओं के जीवनप्राण,
विवश करते मुझको भगवान!
जहाँ खुल पड़ती जरा जबान,
बनाते काँटोंवाला स्थान।
पाप से मिलती हो, तो देव,
नहीं है देश-भक्ति की चाह;
कहो, आज्ञा दो कैसे बढ़ूँ,
बताओ परम मुक्ति की राह।

इन पंक्तियों को सुनाने के बाद वे सहज भाव से बोले—"अब ७२ वर्ष की अवस्था में मुझे यह कहने का अधिकार हो कि ऐसे अज्ञात की देश में ज्वाला जलाने के लिए प्रस्तुत करने का अभ्यास किसी को था ही नहीं, तो अनुचित नहीं है। अभ्यास कदाचित् किसी को किसी भाषा में नहीं था। सावरकर को एक कविता के ऊपर काला पानी होने की बात सुनी थी।

सत्याग्रह से इस भावना में जो परिवर्तन आया, उसका आभास इन पंक्तियों से मिल सकता है—

दो आज्ञा, अंदर से पा लूँ,
तंग जगह में करदो बंद।
भूख और एकान्त-चिंतना,
दोनों का लूटूँ आनन्द।
वे हथकड़ियाँ, मृदुल बेड़ियाँ,
बनी कोट कोड़े स्वच्छंद।
देने में तुमको बल देवें,
इन सबके हित करुणानंद॥

उस स्थिति में मैं सबको ले जाकर प्रभु के सामने खड़ा कर देना चाहता था। आनंद मठ' ही का आदर्श यहाँ पूर्णरूप से आया है। हमारी प्रार्थना उन दिनों जेल में यह होती थी—

माधव दिवाने हावभाव पै बिकाने,
अब कोऊ चहै निंदै चहै बन्दै काह परवाह।
वौरन ने बातें जनि कीजौ नित आइआइ,
ज्ञ न-ध्यान खान-पान काहू की यहाँ न चाह।
भोगन के व्यूह तुम्हें भोगनों हराम भयो,
दुख की सराह यहाँ चाहिये सदा ही आह।
विपदा जो टूटै कोई सब सुख लूटै,
मनमोहन न छूटै तो कराह भी सदा सराह॥

यह मूल भावना है। जब खड़ी बोली में लिखने लगा, तब मैंने कुछ खो दिया। बहुत खोया है। पाया है केवल बलिदान का आवेग। हाँ, मैं यह अवश्य मानता रहा हूँ कि खुला लिखने से काव्य का सौष्ठव जाता रहता है और माधुर्य पर देश का उत्तरदायित्व है। शैली की दृष्टि से 'वंदेमातरम्' मेरा आदर्श है, जिसमें सब चीजें आ जाती हैं।"

"तब तो ऐसा लगता है कि आप बचपन ही से असाधारण प्रतिभा लेकर पैदा हुए हैं?" मैंने सहज भाव से कह दिया।

बिना सकोच के अपने बचपन का परिचय देते हुए वे बोले—"बचपन में मैं शरारती बहुत था। उन दिनों बुआ आती थी और महीनों रहती थी। प्रभाती गाती थी। मैं लिहाफ ओढ़े माया बहन के साथ सोता रहता था। उनकी प्रभाती 'जागिए ब्रजराज कुँवर भोर भयो प्यारे' से आरंभ होती थी। एक दिन मैंने उनके स्थायी और अतरे को बदल कर लेटे-ही-लेटे गाना शुरू किया। 'जगकर तुम चरो घास, घर की अब छोड़ो आस—भोर भयो प्यारे'। काका घर पर थे। इस पर दो लातें पड़ीं, लेकिन यही मेरी पहली कविता थी वैसे पिताजी मेरी शरारत से सुख पाते थे और कभी नहीं डाटते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी दूसरी रचना नर-काव्य है। हुआ यह कि बालम भट्ट नाम के एक सज्जन 'अमर कोश' पढ़ाते थे। वे लड़कों को लकड़ी लाने के लिए जंगल में ले जाते थे। पिताजी को यह पसंद नहीं था, पर मैं इसमें शरारत का मौका पा लेता था। इसलिए चला जाता था। एक दिन बालम भट्ट हम सबको नदी-किनारे ले-पहुँचे और बाटियाँ बनने लगीं। सब कुछ तैयारी होगई, पर देखा तो नमक नहीं। दो लड़के नमक लेने भेजे गए, पर वे बड़ी देर तक लौटकर ही नहीं आए। मुझे उस समय तुकबंदी की सूझी और ये पंक्तियाँ गुनगुनाने लगा—

बालम भट्ट के तीन छोकरे,
दो बाजार में जा सटके,
नमक - बिन अटके,
बालम भटके।

न जाने कैसे बालम भट्ट ने यह सुन लिया। पूरा भरा हुआ घड़ा मेरे ऊपर उलट दिया। दो तमाचे जड़े और ऊपर से पिताजी से भी शिकायत की—'गुरुजी, तुम्हारा लड़का बड़ा चांडाल है। मेरे ऊपर गीत बना दिया और पिटा।"

तीसरी घटना मेरे फूफा के यहाँ की है, फूफा के बड़े भाई हमारे सामने ही रहते हैं, बीच में केवल सड़क थी। उनकी लड़की द्रौपदी दस वर्ष की थी और मैं बारह वर्ष का। पास में ही हनुमान जी का मंदिर था। मैंने उस पर कील से एक 'संमन' लिख कर लगा दिया। उसे काशीराम नामक भाट ने पढ़ लिया। चट से द्रौपदी के पिता धनीराम जी से जाकर बोले—"काका, तेरी तो जड़ से काट ली"

'कौन ने काटली रे?'
'तेरे भाई के भतीजे ने!'

धनीराम ने लट्ठ उठाया और मुझे मारने दौड़े। मैं भागा और खेतों में जाकर छिप गया। उस पर मैंने फिर एक तुकबंदी लिखी।

धनीराम ने पोली पाई,
उसमें से निकली द्रौपदीबाई।
द्रौपदी बाई ने बिछाई खाट,
उस पर बैठा काशी भाट।
काशी भाट ने काटी जामन,
उस में से निकला बैजू बामन।

५० वर्ष की उम्र में सोचने लगा था कि इस चापल्य ही में शायद वे सब प्रवृत्तियाँ मौजूद थीं, जो परिस्थितियाँ पाती गईं और विकसित या अविकसित होती गईं।"

"क्या आपने अध्यापकी की है?" मैंने पूछा।

"बिलकुल" उन्होंने कहा "मैं साधारण-स्थिति का व्यक्ति हूँ। पिताजी अध्यापक थे। मैंने भी मिडिल पास कर नार्मल में दाखिला लिया और अध्यापक बना, लेकिन अध्यापक होते हुए भी मेरे साहित्यिक और राजनैतिक कार्य बराबर चलते रहे। जब मैं अध्यापक था, तब भी मेरी विचित्र प्रकृति मुझ से नाना प्रकार की भावुकता का प्रदर्शन कराती रहती थी। उसका एक ही उदाहरण दूँगा कि मैं सफल अध्यापक था, पर संध्या के समय एकांत में चला जाता था और एक छोटे पेड़ को अपना कोट पहना कर तथा उसे अपना साफा बाँधकर कहता था—"बड़े अच्छे लगते हो प्यारे!" और घंटों बैठा उसे देखता रहता था। जब समाधि भंग होती थी, तब अपने कपड़े उससे उतारकर पहनता था और चला जाता था।"

"आप राजनीति में कैसे आए?" मैंने पूछा और प्रसंग बदला।

वे बोले—"इसका कारण श्री माधवराव सप्रे थे। वे मुझे बहुत प्यार करते थे और लोकमान्य तिलक से प्रभावित थे। बाद में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे क्रांतिकारी होते हुए भी गांधीवाद से प्रभावित रहे। वे ही मुझे क्रांतिकारी से गांधीवादी बना गए। वैसे एक बार मैंने दशाश्वमेध घाट पर गंगाजल और गीता हाथ में लेकर देश पर बलिदान होने की प्रतिज्ञा की थी। सन् १९१३-१४ के अक्तूबर में लखनऊ कांग्रेस में गणेश जी (श्रद्धेय गणेशशंकर विद्यार्थी) भी मिले। वे भी क्रांतिकारियों के साथ संबद्ध थे। उनके भेजे यू. पी. के क्रांतिकारी मेरे यहां खंडवा में रहते थे। गणेशजी के संपर्क ही से राजनीति और साहित्य दोनों एक साथ मेरे जीवन के अंग होगए। सार्वजनिक जीवन में आकर मैंने अपने क्रांतिपथ को साहित्य के माध्यम से व्यक्त करना प्रारंभ किया। गणेशजी ने ही सबसे पहले मेरी रचनाएँ छापना शुरू किया। इधर सप्रेजी ने इस प्रांत के व्यक्तियों को संस्थाओं के निर्माण में लगाया। सप्रेजी का दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक था, गणेशजी का बंधुत्वपूर्ण। पत्नी की मृत्यु पर स्वयं गणेशजी आए और मुझे लेगए। उन्होंने मुझसे इस दुःख को भुलाने का आग्रह किया। पत्नी की मृत्यु पर मैंने बहुत लिखा। एक रचना बहुत करुण थी, जिसका प्रकाशन गणेशजी ने नहीं करने दिया। यों मैंने जीवन से प्रभावित होकर ही लिखा है। यह 'एकेडेमिक' दिशा है, जो मेरी पढ़ने-लिखने की प्रवृत्ति में से आ गई। कलकत्ता जाऊँ, तो इम्पीरियल लाइब्रेरी में और बंबई जाऊँ, तो पेटिट इन्स्टीट्यूट में समय गुजारता हूँ। मैं जीवन को उसकी सूर्ति मानता हूँ और रचना को उसकी कीर्ति, अतः संघर्ष में जब तक जीवन नहीं जागता, तब तक लिखने की कभी इच्छा नहीं होती। जीवन जाग उठता है, तब लिखने का न्योता नहीं देना पड़ता। यह मेरा बल नहीं है, मेरी भयंकर कमजोरी भी है।"

उन्होंने कुछ विराम लिया और मैंने उनके दांपत्य जीवन के संबंध में कुछ जानने की जिज्ञासा प्रकट की, जिसे उन्होंने इस प्रकार शांत करने की चेष्टा की—"मेरी शादी चौदह साल की उम्र में हुई थी। पत्नी तब दस वर्ष की थी, लेकिन संघर्षों ने पत्नी को 'टी. बी.' का शिकार बना दिया। मैं उसे बलवर्धक भोजन न दे सका और न उचित इलाज ही करा सका। उसके बाद दूसरी शादी के लिए भी लोगों ने ज़ोर दिया, लेकिन मैं सदा यही कहता रहा कि शादी से उस साथी को कहां से लाएँगे। एक बार स्वीकृति दे भी दी, तो तीसरे दिन गणेशजी को तार दे दिया—"माई कन्सैण्ट इज़ डैंजरस" (मेरी स्वीकृति भयंकर है) साथ ही एक कविता भी उस समय लिखी जिसकी दो पंक्तियां ये हैं—

किया जनकजा ने कुंजों में
सौदा जीवन-धन का।
तृण से हलका मूल्य होगया
तभी जनक के प्रण का॥

पत्नी की मृत्यु के बाद मेरा खाना-पीना कठिन हो गया। उदासी ने घेरा और बीमार हो गया। कारण, जो बोलता नहीं, वह अधिक सहता है, लेकिन तब से एक विचित्रता मेरे स्वभाव में आगई। लड़कियों के प्रति पूज्य-भावना मेरे हृदय में बढ़ गई। सात वर्ष तक तो यह हुआ कि मैंने किसी से राखी ही नहीं बँधवाई। राखी का दिन आता था और मैं टिकिट कटाकर किसी पास वाले स्टेशन पर उतर जाता था। तभी से मेरा मन इतनी सुकुमारता से भर गया है कि बच्चियों की विदा का दृश्य मेरे लिए बड़ा कष्टप्रद होता है। आँखें भर आती हैं। सब से बड़ी बात तो यह हुई कि मैं बड़े और छोटे सबको 'मा' लिखने लगा। श्रीबालकृष्ण शर्मा 'नवीन' मुझे 'माई डीयर मदर' (मेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यारी मा) लिखा करते थे, लेकिन सुभद्रा (स्व. श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान) के साथ हमारा 'मा' लिखना चला गया। मैंने १८-१९ वर्ष से 'मा' नहीं लिखा।"

हमारी यह बैठक समाप्त हो गई और हम लोग खाना खाने के लिए अंदर गए। मेज पर थाली आई, तो उनका भोजन बहुत ही सादा और हलका था। नाश्ते के वक्त मैंने देखा था कि उन्होंने आधे पानी और आधे दूध में 'ओवल्टीन' डालकर दो प्याले लिए थे। सोचा—कोई-न-कोई रहस्य है, जो वे इस प्रकार का भोजन करते हैं। उनसे जब इसका कारण पूछा, तब बोले—'बात सन् २७ की है। मैं अक्सर बीमार हो जाया करता था। कभी पेचिश, कभी कुछ। तब से मेरा यह नियम हो गया है कि एक तो मैं सदा उबला हुआ पानी पीता हूँ—यहाँ तक कि यात्रा तक में बोतलें साथ चलती हैं। दूसरे पत्ती के या घुलकर पानी हो जाने वाले साग लेता हूँ—जैसे घिया, तोरई, ककोड़ा आदि। दाल नहीं खा सकता। दाल का पानी लेता हूँ। फुलके एक-दो-चलते हैं। अंत में दूध या दही लेता हूँ। दोपहर का भोजन तभी करता हूँ, जब दस्त की शिकायत नहीं रहती। सामान्यत: १॥-२ बजे का समय निश्चित् रहता है। शाम को दो प्याले दूध और ओवल्टीन लेता हूँ और आखिरी हिस्से के साथ ईसबगोल का सेवन करता हूँ।"

"लेकिन दादा, आपका शरीर दुर्बल भले ही हो, आपका मानसिक संतुलन तो गजब का है।"

"इसके लिए मैंने स्वर-साधना की है। उसका इतिहास यह है कि जब ५२ वर्ष की उम्र में सहसा मेरा मानसिक संतुलन बिगड़ गया, तब मुझे 'कल्याण' में एक लेख पढ़ने को मिला। उसमें स्वर-साधना का तांत्रिक विवेचन था। स्वर से मुझे संकेत मिलते हैं। बाएँ नथने का स्वर शीत और दाएँ का उष्ण होता है। बाएँ नथने का स्वर अटूट रहता है। अतः, बाएँ नथने में रुई लगा लेता हूँ। दायाँ मेरे अनुकूल है। बाईं करवट लेटा जाए और दायाँ स्वर साधा जाय, तो स्वास्थ्य ठीक रहता है।

तद्नंतर वे विश्राम करने चले गए। सायंकाल के समय चाय-पान के बाद तांगा आया और हम लोग एक तालाब के किनारे पहुँचे। तालाब के किनारे ही वह मन्दिर है, जहाँ किसी समय पत्नी के साथ वे सैर करने के लिए आया करते थे। उन्होंने रास्ते में आते हुए पावड़ा मुहल्ले का वह मकान भी दिखाया, जहाँ उनकी पत्नी का स्वर्गवास हुआ था। मुझे आश्चर्य तो तब हुआ जब उन्होंने खंडवा की प्राचीन दशा का ब्यौरा देना प्रारम्भ किया। आबादी, जिनिंग फैक्टरियाँ, कपास की गाड़ियाँ, ज्वार की खास पैदावार और भाँग-गाँजे के गोदामों से लेकर साहित्यिक और सांस्कृतिक जीवन की कोई ऐसी महत्वपूर्ण वस्तु न थी, जिस पर उन्होंने चर्चा न की हो। जन-जीवन के हर पहलू पर उनकी टिप्पणियाँ सुनकर मुझे उनके विराट और सहानुभूतिशील हृदय की झलक मिली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जागृति का अभियान

श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिन्हा

卐

युग के नए भवन में देखो आज बसे इन्सान को !
जिसके आँगन, विषम घटाएँ, संघर्षों की धार है,
थिरक रहा जिसके होठों पर ओस-बूंद-सा प्यार है,
पर जिसको अभिशाप-पाश से लाना है वरदान को ।
जिसकी वाणी में सपनों की बन्दी हैं मीठी बातें,
जिसकी पलकों में जागी हैं सजल अमावस की रातें,
पर जिसको हाथों से गढ़ना है नूतन भगवान को ।
जिसके चरणों की गति ठिठकी, खड़ी मोड़ पर राह के,
सघन लगन उपवन में जिसके पड़े न झूले चाह के,
पर जिसकी पगध्वनि से आहट देना है निर्माण को !
मलिन अनास्था जिसकी पूजा को बैठी है घेर कर,
बुला न पाती आज प्रेरणा-वंशी जिसको टेर कर,
पर जिसको जाना ही है अब जागृति के अभियान को !
युग के नए भवन में देखो आज बसे इन्सान को !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजी, हम बाराती हैं !

श्री सन्तोषकुमार जैन

आपने भिश्ती राजा की कहानी सुनी होगी, जिसे हुमायूँ ने एक दिन का राज्य दे दिया था और उसने चमड़े के सिक्के चला दिए थे। आज सैंकड़ों साल बाद भी उस भिश्ती के जात-बिरादर, भाई-बन्द भारत के नगर-नगर में पाए जाते हैं। आपने बाजे-गाजे के साथ सज-धज कर चलने वाले बाराती देखे होंगे। बस ये ही उस भिश्ती के वंशज हैं। जिस दिन ये बाराती बन कर कहीं जाते हैं, उस दिन शेखी इनके आगे चिलम भरती है, तो नज़ाकत पानी।

"चलिए भाई साहब, स्नान कर लीजिए" एक बाराती से कन्यापक्ष के एक महाशय अनुरोध कर रहे थे।

बाराती ने अंगड़ाई लेते हुए कहा—"अजी, ज़रा ठहरिए तो।" कुछ देर बाद फिर अनुरोध हुआ, तो बोले-"यार, दम तो लेने दो। अभी थके-थकाए मोटर से उतरे हैं।" और उन्होंने इतनी ज़ोर से दोबारा अंगड़ाई ली कि जैसे लाम के मोर्चे से थक कर आए हों। बड़ी मुश्किल से नहाने बैठे, तो एक आवाज़ लगाई—"अरे, यह गरम पानी है या तप्तकुन्ड।" किसी ने उसमें उनके कहने के अनुसार ठंडा पानी मिला दिया, तो गरजे—"क्या गज़ब करते हो यार कि पानी इतना ठंडा कर दिया कि नमोनिया हो जाए, मुझे पहिले ही नजला रहता है।" लड़की वाले ने हल्की-सी तीखी बात कह दी, तो बस जनाब लगे हाथ फेंक-फेंक कर लड़ने—"हमें आपने क्या समझा है! हम कोई घसियारे नहीं हैं, बाराती हैं। अपने घर रोज इत्र-फुलेल से नहाते हैं।"

सुबह के नाश्ते में चाय लाई गई। लड़की वाले का घर कुछ दूर था, सो आते-आते चाय की गरमी कुछ ठंडी पड़ गई। तुनक कर कुछ बाराती बोले—"यह चाय है या कुनैन का मिक्स्चर!" चाय लाने वालों में भी कुछ गरम खून के थे, पर गुस्सा पी उन्होंने अपनी विवशता जतलाई, तो एक बाराती ने बर्छी-सा फेंका—"तुम्हारे यहाँ कोयले न हों, तो पैसे हमसे ले जाओ; पर यह ठण्डा पानी, तो हमारे सिर न मढ़ो।" एक सज्जन बाहर से चाय गरम कर लाए, तो तीसरे बाराती बोले—"यार, चाय पिलाने आए हो, या दिल फूकने!"

पंगत जीम रही थी और एक बाराती सौ गज की दूरी पर मुँह में रसगुल्ले-से दबाए कुनकुन कर रहे थे, दो-चार व्यक्ति उनके आगे हाथ जोड़े खड़े थे—"अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुस्सा थूकिए भी जनाब, चलिए। खाना खा लीजिए।" पर जनाब हर बार रूठ कर गर्दन घुमा लेते थे; जैसे राधा अपने कान्हा से रूठ जाए। एक बुजुर्ग ने पूछा—"आखिर बात क्या है भाई?" भुनभुन करते नाक ही नाक में बोले—"हम अपने घर क्या भूखे रहते हैं, जो गिड़गिड़ाकर भीख-सी माँगें और फिर भी कोई न सुने! दो बार नमक मंगाया, पर किसी ने लाकर ही नहीं दिया!"

सहसा यह समाचार सुन कन्या-पक्ष में हलचल मच गई कि बारात कन्या को बिना विदा कराए ही लौट रही है, लड़की का पिता दो-चार सम्बन्धियों को लेकर जनवासे की ओर भागा। पूछा गया—"आखिर क्या बात है, जो यह सब किया जा रहा है?" वर के ताऊ ने उबल कर कहा—"आप लोगों को ज़रा भी ध्यान नहीं है। आप हमें कंगाल समझते हैं।"

"ओह! आखिर कुछ बताइए तो कि क्या भूल हुई?"

"क्या खाक बताएँ। हमें यहाँ अब एक पल ठहरना भी पाप है। यहाँ का जल छूना भी हराम है।"

"लाला जी, बिना रोए, तो मा भी दूध नहीं पिलाती। अपनी शिकायत तो कहिए।"

"क्या शिकायत कहें। कल शाम से हम शोर मचा रहे हैं, पर हमारे घोड़े के लिए अब तक अच्छे घास का इन्तजाम नहीं हुआ।"

बेटी के बाप ने कहा—"घास तो हम ने काफी भिजवा दी थी। अब भी घोड़े के सामने घास पड़ी है। और जो बात हो, वह आप कहें।"

बेटे का बाप तीखे स्वर में बोला—"हमारा घोड़ा ऐसा घास खाता है!"

और तब ताऊ जी गरजे—"बातें बंद करो। हम अब बिलकुल नहीं रुकेंगे। चलो, सब सामान मोटर में लदवाओ।" तभी एक देहाती ने हँसकर कहा—"उबलते क्यों हो लाला, मैं अभी इतना घास खोदकर लाता हूं कि तुम्हारा घोड़ा ही नहीं, तुम सब भी छिक जाओगे।" बड़ी मुश्किल से मामला शान्त हुआ!

बासड़े की प्रथा में घर की लड़कियाँ वर के साथ मज़ाक करती हैं। इस अवसर पर दूल्हे के साथ केवल छोटी आयु के बालक ही अन्दर जाते हैं। एक बारात में इस बात पर ठन गई कि दूल्हे के साथ उसके युवक मित्र भी अन्दर जाएँगे। एक युवक कूद-कूदकर अपना अंदर जाने का दावा जता रहे थे, तो लड़की वाले अपनी बात पर अड़े थे। एक समझदार बुजुर्ग ने मामला निपटाने के लिए युवकों को भी अन्दर जाने दिया, पर वहाँ पहुँच कर भी वे अपनी अशिष्टता से बाज़ न आए, तो औरतों ने ढोलक पर तान छेड़ दी—

"सात मन के बाराती आए, चौदह मन की है उनकी जोरू री।"

बात यह थी कि ये महाशय मोटे-थलथले शरीर के थे। बस औरतें ढोलक पर टंकोरा लगाती और उन लबड़ धों-धों महाशय की ओर खिलखिला कर देख लेतीं। दस मिनट बाद ही वे बिगड़े हुए बिजार की भाँति चीखते चिंघाड़ते मैदान छोड़कर बाहर भाग गए।

एक बाराती जनवासे में घूम रहे थे, कन्या पक्ष के एक प्रतिष्ठित आदमी को अफसराना रौब से बोले—"इधर सुनो?"

"कहिए" उत्तर में नम्रता थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हमें खाने के लिए पान चाहियें" आज्ञा के स्वर में उन्होंने कहा।

"जी, पान का प्रबंध इस समय यहाँ नहीं है, पर मैं शीघ्र ही आपके लिए पान भिजवाता हूँ!"

"फिर क्या इंतजाम है तुम्हारा।"

अपमान पूर्ण व्यवहार से उन सज्जन को भी तैश आगया—"यह लीजिए अधन्ना और बाहर तंबोली की दूकान से पान चबा आइए!" तेज़ी से ज़मीन पर पैसे फेंकते हुए वे चल दिए, तो इन बाराती महाशय का मुँह खुला रह गया।

वर को उसके कुछ मित्रों ने चढ़ा दिया कि अपने लिए रेडियो की माँग करो। बस जनाब सत्याग्रह कर बैठ गए कि जब तक रेडियो नहीं मिलेगा, मैं दोपहर का खाना नहीं खाऊँगा। लड़की वाले ने न जाने किस प्रकार जोड़ तोड़ कर शादी का बजट बनाया था। इस नई माँग को सुन, उसके पाँव तले की ज़मीन निकल गई, बेचारा हाथ-पाँव जोड़े बुजुर्गों के आगे-पीछे दौड़ा फिरा, पर उनके समझाने पर भी वर की माँग अटल रही। विवश होकर बेचारे ने वर के पाँवों पर पगड़ी रख दी जैसे अपने गुनाहों की माफी माँग रहा हो कि उसके घर लड़की ने जन्म क्यों लिया।

तब वर के मित्रों ने कहा—"अच्छा लालाजी, जाओ वर ने अपना हक छोड़ा, पर तुमने हमारे बार-बार कहने पर भी हमारे लिए बोतल का इंतजाम नहीं किया, यह उसी का नतीजा है।" और वे इतना कह खिलखिला कर हँस पड़े—बहुत देर ठी-ठी होती रही।

और यह लीजिए इसी कड़ी का एक और संस्मरण। एक बारात के कोई ५० बारातियों ने बेटी वाले के नगर में रहने वाले अपने अपने सम्बंधियों के यहां ५-५ परोसे भिजवाने की माँग की, पर लड़की वालों ने इंकार कर दिया, इस पर एक बाराती ने कहा—

"तुम तो भिखारियों से भी गए-गुजरे हो।"

"मुँह संभाल कर बोलो!" जवाब मिला।

"मुँह क्यों संभालें? लड़की पैदा करना जानते हो, अपने जमाईयों की खातिर करना नहीं………।"

बात अधूरी ही रही कि एक तड़ाक-सा तमाचा उनके मुँह पर आ पड़ा और हो गई गुत्थम गुत्था शुरू। पहले दो की, फिर चार की और दस मिनट बाद एक तरफ लड़की वालों के हाथ में लट्ठ, तो दूसरी तरफ बारात वालों के हाथों में ईंट पत्थर। कोहराम मच गया और परिणाम यह हुआ कि लड़के वाले बिना दुल्हन का डोला विदा कराए लौट गए।

उसी रात को उस लड़की ने, जिसका ब्याह हुआ था, कुएँ में छलाँग मार कर आत्महत्या कर ली, पर चित्र का देखने लायक पहलू यह है कि इस करुण घटना के ५ सप्ताह बाद ही उस वर के दूसरे विवाह में ये सब बाराती फिर उसी मस्ती के साथ शामिल हुए!!!

एक संबन्धी बहन से उसके विवाह के कुछ महीने बाद ही मुझे मिलने का अवसर मिला, तो देखा कि वह सूख कर काँटा हो गई है। हँस कर पूछा—"सुसराल वाले तुझे खाना नहीं देते क्या?" तो वह चुपचाप पाँव के अंगूठे से ज़मीन कुरेदती रही।

"तेरे वो तुझे प्यार नहीं करते क्या?" प्रश्न सुनते ही उसकी आँखों से अनार-दाने जैसे बड़े-बड़े आँसू टप-टप बह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकले। हिचकियाँ भरती बोली -"वह मुझे फूटी आँख भी नहीं देखना चाहते। प्यार तो मेरे जीवन में पैदा ही नहीं हुआ भैया! वह आते हैं, तो लड़ते-झगड़ते, खाते-फाड़ते ?"

"पर ऐसा क्यों बहन ?" मेरे अंतर में विचित्र-सी हूक उठ रही थी।

"क्या बताऊँ, उनका एक बहुत निकट का मित्र है, उसकी हर बात वह ईश्वरीय आदेश मानते हैं। वह रोज़ आता है और उन्हें भड़का जाता है— "खबरदार अगर तूने अपनी पत्नी से अच्छा बर्ताव किया ?" तू मेरा सच्चा दोस्त है और तूने मेरे उस अपमान का बदला अपनी बीबी से लेना है। याद है तुझे; जब मैं तेरी बारात में गया था, तो मुझे तेरी ससुराल वालों ने नाचने वाली को बुलाने की मांग पर कितना अपमानित किया था। वह अपमान मैं सारी ज़िन्दगी नहीं भूल सकता।"

"और बस इसी बात पर उन्होंने मेरी ज़िन्दगी नरक बना रखी है!"

भारतीय विवाहों में होने वाले झगड़ों का यदि सर्वेक्षण किया जाए, तो मेरा विश्वास है कि ६५ प्रतिशत झगड़ों का आधार बाराती होंगे, जो बेमुल्की नवाबों की तरह अक्खड़पने के नशे में विवाह जैसे मधुर अवसर पर कटुता का ज़हर घोलते रहते हैं।

आज के युग में बिचौलियों की प्रथा को समाप्त किया जा रहा है। क्या हम इन भिश्ती राजाओं को भी समाप्त करने का साहस कर सकेंगे, जो स्वयं तो पत्तल झाड़ मूछों पर ताव देते अपनी-अपनी राह लगते हैं, पर पति-पत्नी और उनके संबंधियों के बीच घृणा, द्वेष और वैमनस्य की इतनी गहरी खाई खोद जाते हैं, जिसमें परिवार की शान्ति, सुख और ममता सिसक-सिसक कर दम तोड़ देती है ?

इशारे

श्री कल्पनाथसिंह

एक राह नजारे अलग - अलग ?
एक दरिया किनारे अलग - अलग ?
अभी सुबह हुए कुछ देर नहीं,
मौसम के इशारे अलग - अलग ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलहड़ मानवता के प्रतिनिधि श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

सन् १९३२ की जेल-यात्रा से मैं अपने साथ प्लूरिसी का जो राक्षस लाया था, उससे मेरी कुश्ती अभी हो ही रही थी कि 'आज' में मैंने नवीन जी का लिखा एक संस्मरण पढ़ा—श्री सूर्यनाथ तकरू। तकरू हमारे साहित्य के उभरते कलाकार थे और बेसमय मृत्यु का शिकार होगए थे। उन्हीं पर यह संस्मरण था—अत्यन्त कोमल, करुण, मर्मस्पर्शी और सजीव।

पढ़ कर मन भाव-विभोर हो गया और उन्हें पत्र लिखा—"एक अमेरिकी महिला ने ताजमहल देखकर अपने पति से कहा था कि तुम मेरे नाम पर ऐसा ही स्मारक बनवाने का वादा करो, तो मैं अभी मरने को तैयार हूँ। पण्डित जी, तकरू पर आपका लेख पढ़ कर मरने को तैयार तो मैं नहीं हुआ, पर मरने से निश्चिन्त जरूर हो गया; क्योंकि मेरे मरने पर भी आप एक लेख लिखेंगे, यह मुझे विश्वास है। रोग की स्थिति डांवाँडोल है, इसलिए आप अपनी कलम तैयार रखें!"

लौटती डाक मेरी पत्नी के नाम पत्र आया—'बहूरानी, प्रभाकर भाई का सर्वोत्तम इलाज होना चाहिए और फलादि की ठीक व्यवस्था भी। तुम्हारा जेठ गरीब है, पर वह कलम और कुल्हाड़ी दोनों की मजदूरी कर सकता है, इसलिए खर्च की चिन्ता मत करना।" और दूसरे ही दिन ५०) का मनिआर्डर भी आ पहुँचा। इसके बाद भी उन्होंने दो बार ५०-५० रुपए मुझे भेजे और प्रोत्साहन-प्रेरणा के इतने पत्र लिखे कि मुझे अपना मानसिक सन्तुलन बनाए रखने में सचमुच बहुत मदद मिली।

१९३६ के चुनाव आए, कांग्रेस दूसरे ७ प्रान्तों की तरह यू० पी० में भी निश्चित बहुमत में आई, वैधानिक विवाद के बाद मन्त्रि-मण्डल बने और नए सूर्य का उदय हुआ, पर पण्डित जी कहीं-कुछ न बने। पहले खबर मिली कि एम० एल० ए० होंगे, फिर खबर मिली कि केन्द्रीय असेम्बली में जाएँगे, फिर खबर मिली कि मजदूर सीट से यू० पी० कौंसिल के मेम्बर होंगे और शिक्षा विभाग के पार्लमेंटरी सेक्रेटरी (डिप्टी और स्टेट मिनिस्टर तब नहीं होते थे) बनाए जाएँगे, पर ये सब खबरें ही रहीं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित जी कुछ न बने—एम. एल. सी. की मजदूर सीट पर हरिहर नाथ शास्त्री की नामजदगी के लिए, तो स्वयं पण्डित जी ने ही पन्त जी और रफी साहब से अनुरोध किया।

उन्हीं दिनों कानपुर में मैं पण्डित जी से मिला, तो कहा—"खबरें इतनी उड़ीं कि गिनना मुश्किल हो गया, पर काम एक नहीं हुआ, यह क्या बात है ?"

प्रश्न सुनकर वह अपने सहज अल्हड़-पन में डूब गए और दाएँ हाथ की उंगलियों को कमल की मुद्रा में नचा कर बोले—"पहली बात तो यह है कि गणेश जी पढ़ा गए हैं कि राजनीति नरक हो जाती है, जब उसमें दे नहीं रहती, ले ही ले रह जाती है और दूसरी बात वह है जो तुम जानते ही हो कि हम किस्मत के हौलू हैं मिन्तर।"

उन के जीवन में किस्मत का यह हौलू-पन बार-बार दोहराया गया, पर साहित्य सम्मेलन में तो उसका 'क्लाईमेक्स' (चरम) ही होगया। समाजवाद और गांधीवाद के विचार-संघर्ष में वे समाजवाद के भक्त होकर भी गांधी जी के साथ खड़े रहे, पर हिन्दी-हिन्दुस्तानी के विवाद में वे गांधी जी को छोड़कर राजर्षि टण्डन जी के साथ आ खड़े हुए। हिन्दी के सम्बन्ध में उन की कट्टरता मेरे लिए उस दिन आश्चर्यजनक हो उठी, जब उन्होंने प्रखर होकर मुझसे कहा—"मैंने हमेशा उर्दू के शब्दों का कविता में प्रयोग करने के कारण पंडितों की गालियाँ खाई हैं, पर अब तो साहित्य से उर्दू के शब्दों को चुन-चुन कर निकाल फेंकने में मेरी रुचि है।"

बँटवारे से पहले कराची में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का जो अधिवेशन हुआ, उसके सभापति पद के लिए वे भी उम्मीदवार थे। वे अपने चुनाव के सम्बन्ध में असंशयात्मा थे। श्रीमती चन्द्रवती ऋषभ सैन जैन से उन्होंने कहा—"प्रभाकर रेल में धुवाँ फाँकता पहुँचेगा चन्दो बहन, तुम शान से मेरे साथ हवाई जहाज़ में चलना।"

इस बातचीत के ३–४ दिन बाद वे ५ नाम सम्मेलन की कार्यकारिणी ने प्रकाशित किए, जिनमें एक को सभापति चुना जाना था। इन पाँच में श्री वियोगी हरि का भी नाम था और पण्डित जी का भी। पार्लमिंट हाउस की सीढ़ियों से उतरते वे मुझे मिले, तो मैंने कहा—"आपने देख लिए वे पाँच नाम ?"

बहुत सरल भाव से बोले—"हाँ।"

"फिर आपने क्या सोचा ?" मैंने पूछा, तो बोले—"क्यों, उसमें कुछ सोचने की बात है ?"

मैंने कहा—"हाँ, उसमें सोचने की बात यह है कि आप अपना नाम वापस ले लें।"

बहुत गम्भीरता से मेरी तरफ देखा और मेरे साथ बाहर लान पर जा बैठे—"क्यों, क्या बात है ?"

मैंने कहा—"सभापति तो वियोगी हरि जी चुने जाएँगे, फिर आप अपना नाम क्यों घिसटवाएँ ?"

बोले—"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है!"

मैंने कहा—"बात एकदम साफ है कि टण्डन जी का समर्थन उन्हें ही मिलेगा और वही निर्णायक शक्ति हैं।"

बोले—"नहीं, तुम्हारी राय ठीक नहीं है। बाबू जी इस बारे में कोई जोर नहीं लगाएँगे। तुम चिन्ता मत करो !"

मैंने कहा—"आप अनुभव के बाद मेरी बात की गहराई को समझेंगे।"

सुन कर उन्होंने मुझे जोर से दबोच लिया और तब दोनों हाथों से थपथपा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया। उनकी मूक भाषा में इसका अर्थ था—"अरे मिन्तर, तुम तो पूरे वहमी हो!"

चुनाव हुआ और वियोगी हरि जी सभापति चुने गए। मिले तो बोले—"यार, तुम तो ज्योतिष का काम करने लगो, हम भी दाल-रोटी से बेफिकर हो जाएँगे।"

मैंने बहुत गहराई से उन्हें घन्टों पढ़ा, पर उन्हें अन्दर के किसी कोने में खिन्न नहीं पाया। बड़ी मस्ती से उन्होंने चाय पिलाई, गा कर कविताएँ सुनाईं और चलते समय बोले—'मिन्तर, हम तो तुम्हारे भल्लूम के सभापति हैं।"

बहुत दिनों तक उनका कोई पत्र नहीं मिला। मैंने दो पत्र लिखे, तो उत्तर नहीं मिला। तब मैंने तकाजा कसा, तो पत्र आया—'मैं तुम्हारी तरह कोई बेकार आदमी नहीं हूँ कि खत-पत्तर लिखता रहूँ। तुम्हें पता हो कि मैं अब अपभ्रन्श भाषा में खोज कर रहा हूँ। इस बीच मैंने ऋग्वेद से प्रेमचन्द तक का गम्भीर अध्ययन किया है और ऐसे-ऐसे हीरे खोजे हैं कि तुम्हारे जैसे मूर्खों को सपना भी नहीं आ सकता।"

उनके छोटे-छोटे अक्षरों में कार्ड के मुख्य भाग पर यह पढ़ा, तो लगा कि वे मेरे पत्र से नाराज़ हो गए हैं, पर उसे उल्टा, तो लिखा था—"मैंने नामों के मूल रूप पर खोज की है और सामवेद से पता चलाया है कि तुम्हारे नाम कन्हैयालाल का मूल रूप कान-हिलाए-लाल अर्थात् बछड़ा या गधा है।"

पढ़कर खूब हँसी आई और उनकी अल्हड़ हँसियों की स्मृतियों में मन डूब-डूब गया। सचमुच वे एक बहुत मस्त इन्सान थे।

ढलती उम्र में उन्होंने एक तरुणी से विवाह कर लिया, यह समाचार-पत्रों में पढ़ा, तो कुछ मिश्रित-सी प्रतिक्रिया हुई। एक मित्र से मैंने कहा—"और चाहे जो हो, अब नवीन जी का कविरूप समाप्त हो जाएगा।"

उन्होंने मेरी बात नवीन जी से कह दी। मैं उनसे इसके बाद मिला, तो मुझे अपनी नई रचना सुनाई और बोले—"अभी तक तो मैं कविता लिख रहा हूँ।"

मैंने बात टाल दी, चुप रहा पर दूसरे दिन कहा—"पण्डित जी, भारतमाता की पीड़ा के अनुभव ने आपको राष्ट्रीय कविता दी, निठुर प्यार की प्रताड़ना ने आपको मीठे गीत दिए और दार्शनिक अध्ययन ने 'क्वासि' जैसी कविताएँ दीं। इन तीनों में आपका सर्वोत्तम कवित्व गीतों में उभरा। इन गीतों में प्यार की स्मृतियाँ और विरह की मीठी कसक ही पुलकित हुई है। नए जीवन में पुरानी स्मृतियों का उच्छवास मन्द पड़ जाता है और कसक का प्रवेश निषिद्ध हो जाता है, यह मैंने सामवेद में खोज की है।"

सुनकर एक बार हँसे, फिर गम्भीर हो गए—गम्भीर ही रहे; जैसे कल मैं चुप रहा था। इस मिलन के बाद वे सहारनपुर में ही मुझसे मिले, जब ब्रज-साहित्य-मण्डल के छठे अधिवेशन के सभापति होकर वे सपत्नीक पधारे। श्रीमती चन्द्रवती ऋषभसैन जैन की कोठी पर सुबह ही सुबह मैं, वे, चंद्रवती जी और भाभी जी (उनकी पत्नी) चौक में धूप का आनन्द ले रहे थे। उन्होंने अपने विवाह की कथा सुनाई—गांधी जी की अस्थियों का कलश लेकर संगम में प्रवाहित करने इलाहाबाद गए, तो अपार भीड़ उमड़ पड़ी। एक सैनिक ट्रक पर अस्थि-कलश रखा गया। आगे पं० जवाहरलाल नेहरू बैठे, पीछे नवीन जी। जलूस संगम की ओर बढ़ने लगा। बहुत अच्छी व्यवस्था थी, पर भीड़ का कहीं अन्त न था। एक जगह भीड़ ने रस्से तोड़ दिए और घच्च-पच्च मच गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन जी ने देखा, एक सुकुमार युवती भीड़ के रेले को सहने में असमर्थ हो गिरा चाहती है। मनुष्य में उनकी अथाह दिलचस्पी थी, वह गांधी जी की मृत्यु के दुःखपूर्ण वातावरण से भी ऊपर उठ गई और नवीन जी ने अल्हड़ टोन में उस युवती को पुकारा—"कम-ऑन डीयर ?" युवती ट्रक के पास बढ़ आई और नवीन जी ने अपनी लम्बी, सुन्दर और बलिष्ठ भुजा का सहारा दे, उसे ट्रक पर चढ़ा लिया। नवीन जी उसे एक स्थान दे, अपने काम में लग गए, पर युवती को लगा होगा कि वह क्षण भर में दृष्टा से दृश्य हो गई।

संगम पर उतरते समय युवती ने नवीन जी का परिचय पूछा—पाया और कुछ दिन बाद दिल्ली में उन्हें उस युवती का पहला पत्र मिला, जिसमें उन्हें धन्यवाद दिया गया था, पर इस धन्यवाद में एक विशेष स्पर्श था। नवीन जी ने उसका सादा-सरल उत्तर दिया, तो दूसरा पत्र भाव-विभोर आया। दो-तीन पत्रों के बाद वह युवती अपने पिता के साथ दिल्ली आ पहुँची। पिता प्रोफेसर, तो पुत्री एम. ए. और नवीन जी के सामने विवाह का प्रस्ताव; नवीन जी अस्तव्यस्त।

लम्बी बातचीत के बाद उन्होंने अपना अग्निवाण छोड़ा—"मैं तुम्हारे पिता की उम्र का हूँ, अपने भविष्य की दृष्टि से इस पर भी तो विचार करो !"

वह जैसे इसके लिए तैयार थी, उसने अपना वरुणास्त्र छोड़ा—"क्या आपको विश्वास नहीं है कि यदि कोई दुर्घटना हो जाए, तो मैं एक हिन्दू विधवा की तरह अपना जीवन व्यतीत कर सकती हूँ ?"

नवीन जी का सांस्कृतिक अन्तःकरण विह्वल हो गया और उनकी दृढ़ता के सब शस्त्रास्त्र आप ही आप गिर पड़े। अपने विवाह की यह कथा सुनाते-सुनाते ही वे भाव-विभोर हो उठे और उनकी पलकें मोतियों से जड़ गईं। तब बोले—"तुम जानते हो, अपनी ज़िन्दगी तो औघड़-आवारा रही है; अब इन साध्वी पत्नी के पुण्य से शायद वह तर जाए।"

उनकी यह 'शायद' बहुत अर्थवती सिद्ध हुई। वे विराट के व्यक्ति थे, व्यक्ति के ही व्यक्ति होजाना उनके व्यक्तित्व के लिए सम्भव ही न था। निश्चय ही अपने शक्तिशाली और प्रचण्ड व्यक्तित्व के लिए उन्हें जीवन भर एक कोमल केन्द्र की तलाश रही, पर व्यक्ति वे विराट के ही थे। उनकी मृत्यु पर महामहिम राष्ट्रपति, युगनेता प्रधानमंत्री और शक्तिस्तम्भ गृहमंत्री जब स्वयं उनके शव तक पहुँचे और उन्होंने उन की चिता पर अपने-अपने प्रतिनिधि द्वारा माला समर्पित की, तब विराट ने उनके व्यक्तित्व को अपनी स्वीकृति ही तो दी !!

महान है वह आदमी, जो अपने मिट्टी के बर्तन का ऐसे आनन्द से उपभोग करता है मानो वह चान्दी का थाल हो; पर वह आदमी भी कम महान नहीं है जिसे अपना चाँदी का थाल मिट्टी के बर्तन से अधिक नहीं लगता।

—अज्ञात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* भाई माईदयाल जैन कितने लम्बे वर्षों से हिन्दी की सेवा कर रहे हैं, पर इतने दिनों के परिचय के बाद मुझे लगता है कि उन्होंने कभी हिन्दी की सेवा नहीं की; हिन्दी की सेवा का उनके मन में कभी भाव ही नहीं उठा!

* हरद्वार में बहुत-से यात्री मछलियों को आटे की गोलियाँ खिलाते हैं, पर क्या वे मछली-सेवक होते हैं? ना, गोलियाँ मछलियों को ज़रूर मिलती हैं, पर वे तो अपनी भावना में धर्म-सेवा ही करते हैं!

* माईदयाल की कृतियाँ-मौलिक और अनुवाद-हिन्दी को मिलीं, इसमें सन्देह नहीं, पर उनके सर्जन और समर्पण का उद्देश्य तो भारत के स्वस्थ जन-मन का उपार्जन ही रहा।

* तभी तो इतने लम्बे समय तक वे प्रतिभा की पूजा-कामना से सिक्त रह कर भी पद-प्रतिष्ठा की लालसा में लिप्त होने से बचे रहे—प्रतिमा का बहुमूल्य शृङ्गार और समारोहात्मक आरती उपचार देखकर भी अपने नन्हें फूलों का उपहार उन्हें सन्तोष दिए रहा!

* इस लघुता में, इस निरन्तरता में, इस सन्तोष में ही भाई माईदयाल का व्यक्तित्व है; कहें माईदयाल का व्यक्तित्व—यानी एक निर्बल, पर भाव-निर्मल उपासक का व्यक्तित्व!

खैराती तांगे वाला

श्री माईदयाल जैन

अंगरेजी में एक कहावत है कि कर्म ही पूजा है। कर्म का महत्व इससे सुन्दर शब्दों में और किसी दूसरी तुलना से बताना असम्भव ही है। फिर यदि किसी व्यक्ति के जीवन में कर्म के साथ ईश्वर की पूजा की पुट भी काफी मात्रा में हो, तो वहाँ सोने में सुगन्ध ही है। ऐसे ही एक कर्मशील और खुदापरस्त (परमात्मा के उपासक) तांगेवाले के सम्पर्क में जाने का मौका मुझे कई बार अम्बाला छावनी में मिला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरमियाना कद, चौकोर चेहरा, छोटी, बिना सँवारी दाढ़ी, गेहुँआ रंग; साधारण धोती, कुर्ता, सिर पर छोटा-सा रुपट्टा और आयु चालीस से ऊपर, यही था उस का रूप-हुलिया और नाम ख़ैराती, तो काम तांगा चलाना।

उसका मकान हमारे स्कूल के ठीक सामने तीन तरफ से बन्द एक चौक के दायें कोने में था। उस चौक के एक सिरे पर इमली का एक पुराना वृक्ष था। वह उसी वृक्ष के नीचे प्रायः अपने घोड़े और तांगे को खड़ा करता था। उसके मकान के द्वार पर खोलकर सीं हुई दो बोरियों का एक परदा सदा लटकता रहता था।

मैंने अपने आठ-नौ वर्षों के अम्बाला छावनी के जीवन में उसकी किसी सन्तान को नहीं देखा। हाँ, उसके एक बीबी थी, जिसकी शक्ल तो नहीं देखी, पर आवाज़ ज़रूर कई बार सुनी। मैं कभी तांगे के लिए कहने को जाता और ख़ैराती घर पर न होता, तो वह पूछ लेती कि तांगे की किस समय ज़रूरत है और अन्दर से ही हल्की आवाज़ में उत्तर देती—"आने पर उनसे कह दूँगी। तांगा ठीक वक्त आपके मकान पर पहुँच जाएगा।"

मैंने अपने जीवन में अनेक जाति के तांगे वाले देखे हैं—हिन्दू, मुसलमान और सिख और भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भी अनेक स्थानों पर तांगे वालों से मुझे काम पड़ा है, पर ख़ैराती के बरताव, काम, भलमनसाहत और धर्म-परायणता की कुछ ऐसी छाप मेरे हृदय पर लगी है कि चौबीस-पच्चीस वर्षों तक उससे न मिलने पर भी, वह छाप अभी कायम है। जब कभी मैं किसी तांगेवाले को निश्चित या तय किए हुए किराये से अधिक पैसों के लिए या नियत स्थान पर पहुंचाने के बारे में सवारियों से झगड़ते देखता हूँ, तो ख़ैराती की याद ताज़ा हो जाती है और ख़ैराती के स्वभाव के लिए मन में आदर का भाव उमड़ आता है।

ख़ैराती में वे क्या गुण थे, जिनके कारण उसके व्यक्तित्व की छाप चौथाई शताब्दी की अच्छी-लम्बी अवधि के बाद भी ताज़ी है? ख़ैराती समय का अत्यन्त पाबन्द था। किसी को रात के दो बजे की गाड़ी से जाना हो, या प्रातःकाल चार-पाँच बजे की गाड़ी से, पर यदि उसने ख़ैराती को तांगे के लिए कह दिया है, तो वह निश्चिन्त होकर सो सकता था। जाने की तैयारी में लगने तथा मकान से स्टेशन तक पहुंचने के समय का पूरा और सही ध्यान ख़ैराती को रहता था। इस पर भी वह दस-पन्द्रह मिनट पहले ही मकान पर आ जाता था। अधिकतर उसकी सवारियाँ बँधी हुई थीं। उसके व्यवहार-बरताव से किसी को कभी शिकायत हुई हो, ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता। सचाई यह है कि वह शिकायत की गुञ्जायश ही न रखता था।

बहुत से तांगे वालों में दूसरे तांगे वालों से या सवारियों से लड़ने-झगड़ने, नशा करने और सामान उड़ा देने या भूल से रही वस्तु को हजम कर जाने आदि के जो दुर्गुण होते हैं, ख़ैराती में उनका नाम भी न था। इतना ही नहीं, यदि कभी किसी सवारी की कोई वस्तु किसी दूसरे तांगे में भी भूल से रह जाती, तो वह ख़ैराती से ही उस वस्तु को तलाश करने के लिए कहता और ख़ैराती एक स्वयंसेवक के रूप में तांगे वालों से मालूम कर उस वस्तु को प्राप्त करने का प्रयत्न करता था।

एक बार मेरी एक दुतई अम्बाला छावनी स्टेशन से घर जाते समय किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तांगे में रह गई और एक-दो दिन बाद मुझे उसके खो जाने का पता लगा, तो मैंने ख़ैराती से उसका ज़िक्र किया और उस तांगे तथा तांगेवाले का कुछ साधारण सा पता-निशान भी बताया। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, जब उसने दो दिन बाद वह दुतई लाकर मुझे सौंपी।

बात यह थी कि सभी तांगे वाले उसे चचा ख़ैराती कहा करते थे और उसका मान करते थे। ख़ैराती उनकी सद्भावनाओं को जाग्रत करने और उनको नेक मार्ग पर चलने के लिए समझाता रहता था। वह अक्सर कहा करता था—"हम किसी का कोई कपड़ा-लत्ता उड़ा लें, तो ५-७ रुपयों का होता है, पर उसे वापस करने से जो दुआ मिलती है, वह तो लाखों की होती है।"

उसके धर्मपालन का यह हाल था, कि पाँच वक्त की नुमाज़ में तीन-चार समय की नुमाज़ तो वह पढ़ ही लिया करता था। कुरान का बहुत-सा भाग उसको ज़ुबानी याद था और उसका पाठ करना भी उसके दैनिक कामों में शामिल था। रमज़ान के महीने में वह हर रोज़ रोज़ा रखता था और अल्लाह के नाम की माला वह प्रायः फेरता रहता था। वह लिखना-पढ़ना विशेष न जानता था, इसलिए उसका बहुत-सा धर्मपालन ज्ञान और बुद्धि की वस्तु न होकर श्रद्धा और हृदय की वस्तु थी। वह एक भक्त था और परमात्मा को सर्वव्यापी और सर्वद्रष्टा (हाज़िर-नाज़िर) समझ कर उससे डरता था। संक्षेप में यूँ कह सकते हैं कि ख़ैराती उस युग के बूढ़े हिन्दू, मुसलमान और सिख सद्गृहस्थ भक्तों के नमूने का धर्मात्मा था, पर यदि चरित्र से किसी आदमी के धर्म को जाँचा जा सकता है, तो यह निसंकोच कहा जा सकता है कि ख़ैराती सच्चे अर्थों में धर्मात्मा था।

सन् १९३८ की जुलाई में मैं अम्बाला छावनी से चला आया और मैं नहीं कह सकता कि भारत के बटवारे के समय सन् ४७ में वह जीवित था या नहीं या उसका क्या हुआ, पर वह आदर्श कर्त्तव्य-शील एक ऐसा नागरिक था, जिसकी हर देश को बड़ी संख्या में ज़रूरत है।

आज भारतवर्ष ख़ैराती के समान ईमानदार, कर्त्तव्यशील, भले, वक्त के पाबंद और सदाचारी ताँगे वाले, दरजी, धोबी, कारीगर, मज़दूर, अध्यापक, पुलिसमैन, दुकानदार और सरकारी नौकर चाहता है, जो राष्ट्र के जीवन को अपने सत्चरित्र से निर्मल और सुखी बना सकें। भारतवर्ष चन्द व्यक्तियों के बड़े बन जाने से बड़ा न बनेगा, वह बड़ा बनेगा उस समय, जबकि उसका हर एक नागरिक नेक, ईमानदार और कर्त्तव्यशील होगा, जैसा कि ख़ैराती तांगेवाला था।

तुम नेक रहो और संसार तुम्हें बुरा कहे—यह अच्छा है, बनिस्बत इसके कि तुम बुरे रहो और संसार तुम्हें अच्छा कहे।

—अज्ञात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने पढ़ने के कमरे में

शिशिर भादुड़ी

मृत्यु से कुछ दिन पूर्व मिलने गए एक मित्र से उन्होंने कहा था—"ठीक कहाँ हूँ, भाई? पेट की तकलीफ बहुत बढ़ गई है। खाना प्रायः बन्द ही कर देना पड़ा है। कोष्ठबद्धता ने बड़ी निर्ममता के साथ धावा बोला है। रात को नींद भी नहीं आती। मेरी रात की एकमात्र साथिन पुस्तक थी, सो आँखों में मोतिया-बिंद उतर आने से अब तो पढ़ना भी बन्द कर देना पड़ा है। दिन को थोड़ा-बहुत ऊँघ-भर लेता हूँ।" फिर खिड़की से बाहर आकाश की ओर देखकर भरे गले से बोले—"जीवन की संध्या आ पहुँची है। लगता है कि जैसे मेरा यही अंतिम वर्ष है। इसी साल सर हेनरी अर्विंग मरे थे। गिरीशचन्द्र भी मरे थे। अब शायद मेरी बारी है। आँखों से दिखाई नहीं पड़ता—मोतियाबिंद हो गया है। शरीर प्रायः ही असहयोग करता है। इस पर भी मन—उसकी बात जाने ही दो।"

कुछ दिन पहले एक बार स्वयं ही आर्त्त कंठ से वे एक मित्र से कह बैठे थे—"बस, बन्द करो मेरी नाट्यकला की प्रशंसा। कलाकार की बात कोई भी तो नहीं सोचता। मैं जिन्दा हूँ या मर गया, कहाँ हूँ, कैसे हूँ, किसी को भी तो इसकी चिन्ता नहीं, पर जिस दिन मैं मरूँगा, देखना, इसी रास्ते में कितनी भीड़ होगी। सब फूलों की मालाएँ लेकर दौड़े आएँगे।"

और फिर एक बड़ी ही व्यंग्यपूर्ण तिक्त-मुस्कराहट के साथ अभिनय-सा करते हुए बोले—"गिरीश पार्क में गिरीशचन्द्र की एक मूर्ति लगी है। उसके साथ गिरीशचन्द्र के चेहरे का कोई मेल नहीं। शायद इसी ढंग की मेरी भी एक मूर्ति बनाई जाएगी। फिर उसके उद्घाटन के लिए किसी ऐसे गरायमान्य व्यक्ति को बुलाया जाएगा, जिसका रंगमंच के साथ निश्चय ही कभी कोई सम्बन्ध नहीं रहा हो। वह मेरी मूर्ति को फूलमाला पहनाएगा और फिर मगरमच्छ जैसे दो आँसू गिराकर लम्बे भाषण द्वारा प्रमाणित करेगा कि शिशिरकुमार एक अभिनेता थे।"

कदाचित इसी व्यंग-विद्रूप की कटु पूर्वानुभूति के कारण उन्होंने अपने एकमात्र पुत्र को आदेश दिया था—"मेरे मरने पर एक बिलकुल साधारण खटिया लाना और उस पर मुझे लिटाकर ऊपर से एक कोरा सफेद कपड़ा ढक कर स्मशान-घाट ले जाना। फूलों की मालाएँ मैं नहीं चाहता।"

एक बार बिना किसी पूर्व सूचना के मैं शिशिर बाबू के घर गया।

मैंने उन्हें नमस्कार किया, तो उठकर तकिए का सहारा लेकर बैठते हुए उन्होंने पूछा—"आज अचानक इधर कैसे भूल पड़े? बोलो, तुम्हारे कलकत्ते के क्या हालचाल हैं?"

मैंने विनम्र भाव से कहा—"कोई खास तो नहीं। पर हाँ, मंच पर लोग आपका अभाव अवश्य महसूस करते हैं।"

"यह तुम मुझ से कह रहे हो?"—बड़ी वेदना के साथ शिशिर बाबू ने तनिक उत्तेजित होकर कहा—"खाक अभाव अनुभव करते हैं। उनमें से कोई भी तो ऐसा बुद्धिमान नहीं, जो आगे आकर कहता कि आप अपना स्वतंत्र मंच चलाइए। राष्ट्रीय रंगमंच की स्थापना कीजिए। जो खर्च लगेगा, मैं दूँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

..........—पर यह शायद मेरी ही समझ का फेर है, क्योंकि बुद्धि और पैसा दोनों भला एक साथ कैसे रह सकते हैं !"

['आजकल' में श्री मोहनसिंह सेंगर]

यह देहली है

मैं फिरोज़पुर शहर से बंबई तक जाने वाली गाड़ी में टिकट-चेकर का काम करता हूँ। प्रति-दिन भिन्न-भिन्न और दिलचस्प आदमियों के दर्शन होते हैं। कभी-कभी तो बहुत-ही मनोरंजक घटना घटती है। एक दिन एक ऐसे आदमी के दर्शन हुए कि वह कभी भी भुलाया नहीं जा सकता।

जनाब, बात ऐसे बनी कि फिरोजपुर से एक ग्रामीण व्यक्ति गाड़ी में सवार हुए। उन्होंने आते ही सिगरेट-बीड़ी की तो भूख-हड़ताल करा ही दी, साथ-ही-साथ सोने के लिये एक पूरी सीट रोक ली। आप तो सो गये परन्तु अपने ऊँचे-ऊँचे नींद के गोले ऐसे छोड़ने लगे कि दूसरे यात्री एक पल भी सो नहीं पाये।

गाड़ी भटिंडा जङ्क्शन के प्लेटफार्म से छूटी और धीरे-धीरे रेलवे कर्मचारियों के क्वार्टरों को पार करने लगी। एक क्वार्टर में रेडियो बड़ी तेज़ आवाज़ से बोल रहा था। पता नहीं, उन यात्री महोदय को क्या सूझा कि उन्होंने एक बारगी चेन खींचकर गाड़ी रोक दी। सारे यात्री आश्चर्य से उन्हें देखने लगे। उस व्यक्ति ने जल्दी-जल्दी अपना सामान बाहर फेंकना शुरू किया। मैंने कहा—यह तो भटिन्डा है और आपको तो देहली जाना है, सामान इस तरह फेंकने के क्या माने?

उन्होंने फौरन जवाब पेश किया—क्यों झूठ बोल रहे हैं। यही देहली है।

मैंने कहा—नहीं साहब, अभी-अभी गाड़ी भटिंडा स्टेशन से छूटी है।

पर उन्हें विश्वास नहीं हुआ। मैंने एक बार और टोका तो बिगड़ कर बोले—आप झूठे हैं। अभी-अभी एक क्वार्टर के रेडियो से आवाज़ आई है कि यही देहली है।—आप मुझे धोखा नहीं दे सकते।

मैं ही क्या, डब्बे के सारे यात्री हँस-हँस कर मर गए। हँसने से फुरसत ही किसे थी कि उन यात्री महोदय को समझाए कि देहली आकाशवाणी का प्रोग्राम हो रहा है।

['विनोद' में श्री दुर्गा सिगल]

किसके लिए ?

तानपूरे पर तानसेन की उँगलियाँ थिरकीं और जादू-सा छाने लगा, फिर उनका मधु-घुला गला। आस-पास की चेतन वस्तुएँ भी जड़ प्रतीत पड़ने लगीं। वह एँड़ियों के बल नितम्बों को स्थिर कर आँखें बन्द किए राग अलाप रहा था। अकबर के शरीर में रह-कर सिहरन छा जाती थी। श्रोता विस्मय-विमुग्ध थे।

संगीत का कार्यक्रम समाप्त हुआ तो मुगल-सम्राट् ने पूछा—'तानसेन! क्या तुमसे भी कोई अच्छा गा सकता है?'

'जी हाँ, जहाँपनाह!' —तानसेन बोला—'अपने गुरु की तुलना में, मैं उनके चरणों की धूल भी नहीं।'

'अच्छा!' —सम्राट् के विस्मय का ठिकाना न रहा—'हम एक दिन उनका भी संगीत सुनना चाहते हैं।'

'पर वे किसी को सुनाते नहीं हजूरे-आलम!'—चिंतित हो तानसेन ने कहा।

पर अकबर के हृदय में तीव्र लालसा जाग चुकी थी। तानसेन ने एक तदबीर सोची। फिर सम्राट् के साथ गुरु महाराज की निवास-भूमि में चला। सुरम्य उपवन, हरे पादपों की लम्बी सघन श्रेणी, उत्तर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग में लता-वलयित, सुषमा-सेवित पर्ण-कुटीर !--अकबर भेष बदलकर नंगे पाँवों साथ आया था। दरख्तों की आड़ में छिप कर उसे बैठने की सलाह देते हुए तानसेन ने पर्णकुटीर की ओर उँगली से निर्देश किया। स्वामी हरिदास समाधिस्थ थे।

सम्राट् वहीं छिपकर बैठा रहा। कान खड़े थे। तानसेन बाहर निकला और पास आकर स्वामी के पावन चरणों पर माथा टेक दिया उसने।

'कौन तानसेन ?' --स्वामी हरिदास की आँखें खुल पड़ीं। अधरों पर मन्द हास्य नर्तित हो उठा--'कहो, स्वस्थ-सानन्द हो न ?'

'जी हाँ'--तानसेन श्रद्धानत खड़ा रहा।

'किस उद्देश्य से आना हुआ ?'--स्वामी ने आगे पूछा।

'जी ?'--वह बोला--'आपने वह जो राग विशेष बतलाया था न, मैं उसे भूल गया हूँ गुरुदेव !'

'कोई बात नहीं'--स्वामी हरिदास बोले--'मैं अभी बतला देता हूँ। पर पहले तुम ही गाओ, देखूं कहाँ भूलते हो।'

तानसेन ने तानपूरा उठा लिया और जानबूझ कर गलत राग अलापने लगा। स्वामी हरिदास ने रोका और तानपूरा हाथों में लिया। फिर उँगलियाँ फिरने लगीं। तारों में कंपन आना था कि चराचर झूमने लगा। संगीत मूर्त्त हो पवन-तरंगों पर तैर रहा था।

तानसेन उठकर सम्राट् के पास आया। देखा--अकबर मूर्च्छित पड़ा है। पास ही स्वच्छ सरोवर था। पर्णपुटों में जल लाकर उसने छींटे मारे तो वह होश में आने लगा, जैसे किसी सुहावने सपने से जाग रहा हो। 'कहिए, आपने सुना जहाँपनाह ?'--तानसेन ने पूछा। पर अकबर टुकुर-टुकुर ताकता भर रहा।

'तुम ऐसा क्यों नहीं गा सकते तानसेन ?'-सम्राट् ने कुछ ठहर कर पूछा।

'मैं बादशाह को खुश करने के लिए गाता हूँ जहाँपनाह'--तानसेन ने एक दीर्घ-निःश्वास छोड़ी--'पर मेरे गुरुदेव उसे खुश करने के लिए गाते हैं, जो बादशाहों का बादशाह है।'

अकबर की आँखें विस्मय से फैल गई !

['कल्याण' में श्री श्यामनन्दन]

सन् २०५६ में

कल्पना कीजिए कि हम सन् २०५६ में हैं। समस्त देश में शारीरिक श्रम एवं मानसिक श्रम के बीच की सीमा-रेखाएँ मिट गयी हैं। मानव के स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक विकास के लिए समस्त आवश्यक परिस्थितियाँ विद्यमान हैं। यद्यपि लोग राष्ट्रीय अर्थतंत्र के प्रत्येक क्षेत्र में पारमाणविक शक्ति का उपयोग कर रहे हैं, यद्यपि उन्होंने प्राकृतिक शक्तियों पर विजय प्राप्त कर ली है, फिर भी वे कमजोर नहीं हुए हैं, प्रत्युत सौ वर्ष पहले की तुलना में कहीं अधिक बलशाली दिखते हैं। वे सदा प्रसन्न रहते हैं और सर्वत्र निश्चिन्तता का अनुभव करते हैं। निवेदन है कि आप कहीं यह नहीं सोचें कि वे अपेक्षाकृत कम खाते-पीते हैं।

इक्कीसवीं शती के जैव-रसायनविद, कृत्रिम रूप से कार्बोहाईड्रेट और प्रोटीन तैयार करने में सफल हो चुके हैं। फलतः नए किस्म के खाद्य पदार्थ तैयार किए गए हैं। यद्यपि उनका पौष्टिक तत्व ठीक है और उनका स्वाद रोटी या गोश्त जैसा है, फिर भी उनके भारी-भरकम नहीं हैं। आन्तरिक इन्द्रियाँ बिल्कुल ही नए क्रियाकलाप कर रही हैं। साधारण जल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बदले हाइड्रोजन का यह आईसोटोप स्वल्प परिमाण में लेने से अवयवों के अन्दर तत्वों को खराब होने से बचाता है।

यही वजह है कि २१वीं शती में लोगों की ऊँचाई औसत के हिसाब से कहीं अधिक है। वे सब के सब चाहे उनकी उम्र कुछ भी हो, स्वस्थ हैं। उनमें कुछ की उम्र सौ वर्षों से भी अधिक होती है। फल के रस के साथ वे निर्दिष्ट परिमाण में भारी जल पीयेंगे।

क्या नवजवान और क्या बूढ़े सब के सब शारीरिक व्यायाम पसन्द करते हैं। सभी नगर उद्यान-नगरों में परिणत कर दिये गये हैं। प्रत्येक नगर में व्यायामशालाएँ, तैरने के तालाब तथा शारीरिक व्यायाम की अन्य सुविधाएँ हैं। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि इन नगरों में वृद्ध या जराग्रस्त एक भी व्यक्ति नहीं है। वे सिर ऊँचा किये तेजी से चलते हैं, उनके शरीर में स्वास्थ्य सौन्दर्य है और उनकी आँखों में ओज और उल्लास चमक रहा है।

पुनर्यौवनकी यह प्राप्ति यूं ही अचानक नहीं हुई है : यह क्रमिक प्रक्रिया है और जनता के स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के लिए तथा वार्द्धक्य के कारणों के अनुसन्धान एवं उन्मूलन के लिए राज्य द्वारा उठाये गए कदमों का परिणाम है।

जनता के स्वास्थ्य-सौन्दर्य से भी कहीं अधिक आश्चर्यजनक जीवन की नूतन विशिष्टताएँ हैं जो इन्द्रियों के असाधारण विकास से सम्बद्ध हैं।

इलेक्ट्रौनिक यंत्रों के सहारे मनुष्य की आँखें न केवल निविड़ अन्धकार में, अधोरक्त प्रकाश में वरन लघुतम पारनीललोहित प्रकाश में देख सकती हैं। समस्त रहस्यों का भेदन किया जा चुका है। मानव की दृष्टि में पदार्थ की आंतरिक बनावट तक देखने की क्षमता आ गयी है, जिस प्रकार हम एक्स-रे के चित्रों में देखते हैं।

इक्कीसवीं शती का मानव जिन चीजों को देख नहीं सकता, उन्हें आसानी से सुन सकता है, जैसे घास किस प्रकार बढ़ रही है और किस प्रकार टूटी हुई हड्डियाँ जुड़ रही हैं।

घ्राणशक्ति को भी उन्नत करना संभव हो गया है। मानव अब न केवल हजारों प्रकार की सुगन्धियों की बात की बात में पहचान करने की क्षमता रखता है, वरन् नई प्रविधि द्वारा वर्द्धित घ्राणशक्ति के द्वारा किसी वस्तु के आकार-प्रकार और स्वरूप का भी पता लगाने की शक्ति रखता है।

गन्धों के अति लघु तरंगीय स्वरूप का पता लगाने से एक नई 'टेलीसेंटिंग' इकाई द्वारा हजारों मील की दूरी पर उन्हें सम्प्रेषित करना सम्भव हो गया है। नाट्यशालाओं, घरों, कल-कारखानों और प्रयोग शालाओं के अन्दर की हवा को अब न केवल शुद्ध और ताजी रखना सम्भव हो गया है वरन उसे भीनी-भीनी गन्ध से सुवासित करना सम्भव हो गया है जिसका स्नायुमण्डल के ऊपर आह्लादकारी प्रभाव पड़ता है।

सन् २०५६ के मानव, उसके जीवन और कार्य के बारे में बहुत कुछ कहा जा सकता है और इसमें कुछ भी असाधारण बात नहीं है। हम जिन बातों की कल्पना अपने मन में संजोये रहे हैं, उनमें से अधिकांश अब हमारे दैनंदिन जीवन का अंग बन रही हैं।

['आपका स्वास्थ' में प्रो० युरी फोलोव]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक-परिचय

न्याय की रात

हिन्दी में नाटक तो बहुत लिखे गए, किन्तु उनमें से अधिकांश स्टेज पर खेले जाने की दृष्टि से अपूर्ण हैं, लेकिन श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने 'न्याय की रात' एक ऐसा नाटक प्रस्तुत किया है, जो ऐसी सभी जरूरतों से परिपूर्ण है।

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार जैसे कहानियां और विचारपूर्ण लेख लिखने में ख्याति-प्राप्त हैं, वैसे ही अभिनेय नाटक लिखने में 'ऐक्सपर्ट'! इनकी भाषा ऐसी कि जो जनसाधारण की समझ में आए।

इनकी रचनाओं में पुरानी बातों का घिसर-पिट्ट नहीं होता, अपितु नए खयालों का फैलाव रहता है। वे समाज को खोखला करने वाले तत्वों का पर्दाफ़ाश करने में विशेषता रखते हैं।

सुन्दर गेटअप सहित, परिमार्जित संस्करण, एक प्रति की कीमत–साढ़े तीन रुपये। प्रकाशक—उत्तरचन्द कपूर एण्ड सन्ज, काश्मीरी गेट, दिल्ली।

सोए खण्डहर जागे

श्री टेकचन्द्र गुप्त बहु-पठित, बहु-प्रशंसित कलाकार हैं। तभी तो इनकी अनेकों कृतियों का अनुवाद उर्दू, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी, बंगला आदि में हो चुका है।

इन्हीं की तेरह ऐतिहासिक कहानियों का संग्रह है, 'सोए खण्डहर जागे'। इन्होंने सदियों तक गुलाम रहकर कमज़ोर हुए भारत का चित्र नहीं दिया, अपितु ऐसे भारत का चित्र दिया है, जिससे सारे संसार को प्रेरणा मिली, आदर्श का ज्ञान और कर्तव्य का भान हुआ। सदियों तक गुलाम रहे भारत को श्री गुप्त ने ज्ञान, भावना और संस्कृति के माध्यम से विश्वविजेता घोषित ही नहीं, साबित भी किया है।

इस कहानी-संग्रह को पढ़ लेने पर यह अनुभव ही नहीं होता कि हमारा देश भारत कभी गुलाम रहा, अपितु गौरव से हमारी छाती तन जाती है, माथा ऊँचा होजाता है और हठात् मुँह से निकलता है—'जय भारत, जय भारत के लाल!'

मूल्य—दो रुपये। प्रकाशक—उर्मिला प्रकाशन, द्वारा—साहित्य सदन, देहरादून।

राह और रोड़े

श्री छगनलाल जैन, जैसे सफल वकील हैं, वैसे ही सफल लेखक भी! उनका विश्वास है कि दुनिया में यदि बुराई है तो अच्छाई भी है। जहाँ विनाशकारी तत्व हैं, वहाँ समाज के सेवक और पोषक भी विद्यमान हैं।

इन्हीं धारणाओं की प्रेरणा है यह लघु उपन्यास। उपन्यास बेशक लघु है लेकिन फिर भी अपूर्ण नहीं। कथावस्तु 'सेक्स'-शून्य होते हुए भी आदि से अन्त तक अति रोचक।

एक प्रति की कीमत—पौने दो रुपये। प्रकाशक—साहित्य सेवा सदन, गौहाटी (आसाम)।

—श्री मोहनजीत सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजन, भवन, भेषभूषा

सभ्यता के तीन बड़े स्तम्भ हैं

भोजन सात्विक भवन स्वच्छ, भेष स्वदेशी

नागरिकता के तीन बड़े चिन्ह हैं

तीनों को सदा ध्यान में रखिए !

★

खड्डियों तथा दूसरे उपयोग में आने वाला
१० नं० से ४० नं० तक का बढ़िया सूत

एवं

भारत भर में प्रसिद्ध कोरा-धुला-लट्ठा, धोती
चादर, मलमल व रंगीन कपड़ों के

निर्माता:—

लार्ड कृष्णा टैक्सटाइल मिल्स

सहारनपुर :: उत्तरप्रदेश

संचालक
सेठ आनन्द कुमार
फोन—३१६, ३६४, १६०

संचालक
सेठ सुशील कुमार
तार—'टैक्सटाइल्स'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० ए, ७१७

मनोहर और आकर्षक पैकिंग

आपकी बिक्री को बढ़ाता है

साहू जैन इंडस्ट्रीज़

रोहतास इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड

डालमियानगर, बिहार

देश में कागज और बोर्ड के सब से बड़े निर्माता

मुद्रक—अखिलेश द्वारा विकास प्रिंटिंग वर्क्स, सहारनपुर में मुद्रित–प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नया जीवन

अक्तूबर १९६०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कागज़ के एक छोटे पुर्जे पर
महात्मा गांधी ने आश्रम के
एक रोगी को रात में दो
बजे एक हिदायत लिखी थी।
अब यह पुर्ज़ा एक क़ीमती संस्मरण है!

विदेश के एक अज्ञात कवि
द्वारा लिखा एक पुर्जा मिला।
उसके मरने के बरसों बाद
वह उसी से अमर हो गया;
उस पर उसकी एक कविता लिखी थी।

कागज के बिना न
शास्त्र मिलते न साहित्य।
कागज़ हमारी सभ्यता की
एक पवित्र धरोहर है!

श्रेष्ठ स्वदेशी कागज़ों के निर्माता

स्टार पेपर मिल्स लि०

सहारनपुर : उत्तर-प्रदेश

मैनेजिंग एजेन्ट्स—बाजोरिया एण्ड कम्पनी, कलकत्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की प्रगति में हमारा योग

भविष्य के ये मन्दिर—हीराकुड भाखरा नांगल, तुंगभद्रा ...... उस उत्साह और दृढ़ निश्चय के प्रतीक हैं जिससे कि भारत की इस पुरातन भूमि के निवासियों ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त के वर्षों में विकट समस्याओं को सुलझाया था और आज भी उसी भांति सुलझा रहे हैं।

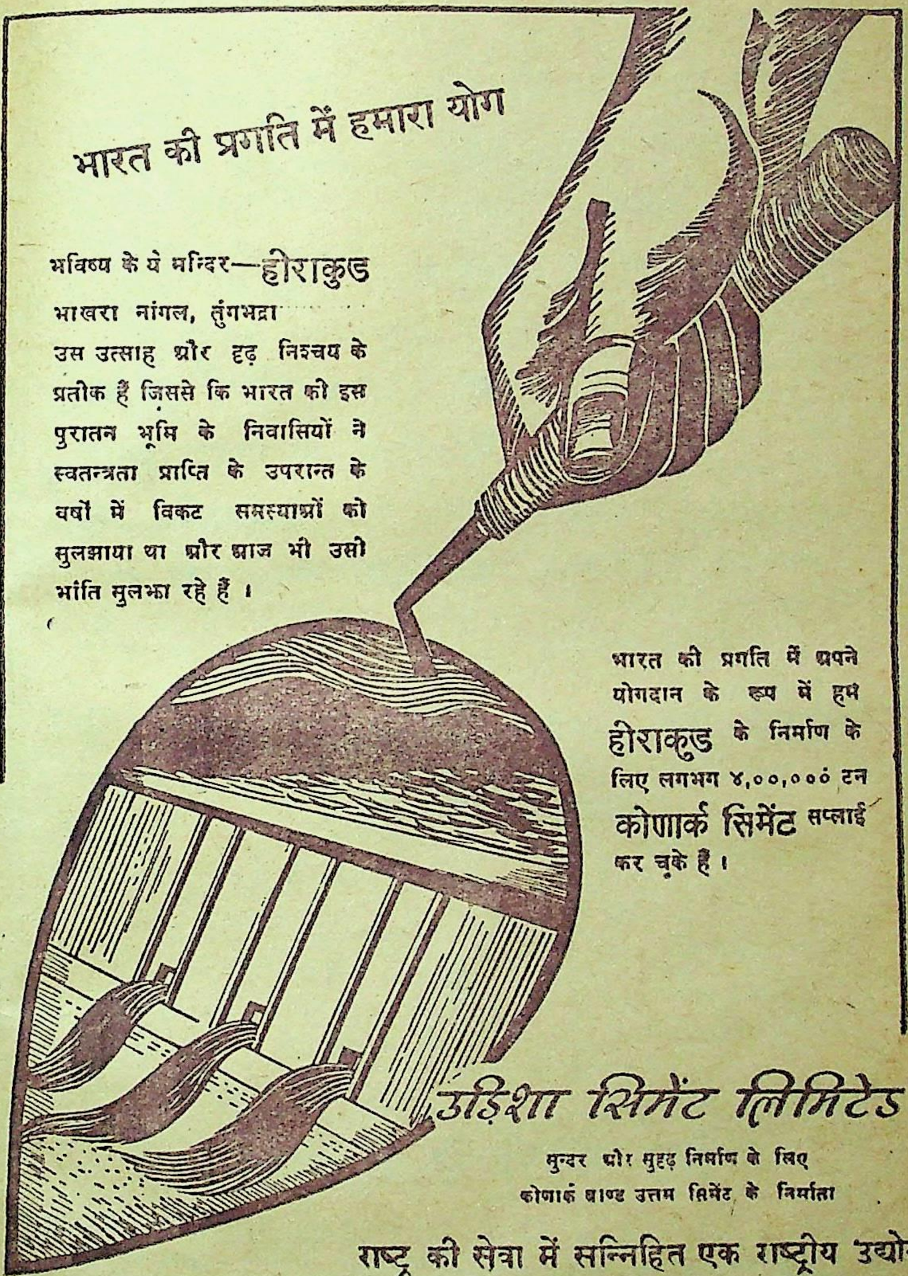

भारत की प्रगति में अपने योगदान के रूप में हम **हीराकुड** के निर्माण के लिए लगभग ४,००,००० टन **कोणार्क सिमेंट** सप्लाई कर चुके हैं।

उड़ीसा सिमेंट लिमिटेड

सुन्दर और सुदृढ़ निर्माण के लिए
कोणार्क ब्राण्ड उत्तम सिमेंट के निर्माता

राष्ट्र की सेवा में सन्निहित एक राष्ट्रीय उद्योग

★ ★ ★ ★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामू और श्यामू दो सगे भाई,
रामू स्वभाव का कड़वा,
श्यामू शान्त सज्जन,
दोनों का परिवार समृद्ध !

एक दिन रामू ने क्या कुछ कहा,
कि श्यामू भी बेकाबू होगया,
दोनों में मुकदमेबाजी छिड़,
और दोनों बरबाद हो गए !

स्वभाव का मिठास जीवन का वरदान है!
सदा मीठे रहिए !

★

श्रेष्ठ चीनी के निर्माता

गंगा शूगर कारपोरेशन लिमिटेड

देवबन्द :: उत्तरप्रदेश

जनरल मैनेजर—बी० सी० कोहली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महापुरुषों के संस्मरण
उन पद् चिह्नों के समान हैं
जिन पर चलकर
सामान्य लोग
जीवन और उसके उद्देश्यों का संधान
कर सकते हैं
सस्ता साहित्य मंडल
द्वारा प्रकाशित
यह जीवनी तथा संस्मरण - साहित्य
सब के लिए
सर्वोत्तम मार्गदर्शक है :

आत्मकथाएँ :

१ आत्मकथा (महात्मा गांधी)
संपूर्ण (अजिल्द) ४ ००
,, संक्षिप्त (अजिल्द) १ ००
२ मेरी कहानी (जवाहरलाल नेहरू)
संपूर्ण ८ ००
,, ,, ,, संक्षिप्त २ ५०
३ आत्मकथा (डा. राजेन्द्रप्रसाद) ८ ००

जीवनियां :

१ गांधी की कहानी (लुई फिशर) ४ ००
२ एक आदर्श महिला
(विनायक तिवारी) १ ००
३ लोकमान्य तिलक
(पां. ग. देशपांडे) २ ५०
४ श्रेयार्थी जमनालाल
(हरिभाऊ उपाध्याय) संपूर्ण ६ ५०
,, ,, ,, संक्षिप्त २ ००

संस्मरण-साहित्य :

१ मेरे समकालीन (महात्मा गांधी) ५ ००
२ दक्षिण अफरीका का सत्याग्रह
(महात्मा गांधी) ३ ५०
३ देशसेवकों के संस्मरण (म. गांधी) १ २५
४ अमिट रेखाएँ (सत्यवती मल्लिक) ३ ००
५ एक क्रांतिकारी के संस्मरण
(बनारसीदास चतुर्वेदी) ० ७५
६ मानवता के झरने
(ग.वा.मावलंकर) १ ५०
७ मेरे संस्मरण ,, ,, २ ००
८ मील के पत्थर (रामवृक्ष बेनीपुरी) २ ००
९ मेरी जीवन यात्रा
(जानकीदेवी बजाज) २ ००
१० मैं भूल नहीं सकता
(कैलाशनाथ काटजू) २ ५०
११ विनोबा के साथ सात दिन
(श्रीमन्नारायण) ० ५०
१२ साधना के पथ पर
(हरिभाऊ उपाध्याय) २ ५०
१३ बा, बापू और भाई
(देवदास गांधी) ० ५०
१४ बापू की कारावास कहानी
(सुशीला नैयर) १० ००
१५ बापू के आश्रम में
(हरिभाऊ उपाध्याय) १ ००

इन तथा अन्य पुस्तकों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिये और सत्साहित्य के प्रसार में अपना हाथ बटाने के लिये हमें लिखिये

सस्ता साहित्य मण्डल, (सत्साहित्य के प्रणेता, प्रकाशक और प्रसारक)
कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजन, भवन, भेषभूषा

सभ्यता के तीन बड़े स्तम्भ हैं

भोजन सात्विक भवन स्वच्छ, भेष स्वदेशी

नागरिकता के तीन बड़े चिन्ह हैं

तीनों को सदा ध्यान में रखिए !

★

खड्डियों तथा दूसरे उपयोग में आने वाला
१० नं० से ४० नं० तक का बढ़िया सूत

एवं

भारत भर में प्रसिद्ध कोरा-धुला-लट्ठा, धोती
चादर, मलमल व रंगीन कपड़ों के

निर्माताः—

लार्ड कृष्णा टैक्सटाइल मिल्स

सहारनपुर :: उत्तरप्रदेश

संचालक
सेठ आनन्द कुमार
फोन—११२, ३६३, १३०

संचालक
सेठ सुशील कुमार
तार—'टैक्सटाइल्स'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरम्भ काल - १९४०

ज़रूरी जानकारी

- प्रकाशन का समय—महीने की पहली तारीख है, पर १५ तारीख तक भी न पहुँचे, तो समझिए कि आपका अङ्क कोई दूसरे सज्जन पढ़ रहे हैं और उसके लिए कार्यालय को कार्ड लिखिए।
- वर्ष भर का मूल्य पांच रुपये और साधारण प्रति का पचास नये पैसे है।
- लेखकों से प्रार्थना है कि उत्तर या रचना की वापसी के लिए टिकट न भेजें और अपनी प्रत्येक रचना पर अन्त में अपना पूरा नाम-पता अवश्य लिखें।
- एक मास के भीतर ही बुक-पोस्ट से उनकी रचना या स्वीकृति का पत्र उन्हें मिल जाएगा और छपने पर अङ्क निश्चित रूप से सेवा में भेजा जाएगा।
- अस्वीकृत छोटी रचनाएँ वापस नहीं की जातीं। हाँ, बड़े लेख और कहानियाँ, जिनकी नकल करने में दिक्कत होती है, निश्चित रूप से वापस कर दी जाती हैं।
- 'नयाजीवन' में वे ही रचनाएँ स्थान पाती हैं, जो जीवन को ऊँचा उठाएँ, पर उपदेशक की तरह नहीं, मित्र की तरह—मनोरञ्जक, मार्ग-दर्शक और प्रेरणापूर्ण!
- 'नयाजीवन' धन-साधन पर नहीं, साधना पर जीवित है, इसलिए लेखकों को वह प्यार-मान दे सकता है, धन नहीं।
- ग्राहकों से पत्र-व्यवहार में ग्राहक-संख्या लिखने की आवश्यक प्रार्थना है।
- 'नयाजीवन' में उन चीजों के ही विज्ञापन छपते हैं, जिनसे देश की समृद्धि, स्वास्थ्य, सुरुचि और पूर्णता बढ़े।
- तार का पता विकास प्रेस और फोन नं० १५३ है।

पत्र-व्यवहार का पता

विकास लिमिटेड, सहारनपुर, उ. प्र.

नयाजीवन

विचारों का विश्वविद्यालय

अनेक राज्य-सरकारों द्वारा स्वीकृत

अक्तूबर १९६०

प्रधान संपादक

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

•

प्रबन्ध संपादक—अखिलेश

•

सह-संपादिका—कविता वाशिष्ठ

हमारा काम यह नहीं है कि इस विशाल देश में बसे चन्द दिमागी ऐय्याशों का फालतू समय चैन से काटने के लिए मनोरंजक साहित्य नाम का मैख़ाना हर समय खुला रखें! हमारा काम तो यह है कि इस विशाल देश के कोने-कोने में फैले जन-साधारण के मन में विश्रृङ्खलित वर्तमान के प्रति विद्रोह और भव्य भविष्यत् के निर्माण की भूख जगाएँ!

•

प्रेस व्यवस्थापक—रामकृष्ण शर्मा

•

प्रकाशक

विकास लिमिटेड
सहारनपुर • उत्तर प्रदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन हो पूजा की थाली, फूल बनें संस्मरण तुम्हारे !
श्री भारत भूषण, २३६ ब्रह्मपुरी, मेरठ ३

विचार और सम्मति ❀ सम्पादकीय ५

दोस्त कौन ? दुश्मन कौन ? ❀ कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ६

बून्द से भर दे पारावार ! श्री राजेन्द्र कुमार माहेश्वरी
१६, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली १४

आचार्य श्री जुगलकिशोर के साथ ! श्री मोहन गुप्त
२०/२ एस. एन. राव रोड, कलकत्ता–३८ १५

सड़क और सृष्टि श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी
१०६/१६८ जवाहर नगर, कानपुर १६

रबर श्री बसन्तकुमार शाक्य
राजकीय इण्टर कालेज, बुलन्दशहर २२

यह तो मैं पहले ही जानती थी ! श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय
डालमियानगर (बिहार) २३

मेजर जनरल श्री यदुनाथसिंह; श्री घनश्याम नारायणसिंह
महान जीवन, महान मरण ? सैण्ट्रल ब्रेल प्रेस, देहरादून २५

तुम्हें क्रोध क्यों नहीं आता ! श्री महेशप्रसाद विद्यार्थी
रजिस्ट्रार इण्डस्ट्रियल ट्रिब्यूनल्स उ. प्र.
७, स्ट्रैची रोड, इलाहाबाद २८

ये शानदार जनाज़े ! श्री ओमप्रकाश नागपाल
क्रिश्चियन कालेज, इन्दौर २६

सरदार वल्लभभाई पटेल;
एक सर्वांगपूर्ण व्यक्तित्व ! श्री प्रद्युम्न पण्डित ३२

अभार्य और उपेक्षा से मत डरो ! श्री रामनाथ 'सुमन'
७७ लूकरगंज, इलाहाबाद ३६

अपने पढ़ने के कमरे में ❀ स्तम्भ ३८

अतापता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अति भावुकता युग की तरुणाई का सर्वव्यापक रोग है। यह कभी राजनीति का झोंका खाकर उभरता है, तो हड़ताल की कराह सुनाई पड़ती है और कहीं प्रणय के प्रकम्प से यह उभरता है, तो गीतों के फूहड़ तरन्नुम में सिसकियाँ लेता है।

भारत भूषण

तरुण भी हैं और प्रणय-गीतों के लेखक भी, पर एक संयोग कि महामारी से फैले इस रोग से मुक्त और जीवन में स्वाभिमानी सन्तुलन, तो गीतों में विचार एवं भावना का स्वस्थ समन्वय।

कहूँ कि ईमान की मुद्रास्फीति के इस युग में अपने मोल और अपने ही तोल सुलभ एक परिश्रमी साधक!

⊙

जीवन हो पूजा की थाली,
फूल बनें संस्मरण तुम्हारे !

श्री भारत भूषण

डर लगता है शीश झुकाते, अपने चंदन-सुमन चढ़ाते !
कहीं न मेरा भाल, कलंकित कर दे पावन चरण तुम्हारे !!

मन ने कभी की नादानी,
जो तुमको पाने को मचला,
जैसे, नन्हा जुगनू, सूरज—
की पूजा करने को निकला,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुमको अपनी पीर सुनाऊँ, इतनी शक्ति कहाँ से लाऊँ !
सावन-भादौं बन जाएँगे, धुले गगन से नयन तुम्हारे !!

सारी उम्र धुआँ करने को,
मन की दबी आग काफ़ी है,
चन्दा की बदनामी को बस,
उसका एक दाग़ काफ़ी है,

यदि मुझको तुम अंग लगाओ, सोच समझ बाँहें फैलाओ !
काले पड़ जाएँगे मुसकानों वाले आभरण तुम्हारे !!

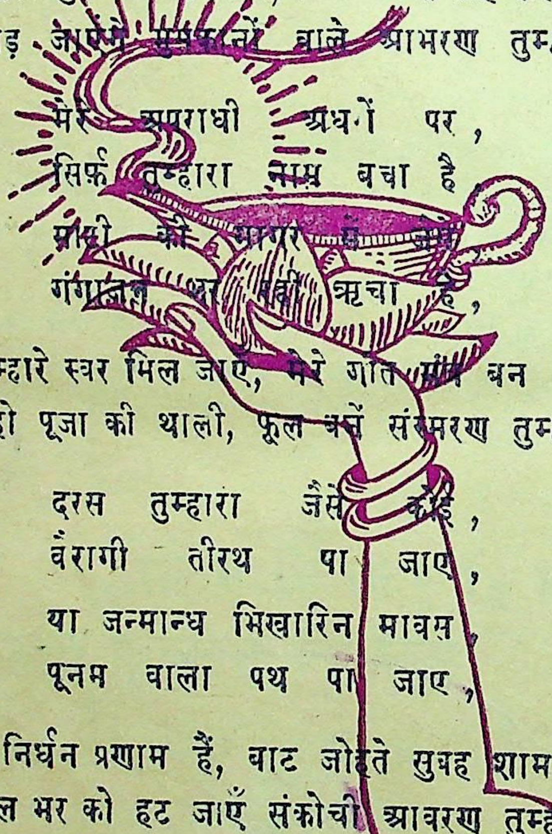

मेरे अपराधी अधरों पर,
सिर्फ़ तुम्हारा नाम बचा है,
पापी को अगर [illegible] जो
गंगाजल [illegible] वही ऋचा है,

अगर तुम्हारे स्वर मिल जाएँ, मेरे गीत मीत बन जाएँ !
जीवन हो पूजा की थाली, फूल बनें संस्मरण तुम्हारे !!

दरस तुम्हारा जैसे कोई,
वैरागी तीरथ पा जाए,
या जन्मान्ध भिखारिन मावस,
पूनम वाला पथ पा जाए,

सकुचाए निर्धन प्रणाम हैं, बाट जोहते सुबह शाम हैं !
शायद पल भर को हट जाएँ संकोची आवरण तुम्हारे !!

डर लगता है शीश झुकाते, अपने वंदन-सुमन चढ़ाते !
कहीं न मेरा भाल कलंकित कर दे पावन चरण तुम्हारे !!

卐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार और सम्मति

यह गम्भीर प्रश्न

बहुत दिन हुए किसी पत्र में एक समाचार पढ़ा था कि एक महिला १७ साल से प्रतिदिन सिनेमा देखती है और एक दिन भी ऐसा नहीं गया कि वह सिनेमा नहीं गई हो।

उसके इस शौक के बारे में एक पत्रकार ने उससे बातचीत की, तो उसने कहा—"मैं प्रतिदिन सिनेमा देखती हूँ, पर प्रतिदिन नई फ़िल्म नहीं देखती। मैं एक फ़िल्म को तीन बार देखती हूँ, इस प्रकार चौथे दिन नई फ़िल्म का नम्बर आता है।"

पत्रकार ने आश्चर्य से पूछा—"एक ही फ़िल्म तीन बार क्यों देखती हैं आप ?"

"एक बार देखने से काम नहीं चलता, इसलिए तीन बार देखती हूँ।" उन्होंने कहा था—"पहले दिन मैं कहानी का मजा लेती हूँ; दूसरे दिन संवादों और अभिनयों की कला का लुत्फ़ उठाती हूँ और तीसरे दिन उस फ़िल्म के सन्देश को समझती और चिन्तन करती हूँ।"

सोचता हूँ कि ख़ूब थी वह महिला और उसका फ़ार्मूला कि एक ही चीज़ को तीन बार देखकर वह उसके तीन तत्वों को ग्रहण करती थी। उसकी बात सोचते-सोचते मेरा ध्यान सहसा अपने राष्ट्र के महान् पर्व दीपावली और होली पर केन्द्रित हो गया और मैंने सोचा—आधी शताब्दि से अधिक वर्षों में हर साल दीपावली देखी है, उसका आनन्द लिया है, पर उस महिला की तरह कभी इस पर्व के तत्वों का विश्लेषण मैंने नहीं किया।

विश्लेषण का भाव उगा, तो चिंतन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की चेतना जागी और तब सामने आया कि आधी शताब्दि की दीपावली के भी तीन ही रूप हैं। बचपन में जो दीपावली देखी थी, वह महकते दीपों की दीपावली थी--हाँ, दीपों की नहीं, महकते दीपों की। यह महक भी दो तरह की। खाद्य सामग्री में मिलावट तब भी होती थी, पर ऐसी नहीं कि किसी भी मोल शुद्ध चीज़ का मिलना ही असम्भव हो। पिता जी जो सरसों का तेल लाते, उसमें सरसों के फूलों का पुनीत पीलापन ही न होता, भीनी गन्ध भी होती। उसे हम दीपों में भरकर जलाते, तो वातावरण महक-महक उठता। इस महक में एक और महक भी मिली होती। वह थी मा, भाभी और बहनों के चेहरों पर इठलाती मांगलिक भावना की महक! उससे दीपावली त्यौहार से अधिक पर्व होजाता, जिसमें दर्शनीयता से अधिक पूजनीयता के भाव होते, शारीरिकता से अधिक मानसिकता होती—कहूँ कि बाह्य से अधिक आन्तरिक!

यौवन के चढ़ाव में जो दीपावली देखी थी, उसमें दीपों के साथ मोमबत्तियाँ बढ़ गई थीं और फुलझड़ियाँ भी! हम दीपों की पंक्तियों में मोमबत्तियों की कतारें सजाते और फुलझड़ियाँ छुड़ाते। इस प्रकार दीपावली की दर्शनीयता बढ़ गई थी और पूजनीयता कुछ कम हो गई थी। यौवन के उतार में १९५० के बाद जो दीपावली देख रहा हूँ, उसमें दीपों, मोमबत्तियों और फुलझड़ियों के साथ जो नई चीज़ बढ़ गई है, वह है पटाखा; मामूली पटाखा नहीं, धड़ाकेदार एक से एक पटाखा कि छूटे, तो युद्ध का वातावरण चारों ओर छा जाए! सचाई यह है कि पटाखों ने दीपों, मोमबत्तियों और फुलझड़ियों के बीच अपनी जगह नहीं बनाई, वे उन सब पर छाते जा रहे हैं। दीप, मोमबत्ती और फुलझड़ी का समय पहले जितना ही सीमित है—दीपावली की रात के कुछ घण्टे, पर पटाखे तो अब दिनों से बढ़ कर सप्ताह की सीमा में छा गए हैं। इस सीमा की गहराई जाननी हो, तो हम एक नगर में यह जाँचें कि रोशनी पर कितना खर्च हुआ और आतिशबाजी पर कितना? मेरा विचार है कि पहले से दूसरा खर्च तीन-चार गुना अधिक होगा—कहीं-कहीं १०-२० गुना अधिक!

दीपावली के साथ ही भारत का दूसरा बड़ा त्यौहार है होली। दीपावली जन-जन के मन को उल्लास से भर देती है, तो होली उन्माद से। क्या दीपावली की तरह होली के रूप में भी कुछ परिवर्तन हुए हैं? बचपन में होली आती, तो पिता जी टेसू के फूल लाते, बाँस की पिचकारी भी, लाल गुलाल भी। मा रंग बनाती उन फूलों को गरम पानी में पका कर और हम दिन भर चलाते लोगों पर पिचकारियाँ। इस रंग में भीनी महक होती, तो बासन्ती लहक भी। कपड़े खिल उठते। खूब याद है कि कोई लाल नीला रंग डालता, तो वह हल्की बात समझी जाती; कहा जाता यह बात गलत है।

शाम को हम मुहल्ले में होली पूजने जाते। माएँ बालकों के गले में लड्डू, सबूनी, छुहारे और टेंटी के हार पहनातीं, गोबर के बने बड़कुल्लों के हार हम होली पर चढ़ाते। होली की परिक्रमा करते और प्रहलाद के सत्य की कथा सुनकर बड़ी से बड़ी ज्वाला में भी सत्य के अजेय होने की भावना पाते। फाग के दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिचकारियाँ फेल हो जातीं और लोटे उछलते, बाल्टियाँ उलटतीं चारों ओर मस्ती का आलम छा जाता। इस मस्ती में जात-बिरादरी की दीवारें ही नहीं टूटतीं, छूत-अछूत की किलेबन्दी भी ढह जाती है। उस समय की भाषा में नीचे कहे जाने वाले अछूत या छोटी जातियों के लोग गारा, मिट्टी उछालते, गुलाल का काम धूल और स्याही से लेते; हारों का पुराने जूतों से, वाहन का गधों से और जहाँ पाते पंडितों तक को सानते। इस तरह सामाजिक विषमता के उस नरक में भी होली-फाग की मानवीय समता का एक नाटकीय प्रदर्शन होता और गढ़ी-मढ़ी विषमता टूक-टूक हो जाती, कम से कम उस दिन !

यौवन के उभार में जो होली देखी, उसमें टेसू के फूलों की जगह डिब्बों के रंग आ गए थे, पूजा का भाव मन्द पड़ गया था, हार्दिकता की जगह प्रदर्शन बढ़ गया था और विषमता की दीवारें पहले से मजबूत हो गई थीं, ऊँचे लोग और ज्यादा ऊँचे होगए थे और नीचे लोग और ज़्यादा नीचे, पर यौवन के उतार में १९५० के बाद जो होली देख रहा हूं, उसमें हार्दिकता बहुत कम—कम से कम और हुल्लड़ अधिक है। ऊँच-नीच की दीवारें कानून और समय ने तोड़ दी हैं, संविधान ने मानवीय एकता की घोषणा कर दी है और युग ने प्रतिष्ठा की। अब कोई किसी से दबा-बुचा नहीं है और सच तो यह है कि होली का काम भी अब उसी तरह पूरा हो गया है; जैसे १५ अगस्त को स्वतन्त्रता के आंदोलन का। भारत का जनमत अब स्वतन्त्र है। न किसी पर गुलामी का बोझ है, न सामाजिक साधनों का। इसके सुफल तो लाखों हैं, पर कुफल भी हैं—आज का नागरिक शासन के आतंक से भयहीन होकर अनुशासनप्रिय नहीं हुआ, उच्छृंखल हो गया। होली के दिनों चलती रेल में कीच, पत्थर, गोबर फेंकने में असाधारण वृद्धि इसी भावना का प्रदर्शन है।

महत्वपूर्ण राष्ट्रीय प्रश्न यह है कि दीपावली और होली के रूप व्यवहार में जो ये परिवर्तन हुए हैं, क्या इनका कोई ऐसा अर्थ है और फलितार्थ है कि उसके द्वारा हम अपनी बदलती हुई सामाजिक मनोवृत्ति या राष्ट्रीय संस्कृति का संकेत पा सकें।

प्रश्न का उत्तर है हाँ—और निश्चित रूप से हाँ। पहले हमें प्रकाश प्रिय था, अब धड़ाका प्रिय हो गया है! पहले पाबन्दियों की कसमसाहट में हम उन्मुक्तता चाहते थे, अब बंधन-हीनता चाहने लगे हैं। पहले हम पाना चाहते थे कि चिड़िया हमारे कन्धे आ बैठे, अब एक झपट्टे में उसे पकड़ना चाहते हैं !

धर्म की भाषा में, पहले हमारा राष्ट्रीय मानस सात्विक था, अब वह राजसिकता से बढ़ तामसिक होता जा रहा है।

राजनीति की भाषा में, पहले हमारा राष्ट्रीय मानस सुधार की आस में लीन था, अब क्रांति की प्यास में डूबा है।

राष्ट्र के राजनेताओं और चिन्तकों का उत्तरदायित्व है कि इस मानसिक परिवर्तन पर इसके अर्थों-फलितार्थों पर गहराई से विचार करें और तामसिकता की बाढ़ रोक कर, राजसिक उत्तेजना को प्रेरणा दें। साथ ही क्रांति की अराजकता को श्रम-साधन की निर्माण-वृत्ति से जोड़ने के उपाय करें। यह दियें और पटाखे का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही मसला नहीं है, यह तो निश्चित रूप से संस्कृति का, संस्कारों के परिवर्तन का गम्भीर प्रश्न है।

निकम्मे भक्त

निकम्मे भक्तों द्वारा अपने पूज्य की मानसिक हत्या के उदाहरणों से भारत का इतिहास भरा पड़ा है और अपने पूज्य की प्रतिष्ठा बेचकर मौज उड़ाने के उदाहरणों से भी। दुःख है कि अपने युग के श्रेष्ठ कवि और श्रेष्ठतम मनुष्य महाकवि निराला को भी ऐसे ही भक्तों ने घेर रखा है।

पत्रों में जब तब ये लोग उस निराला के नाम से भीख माँगते रहते हैं, जो अपनी नई रेशमी रजाइयाँ और उम्दा कम्बल भिखमंगों को बाँटता रहा है और जिसने स्वयं खिचड़ी खाकर दूसरों को हलवा खिलाया है। इन भिखमंगे भक्तों की संस्था का नाम है निराला परिषद् !

इस परिषद् की नई विज्ञप्ति पत्रों में प्रकाशित हुई है कि निराला जी सख़्त बीमार हैं और स्थानीय अधिकारियों को उनके इलाज के लिए समुचित व्यवस्था करनी चाहिए।

क्या निराला जी कोई सरकारी आदमी हैं ? और क्या उनके ये निकम्मे भक्त उनके मरने पर कफ़न और लकड़ियों के लिए भी स्थानीय अधिकारियों के पास ही दरखास्त भेजेंगे ? निकम्मेपन और निर्लज्जता की भी कोई सीमा तो होनी ही चाहिए !

पैसा और खुशी

पैसे की प्यास युग की सबसे बड़ी प्यास है। हाथी के पैर में सबके पैर समा जाने की कहावत पुरानी है, पर पैसे की प्यास में सब प्यासों के समा जाने का अनुभव नया है। और इसी लिए इस युग की कहावत है—पहले पैसा फिर भगवान ! अब धन से धर्म नहीं, धर्म से धन बनाया जाने लगा है। चारों ओर छाया मिलावट और भ्रष्टाचार का अभिशाप इसी प्यास का फल है।

पैसे की प्यास के इस बाढ़-युग में लंदन से एक समाचार मिला है कि ३० वर्ष के युवक श्री रैमण्ड स्मिथ को एक फुटबॉल पूल जीतने से अनायास जो २८ हज़ार पौण्ड मिले, उसने उन्हें दान कर दिया है।

रैमण्ड साधारण स्थिति का आदमी है, पर सचमुच खिलाड़ियों की भावना का वह प्रतीक है। इस भारी रकम को दान करते हुए उसने कहा—"और चाहे जो हो, पर पैसे से खुशी हासिल नहीं हो सकती !"

रैमण्ड की पत्नी ने कहा—"इस धन से छुटकारा पाना तो अच्छा है; क्योंकि इससे हमें कोई खुशी हासिल नहीं हुई; उल्टे इसके कारण हमारी चिन्ता ही बढ़ी है !"

ठीक है, आदमी को खुशी मिलती है निर्द्वंदता से और धन जब आवश्यकताओं से अधिक बढ़ता है, तो निर्द्वंदता को खा जाता है। इस तरह जीवन में आनन्द की जगह एक खास तरह की उधेड़ बुन घर कर लेती है। रैमण्ड स्मिथ और उसकी पत्नी का अभिवादन कि उन्होंने आनन्द के बदले उधेड़बुन का सौदा खरीदने से दृढ़तापूर्वक इन्कार कर दिया !

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोस्त कौन ? दुश्मन कौन ?

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

"आज बहुत मुश्किल है, हाँ भाई, आज बहुत मुश्किल है।"

"चचा, नमस्ते।"

"नमस्ते भाई, नमस्ते। आओ बैठो, आज तो बहुत दिनों में दिखाई दिए—क्या बात है ?"

"बहुत दिनों में ही सही, हम दिखाई तो दे गए, पर चचा, हमें तो कोई दिखाई ही नहीं देरहा है ?"

"कौन नहीं दिखाई देरहा है तुम्हें ? मैं ? मैं लेटा तो हूँ सामने पलंग पर ?"

"हाँ, तुम तो लेटे हो चचा, और दिखाई भी दे रहे हो, पर तुम्हारा पार्टनर दिखाई नहीं दे रहा है।"

"मेरा पार्टनर ? मेरा पार्टनर कौन ? जब से तुम्हारी चची भगवान को प्यारी हुई, तुम तो जानते ही हो एक पहिए की गाड़ी घिसट रही है। फिर तुम कौन से पार्टनर की खोज कर रहे हो यहाँ ?"

"चचा, उस पार्टनर की, जिससे तुम अभी अभी बातें कर रहे थे और कह रहे थे कि बहुत मुश्किल है, आज बहुत मुश्किल है—हमने खिड़की से सुनी थी तुम्हारी आवाज।"

"ओह ! यह बात है। अरे, वह तो ज़िन्दगी के कडुवे अनुभवों की टीस थी, जो दिल ने दिल से कही थी। उसके लिए पार्टनर सार्टनर की कहाँ ज़रूरत पड़ती है, पर भईया, तुम तो पढ़ लिख कर भी चुकन्दर ही रहे !"

"खैर चचा, हम चुकन्दर ही भले, तुम तीस मारखाँ सिकन्दर रहो, पर यह तो बताओ कि ज़िन्दगी के कडुवे अनुभवों की वह टीस क्या है; यानी वह कौन-सा काम है, जो आज बहुत मुश्किल होगया है—बहुत मुश्किल।"

"अरे भाई, काम तो मुश्किल होता ही है—मुश्किल न हो, तो काम क्या। तुमने अमेरिका के महान पुरुष वाशिंगटन का नाम तो सुना ही है। वह कहा करते थे कि जिस काम में मुश्किलें, कठिनाईयाँ, विघ्न, बाधाएँ नहीं, उसे मैं आदमी के करने लायक काम नहीं समझता, पर आज जो काम मुश्किल हो गया है, वह है, दोस्त और दुश्मन की पहचान।"

"वाह चचा, वाह ! तुम तो बात क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हो गैस के गुब्बारे उड़ाते हो। मैंने सोचा, जाने जिन्दगी के अनुभवों की कौन-सी टीस चचा को बेचैन कर रही है, पर पुराने युग में किसी ने पहाड़ खोद कर चुहिया निकाली थी, तो चचा ने ऐटम के इस युग में समुद्र सोख कर मच्छर ही निकाल धरा।"

"अच्छा जी, तो हमने समुद्र सोख कर मच्छर निकाल धरा, पर भाई मेरे, बात को हवा में उड़ाना आसान है, समझना मुश्किल है, इस लिए बात की गहराई में उतरो और सोचो कि विज्ञान ने आदमी की ज़िन्दगी में लाख सुगमताएँ पैदा करदी हों, पर दोस्त और दुश्मन की पहचान, तो आज मुश्किल से भी मुश्किल होगई है।"

अरे चचा, तुम्हारी इस बात से कौन इन्कार करता है कि दोस्त और दुश्मन की पहचान बहुत मुश्किल है, पर तुम ज़रा मेरी बात की गहराई में भी तो उतरो कि दोस्त और दुश्मन की पहचान आज मुश्किल है, तो वह सुगम कब थी ?

तुम मेरी तरफ टुकर-टुकर क्या देख रहे हो ? अच्छा लो बताओ, उस बेचारी केकयी को थी दोस्त और दुश्मन की पहचान, जो मन्थरा के हिण्डोले पर ऐसी चढ़ी, ऐसी चढ़ी कि उतर ही न पाई और गुड़ का गोबर कर बैठी।

"महारानी जी, आपका पूत गद्दी पर बैठे या दूसरी का, हम तो नौकर के नौकर ही रहेंगे। आपका हित-अहित इस जले जी से नहीं सहा गया, तो इतनी बात आप से कह दी।" जब मन्थरा ने केकयी से यह कहा, तो वह दोस्त थी या दुश्मन ? घटनाओं ने बताया कि वह दुश्मन थी, पर केकयी ने तो उसे दोस्त ही समझा।

बताओ, समझा या नहीं ? अच्छा लो और लो, जब पूरे राज्य के बदले कुल पाँच गाँव देकर फैसला कर लेने की बात कृष्ण ने दुर्योधन से कही, तो कृष्ण दुर्योधन का दोस्त था या दुश्मन ? घटनाओं ने बताया कि वह दोस्त था, पर दुर्योधन ने तो उसे अपना दुश्मन ही समझा ! समझा या नहीं ? तो चचा, दोस्त और दुश्मन की पहचान तो सदा ही मुश्किल रही है, यह कोई नई बात नहीं कि यह आज ही मुश्किल होगई !

"लोक कथाओं में तो आपकी बहुत दिलचस्पी है ? तभी तो जाने कहाँ कहाँ से लाकर भर रखी हैं इस कमरे में इतनी पुस्तकें ! चचा, सच बताओ, इनमें आधी पुस्तकें तो ज़रूर उड़ाई हुई होंगी ? अच्छा छोड़ो इस बात को, नाराज़ न हो, मैं माने लेता हूँ कि ये सब पेशगी दाम देकर खरीदी हुई हैं, पर यह तो बताओ कि इनमें आपने वह कान काटने की लोककथा तो ज़रूर पढ़ी होगी ?

"कान काटने की कौन-सी लोक-कथा ? किसका कान काटने की ?"

"चचा, माँ का कान काटने की लोक-कथा ! लो, तुम भूल गए हो, तो मैं सुनाता हूँ। एक चोर बादशाह के सामने पेश किया गया और चोरी सिद्ध होगई। उस ज़माने में चोरी की सज़ा फाँसी थी, तो बादशाह ने उसे भी फाँसी की सज़ा दी ! कायदे के अनुसार उस चोर से पूछा गया कि तुम मरने से पहले क्या चाहते हो ? उसने कहा—मैं अपनी मा से मिलना चाहता हूँ।

उसकी मा को बुलाया गया, तो उसने कान में बात करने के बहाने किटकिटा कर अपनी मा का कान काट लिया। मा बहुत चिल्लाई और खून से उसके कपड़े तर हो गए। सबने बेटे को धिक्कारा, तो उसने कहा—"मैं जब पहले ही दिन मदरसे में पढ़ने गया, तो एक विद्यार्थी के कुछ पैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुरा लाया। चोरी की थी, पर चोर तो था नहीं; इस लिए लाकर वे पैसे मा को देदिए। मा ने मुझे लाड़ से गोदी में बैठाया और मिठाई खाने को दी—बस इस घटना ने मुझे चोर बनाया और यह फाँसी दिखाई। उस दिन यह मुझे धिक्कारती, धमकाती, समझाती-बुझाती तो मैं इस बुराई में क्यों फँसता ?"

सुन ली लोक कथा ? तो अब बताओ कि जब मा ने बेटे को लाड़ से गोद में बैठा कर मिठाई खिलाई, तो वह अपने बेटे की दोस्त थी या दुश्मन ? बेटे ने समझा, तो उसे दोस्त ही था। समझा था या नहीं ? पर बाद की घटना ने बताया कि वह उसकी दुश्मन थी, दुश्मन; तो चचा, दोस्त और दुश्मन की पहचान, तो सदा ही मुश्किल रही है, आज क्या ! हां, मेरी बात का यह मतलब नहीं कि आज यह मुश्किल नहीं है, आज भी वह मुश्किल है और बहुत मुश्किल है, पर छोड़ो इस पचड़े को और लो, अब यह बताओ कि दोस्त और दुश्मन की पहचान का ऐसा कौन-सा नया अनुभव हुआ है, जो उसकी धुन सिर पर इस तरह सवार है, जैसे नेपोलियन पर विश्वविजय की धुन सवार थी कि एकांत में लेटे-लेटे भी उसी के राग गा रहे थे ?"

"अच्छा, यह बात सुनने के लिए ही यह भूमिका बांध रहे थे तुम ! वह कोई खास बात नहीं है और है भी खास बात—है क्यों नहीं ?"

"चचा, तुम भी कमाल के आदमी हो। कहते हो कि वह कोई खास बात नहीं है और उसी साँस में कहते हो कि है भी खास बात; अब कोई समझे, तो क्या समझे ? खास बात या बे-खास बात।"

"अरे भाई, इसी का नाम तो है अकल का फेर और यह बात अब साफ है कि तुम उस फेर में बुरी तरह फँसे हुए हो। असल में समझने की बात यह है कि कोई बात खास नहीं होती और हर बात खास होती है। अच्छा लो, अब इस गोरख-धन्धे से बाहर निकलो और यह समझो कि बात का खास या बे-खास होना उसे देखने समझने के दृष्टिकोण पर निर्भर है।"

"कोई आदमी परेशानी में फँसा हो, तो उसे उससे बाहर निकालने में मदद देना धर्म का काम है या अधर्म का ? मैं जानता हूँ, तुम्हारा उत्तर है—धर्म का और जो सुनेगा वह यही उत्तर देगा, पर मैं कहता हूँ कि यह घोर अधर्म का काम है। अब तुम सोच रहे हो कि मेरे दिमाग में भूसा भरा है, पर मैं जानता हूँ कि कुछ देर बाद ही तुम्हारी नजरों में यह भुस कश्मीर का शुद्ध केसर हो जाएगा।"

चार पाँच दिन हुए मैं हरिद्वार गया था। चलती रेल में एक टिकट चैकर हमारे डब्बे में आए और उन्होंने सबके टिकट देखे। दो नौजवान एक साथ बैठे थे। उनमें से एक तो टिकट चैकर को देखते ही दूसरी तरफ के दरवाजे से उतर नौ-दो-ग्यारह हुए, पर दूसरे को इतना मौका नहीं मिला; क्योंकि टिकट चैकर ने झपट कर उनका रास्ता रोक लिया और कहा—"पहले टिकट दिखाइए।"

"टिकट उनके पास था नहीं, तो टिकट चैकर की खुशामद करने लगे, पर वह आदमी ईमानदार और सख्त था, उसने साफ कह दिया कि आपको साढ़े तीन रुपए देने पड़ेंगे, मैं इसमें कुछ नहीं कर सकता।"

"अब वह नौजवान गिड़गिड़ाने लगा, तो एक मुसाफिर ने कहा—"अरे भाई, छोड़ भी दो बेचारे को; क्यों तंग करते हो ?"

टिकट चैकर ने शान्ति से कहा—"देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पैसे की चोरी करने वालों को आप बेचारा कहते हैं भाई साहब !"

एक दूसरे साहब बोले—"साढ़े तीन रुपए में कहीं देश का काम नहीं रुकता बाबूजी !"

ज़रा गर्म होकर टिकट चैकर ने कहा—"जी हाँ, साढ़े तीन रुपए में तो देश का काम नहीं रुकता, पर इन बिना टिकट सफर करने वालों से तो देश को कई करोड़ रुपए साल का नुकसान होता है।"

अब बहस शुरू होगई और उसमें बहुत लोग शामिल होगए। खास बात यह है कि हर एक मुसाफिर उस नौजवान का तरफ़दार था और उसे छोड़ने की सिफारिश कर रहा था। सबका आधार यह था कि टिकट चैकर में इन्सानियत होनी चाहिए और इन्सानियत का तकाज़ा है कि परेशानी में फँसे आदमी पर दया की जाए ! झल्लाकर टिकट चैकर ने कहा—"किसी बिना टिकट मुसाफिर को छोड़ देने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। मैं ऐसा करूँ, तो कानून और धर्म, दोनों की नज़रों में अपराधी बनूँगा और जहाँ तक दया का सम्बन्ध है, उसके बारे में मेरा निवेदन है कि यदि परेशानी में फँसे आदमी को उबारना चाहते हैं, तो उसके बदले में आप मुझे साढ़े तीन रुपए दे दीजिए। मुझे उनसे ही लेने की ज़िद नहीं है।"

मैं अपनी जगह बैठा, सबकी बातें सुन रहा था और सबके चेहरों को गौर से देख रहा था। मुझे विश्वास था कि कोई भी पैसा नहीं देगा, पर बात की बात में सबने थोड़ा-थोड़ा चन्दा कर साढ़े तीन रुपए टिकट चैकर को दे दिए और टिकट बनवा दिया। उनकी बातचीत और चेहरे से स्पष्ट था कि वे सब यह अनुभव कर रहे थे कि उन्होंने इन्सानियत का, धर्म का काम किया है।

'टिकट चैकर साहब दूसरे डब्बे में चले गए और चन्दा देने वाले लोग बहुत देर तक उनकी सख्ती और अपनी सखावत-उदारता का बखान करते रहे। अब मैं आपसे पूछता हूँ कि कोई आदमी परेशानी में फँसा हो, तो उसे उससे बाहर निकालने में मदद देना धर्म का काम है या अधर्म का ? मतलब यह कि मैं आपसे साफ़-साफ़ पूछ रहा हूँ कि उन सब लोगों ने उस नौजवान को गिरफ्तारी से बचाकर दोस्त का काम किया या दुश्मन का ?"

"चचा ! उन्होंने काम तो दोस्त का ही किया है।"

"खाक किया है दोस्त का काम ! दो दिन से मेरा दिमाग इस बात से भिन्नाया हुआ था, पर तुम्हारी बात से तो वह अंगार ही होगया है। उन लोगों ने उस नौजवान से भी दुश्मनी की और अपने प्यारे देश के साथ भी।"

"यह किस तरह चचा !"

"यह इस तरह कि उन्होंने बिना टिकट रेल में सफर करने वाले उस नौजवान की और उस जैसे दूसरे चोरों की हिम्मत बढ़ाई और इस तरह उस काम की मदद की, जिससे हमारे प्यारे देश को करोड़ों रुपए साल का नुकसान होता है। सबसे परेशानी की बात यह है कि वे सब पढ़े-लिखे समझदार थे, पर उन्हें दोस्त और दुश्मन की पहचान न थी !"

"मैं वहाँ से बुरी मूड में लौटा, तो स्टेशन से घर आ रहा था कि देखा दो विद्यार्थी आपस में बातें करते जा रहे हैं। एक ने दूसरे से कहा—"तेरी तबियत इतने दिन से खराब है, तू इलाज क्यों नहीं करता ?"

पहले ने कहा—"करता क्यों नहीं ! बूढ़े हकीम जी की दवा खा तो रहा हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे ने कहा—"उसे कुछ भी नहीं आता, पता नहीं तू बार-बार उसी की दवा क्यों खाता है ?"

पहले ने कहा—"बात यह है कि वे कुछ भी खाने को मना नहीं करते—चाट खाओ, आइस्क्रीम खाओ, बर्फ पीओ पर दूसरे सब डाक्टर-वैद्य तो मुँह पर छींका बांधते हैं ।"

सुन कर दिमाग और भी गर्म होगया । अब बताओ तुम्हीं कि वह बूढ़ा हकीम अपने बीमारों का दोस्त है या दुश्मन ।

"चचा, तुम उन दो विद्यार्थियों की बातें सुनकर भी भिन्ना गए और गरम हो उठे, तो जिन दो विद्यार्थियों की बातें मैं अभी रास्ते में सुनकर आ रहा हूँ, वो तुम सुन लेते, तो शायद सड़क पर भरत नाटयम् करने लगते !"

"सड़क पर ही भरत नाट्यम् करने लगते हम ! अच्छा, ऐसी क्या बातें कर रहे थे वे ?"

"लो सुनो, वे अपने कालेजों की बातें करते जा रहे थे । दोनों अलग-अलग कॉलेजों के विद्यार्थी थे वे । एक अपने कालेज के प्रिंसिपल की शिकायत कर रहा था—कम्बख्त को जाने किसने प्रिंसिपल बना दिया । वह तो जेलर होने लायक है जेलर । सुना है अब तो जेलों में भी सख्ती नहीं रही, पर मजाल है कि कहीं ढील हो जाए और हमारा प्रिंसिपल न बरसे । सिगरेट के नाम से उसे चिढ़ है । किसी विद्यार्थी पर उसे सिगरेट पीने का शक भी हो जाए, तो उसे गले की खराश से कैंसर तक का पाठ पढ़ाएगा और घण्टा भर उसका पीछा न छोड़ेगा । प्रोफेसरों के पीछे पड़ा रहता है कि यह पढ़ाओ, यों पढ़ाओ । कालेज टाइम के बाद एक्स्ट्रा क्लास घेर लेता है और खुद पढ़ाने लगता है । बात बात में उपदेश करता है और क्या बताऊँ तुम्हें ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से महात्मा गांधी तक कण्ठ हैं पट्ठे को ! छुट्टी के नाम से भी कुढ़ता है—मंजूर ही नहीं करता । डॉक्टरी सर्टिफिकेट भेजो, तब भी पूछताछ करने घर पहुँचता है—क्या बताऊँ नाक में दम है सबका !

उसकी बातें सुनकर दूसरा बोला—तुम कैसे टिके हुए हो वहाँ ! मैं तो एक सप्ताह भी नहीं रह सकता । हमारा प्रिंसिपल तो पूरा देवता है और सच बताऊँ तुम्हें, हमारी नाव तो तीन साल से उसी के दम पार लग रही है । साल का साल मौज रहती है और कभी पूरी पुस्तकें नहीं पढ़नी पड़तीं । इम्तहान होता है, तो किताब लेकर हॉल में जाते हैं और फर्राटे से नकल करके लौट आते हैं । रिजल्ट देखने की कभी बेचैनी नहीं होती, क्योंकि जानते हैं कि भाई जी, आपका तो नाम मोटे हरुफों में छपा रक्खा है !

कहो चचा, तुम्हारे विद्यार्थियों की बातें शानदार हैं या हमारे विद्यार्थियों की ? क्यों, सुन्न क्यों हो रहे हो ? तुम तो सुनकर एकदम गुमसुम होगए ।"

"बस भाई, अब न कुछ कहने को रहा, न सुनने को—अब तो हड़ताल है हड़ताल कि जो प्रिंसिपल अपने विद्यार्थियों का सर्वनाश कर रहा है, उसे वे दोस्त ही नहीं, देवता समझते हैं और जो उन्हें आदमी बनाने की कोशिशों में लगा है, वह जेलर है ! वाह भाई वाह; यह खूब रही !"

"चचा, इस जमाने में सुनने को यही नहीं, और भी कुछ है, पर लो छोड़ो उस बहुत कुछ को, एक प्रिंसिपल की ही कहानी और सुन लो पलंग पर पड़े-पड़े । एक कॉलेज में प्रिंसिपल की जगह खाली थी और कई उम्मीदवार थे । एक नम्र और भले उम्मीदवार को अलग बुलाकर मैनेजर ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा—"मुझे ऐसे प्रिंसिपल की आवश्यकता है, जो मेरा दोस्त बनकर रहे, क्या आप तैयार हैं ?"

भला कौन प्रिंसिपल है, जो मैनेजर की दोस्ती न चाहे। उन्होंने कृतज्ञता के साथ स्वीकृति दी और उन्हें नियुक्ति पत्र मिल गया। शान्तिपूर्वक कालिज का काम चलने लगा। कुछ दिन बाद सरकारी अनुदान का रुपया आया, तो मैनेजर साहब ने प्रिंसिपल से कहा—"इसमें से ५०० रुपये मुझे देदो, पर रक़म मेरे नाम मत लिखना।"

"फिर किसके नाम लिखूँ श्रीमन् ?" प्रिंसिपल ने पूछा, तो ज़रा सोचकर मैनेजर साहब ने कहा—'लिख दो कि ५०० रुपये की ईंटें मंगाई गईं !" प्रिंसिपल को अजीब-सा लगा, पर उन्होंने ५०० रुपये उन्हें देकर ईंटों की खरीदारी लिखा दी। कुछ दिन बाद उन्होंने फिर ५०० मांगे और कहा—"लिख दो कि कमरा बनाया गया।"

प्रिंसिपल की ईमानदारी घबराई, पर शराफत ने जोर डालकर यह बात भी मनवा दी। कुछ दिन बाद मैनेजर ने फिर ५०० रुपये माँगे, तो प्रिंसिपल की ईमानदारी विद्रोह कर उठी और उन्होंने इसे अपनी शक्ति से बाहर बताया। मैनेजर ने उनका इंकार सुना और मीठे स्वर में यह कह कर कमरे से बाहर चले गए—कोई बात नहीं, यह आपकी शक्ति से बाहर है, तो मत कीजिए, पर यह तो आपकी शक्ति के भीतर है कि आप कमेटी में मेरे इस प्रश्न का उत्तर दे सकें कि ५०० रुपयों की जो ईंटें आपने मंगाई थीं, ५०० की लागत लगाकर उसका वह कमरा आपने कहाँ बनाया है ?

"कहो चचा, कुछ सुनने लायक जचा या नहीं ? कहो तो कुछ और सुनाऊँ ?"

"बस भाई, रहने दो बहुत कुछ सुन लिया, पर सब कुछ सुन कर बात वही सच निकली, जो मैं कह रहा था कि आजकल दोस्त और दुश्मन की पहचान बहुत मुश्किल है। कहो, मुश्किल है या नहीं ?"

बून्द से भरदे पारावार !

श्री राजेन्द्र कुमार माहेश्वरी

पंछी, उड़ जा पंख पसार !
चमन की जलती देख बहार,
नीड़ को तज दे दिन दो-चार,
नाप ले भू-अम्बर के छोर,
कहीं तो होगी जल की धार।
खेलती आग जवानी से,
बुझेगी कैसे पानी से,
छीन ला मेघों से बरसात,
बूंद से भर दे पारावार।
पंछी, उड़ जा पंख पसार !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९२० में उत्तर प्रदेश की आग उगलती राजनीति के तीन सब से दीप्तिमान नक्षत्र थे—पण्डित सुन्दरलाल, जुगलकिशोर और जवाहरलाल नेहरू !

तब से अब तक बहुत-से अन्धड़ उठे और बाढ़ें आईं, जिनमें जाने कितने धूल में दब गए और कितने बह गए, पर आचार्य जुगलकिशोर उत्तर प्रदेश की राजनीति में आज भी दीप्तिमान हैं।

वे शिक्षा-शास्त्री हैं—शिक्षा में उन्हें रस मिलता है। वे संघर्षजीवी हैं—संघर्ष में उन्हें रस मिलता है। कहूँ, वे रचनात्मक विद्रोही हैं—शान्ति में रचनात्मक, तो युद्ध में विद्रोही; चार युगों तक उनके चमकते रहने का यही मनोवैज्ञानिक रहस्य हैं।

वे भले हैं और उन्होंने कई बार अपनी भलमनसाहत का भरपूर मूल्य चुकाया है, कभी अपनों द्वारा उपेक्षित होकर, तो कभी अपनों द्वारा उद्वेलित होकर !

उनकी सफलता का रहस्य शक्ति में नहीं, अनुरक्ति में है। तल्लीनता उनका स्वभाव और शालीनता उनका संस्कार है। वे हमारे राष्ट्र के श्रेष्ठ नागरिक हैं कि उनसे मिलकर आदमी सुख पाए !

卐

आचार्य श्री जुगलकिशोर के साथ

श्री मोहन गुप्त

◆ ◆ ◆ ◆ ◆ ◆ ◆ ◆ ◆ ◆

"छात्रों में दिनोंदिन बढ़ती अनुशासनहीनता के लिए केवल छात्रों को ही जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। यह अनुशासनहीनता तो अन्य अनेक बातों का निश्चित परिणाम है।" —मेरे एक प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्य श्री जुगलकिशोर ने कहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य जी के व्यक्तित्व का आकर्षण मेरे मन में बहुत पहले से था। उनके पास बैठकर उनसे बातें करने की बहुत इच्छा थी। संयोग से पिछली बार वे कलकत्ता आए, तो मुझे यह सुयोग मिल गया। मैंने भेंट के लिए समय माँगा और उन्होंने सहर्ष समय दे दिया।

यों आचार्य जी वर्षों तक उत्तर-प्रदेश शासन के एक सफल मंत्री रहे हैं। आज भी देश की राजनीति में वे एक शक्तिशाली स्तंभ की भांति हैं। उनके व्यक्तित्व का यह पक्ष बहुत ही आकर्षक और महत्वपूर्ण है; किन्तु मुझे उनका शिक्षा-शास्त्री का रूप ही अधिक भाया हुआ था। इसलिए भेंट के समय मैंने उनसे शिक्षा-सम्बन्धी प्रश्न ही पूछे।

आचार्य जी पाँच साल तक नेशनल कॉलिज, लाहौर के प्रिंसिपल रहे। फिर गुजरात विद्यापीठ और प्रेम महाविद्यालय मथुरा को भी उनका सहयोग पाने का सौभाग्य मिला। वे पाँच साल तक लखनऊ विश्वविद्यालय के उपकुलपति भी रहे। इस प्रकार विभिन्न प्रकार की शिक्षा-संस्थाओं में रहकर आचार्य जी ने शिक्षा-जगत् का सूक्ष्म अध्ययन किया। इस कारण उनके शिक्षा-सम्बन्धी विचारों में मौलिकता और दृढ़ता है।

छात्रों में अनुशासनहीनता के कारण बतलाते हुए आपने कहा—"दर-असल हमारे वर्तमान सामाजिक मूल्य और प्रथायें ऐसी नहीं हैं, जिनका प्रभाव बच्चों के ऊपर अच्छा पड़े। उनका भविष्य अंधकारमय और अनिश्चित रहता है, इससे उनके मन में निराशा उत्पन्न हो जाती है और निराशा ही उच्छृँखलता की जननी है। बस यहीं से उनमें अनुशासनहीनता का अंकुर फूटता है। इसके अतिरिक्त संरक्षक भी इस बात पर उचित ध्यान नहीं देते कि वे अपने बच्चों की मानसिक शक्ति और प्रतिभा का विकास सही दिशा में कर सकें, उन्हें सही ढंग से ट्रेन-अप (शिक्षित) कर सकें। किसी हद तक राजनीतिक दल भी इसके लिए जिम्मेदार हैं।"

छात्रों की अनुशासनहीनता पर व्यक्त किए गए उपरोक्त विचार आचार्य जी की मौलिक-चिन्तना और स्वानुभव के परिचायक हैं। आज जबकि समाज और राजनीति के नेता अनुशासनहीनता का समस्त उत्तरदायित्व छात्रों के ऊपर थोपते हैं, आचार्य जी के विचार नए चिन्तन का आह्वान देते हैं।

मैंने उनसे पूछा कि इस समस्या का समाधान क्या है, तो उन्होंने बतलाया—"छात्रों की अनुशासनहीनता कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे ऊपर से बदला जा सके। इसके लिए समाज के ढाँचे को ही बदलना होगा, लेकिन यह धीरे-धीरे अपने आप बदलेगा। प्रत्येक छात्र के सामने जब उज्ज्वल भविष्य होगा, जब वह अच्छे लक्ष्य लेकर चलेगा, वह तभी सम्पूर्ण शक्तियों से किसी कार्य में लग सकेगा और उस स्थिति में अनुशासनहीनता की कोई गुँजायश न रह जाएगी।"

बातों की शृङ्खला न टूटे, इसलिए मैंने तुरन्त ही दूसरा प्रश्न किया—भारतीय विश्वविद्यालयों की वर्तमान परीक्षा-प्रणाली और पाठ्यक्रमों के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं? क्या आपको उनमें कुछ दोष दिखाई दिए? यदि हाँ, तो क्या थे वे दोष?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य जी ने बड़े सधे हुए शब्दों में उत्तर दिया—"जहाँ तक पाठ्यक्रम का सम्बन्ध है, वह अधिक दोषपूर्ण नहीं होता; दोषपूर्ण होती है परीक्षा-प्रणाली, जिसमें विद्यार्थी की 'मेमोरी' (स्मरण शक्ति) का टैस्ट तो हो जाता है, 'इन्टैलिजेन्स' (बुद्धिमत्ता) का नहीं !"

उत्सुकता के साथ मैंने पूछा—इसी प्रश्न का पूरक प्रश्न है कि क्या आपके मन में परीक्षा-प्रणाली का कोई आदर्श है ?

मुझे लगा जैसे आचार्य जी प्रश्न सुन कर किसी कल्पना में खो गए हों। उनकी आँखों में एक विचित्र प्रकार की चमक आगई और सपनों में डूबते-उतराते से वे बोले—"इंगलैंड में ट्यूटोरियल सिस्टम है। वहाँ ट्यूटर के रिमार्क्स बहुत मायने रखते हैं। अमेरिका की प्रणाली भी अच्छी है। वास्तव में प्रतिदिन का कार्य ही विद्यार्थी की योग्यता का सही प्रमाण होता है, उसी पर अंक मिलने चाहिएँ। इस प्रकार ट्यूटोरियल सिस्टम होने से और प्रतिदिन के कार्य पर अंक मिलने से जहाँ विद्यार्थी की सही योग्यता की जाँच होती है, वहाँ प्रत्येक विद्यार्थी की अपने विषय में रुचि भी बनी रहती है। केवल कुछ दिनों पढ़कर परीक्षा पास करना उसका ध्येय नहीं बन पाता। भारतीय शिक्षा-जगत् के लिए यही आदर्श मेरे सपनों में तैरता रहता है ?"

थोड़ी देर के लिए इस सपने में मैं भी खो-सा गया। सच, उस सपने के साकार होने पर शिक्षा का स्वरूप और स्तर ही बदल जाएगा।

शिक्षकों के ऊपर बात चली, तो मैंने पूछा—क्या शिक्षकों की वर्तमान स्थिति में उनसे पूरी ज़िम्मेदारी निबाहने की आशा की जा सकती है ?

प्रश्न सुनकर आचार्य जी थोड़ा मुसकराये, तब बोले—"अवश्य की जा सकती है, लेकिन उसके लिए शिक्षकों में श्रेणीभेद करना होगा। स्कूल-मास्टर और यूनिवर्सिटी-लेक्चरर—दोनों दो अलग चीजें हैं, दोनों की समस्याएँ भिन्न हैं। तनख्वाह के ख्याल से लैक्चररों की समस्या बुरी नहीं है। पेपर्स, किताबों आदि से भी उनको आय होती है; और फिर एक अध्यापक का आदर्श तो जीवन सादा और आवश्यकताएँ कम होना चाहिए। ऐसी स्थिति में उनसे पूरी ज़िम्मेदारी निबाहने की आशा करना गलत नहीं है। स्कूल मास्टरों की तनख्वाहें अलबत्ता बहुत कम हैं। उन्हें अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ता है।"

मेरा अगला प्रश्न था—आप ट्यूशनों के पक्ष में हैं या नहीं ?

उन्होंने बतलाया—"ट्यूशन आज की शिक्षा-व्यवस्था में आवश्यक है, क्योंकि स्कूल में विद्यार्थी को यथोचित दिशा-निर्देशन नहीं मिल पाता।"

सहशिक्षा के सम्बन्ध में भी आचार्य जी के विचार जानने को मैं उत्सुक था। इसलिए पूछा—सहशिक्षा से सम्बन्धित भी कोई समस्या कभी आई आपके सामने ? यदि हाँ, तो क्या रूप था उसका ?

उन्होंने मुस्कराते हुए कहना आरम्भ किया—"कोई विशेष समस्या तो मेरे सामने नहीं आई। बात यह है कि भारत में सहशिक्षा अभी अपनी प्रारम्भिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवस्था में है, इसी से उसमें कुछ बुराइयाँ दीख पड़ती हैं; लेकिन ये बुराइयाँ समय के प्रवाह में अपने आप बह जाएँगी। सहशिक्षा स्कूलों में अधिक गड़बड़ करती है, विश्वविद्यालयों में नहीं। विश्वविद्यालयों में इसका होना अनिवार्य है। इसके अभाव में लड़के-लड़कियाँ समाज में जाकर एकदम वयस्क होकर मिलते हैं। कहीं अच्छा है कि वे युवावस्था में ही एक दूसरे से परिचित हो जाएँ।"

मैंने प्रश्न को आगे बढ़ाया—इसी प्रश्न का दूसरा पहलू है कि क्या लड़के-लड़कियों का पाठ्य-क्रम एक हो?

आचार्य जी बोले—"लड़कियों की शिक्षा लड़कों से कुछ भिन्न होनी अनिवार्य है। उन्हें घरेलू बातों, अर्थशास्त्र और बालमनोविज्ञान इत्यादि की शिक्षा विशेष रूप से मिलनी चाहिए।"

तब मैंने पूछा—औद्योगिक और वैज्ञानिक शिक्षा की प्रगति की होड़ में साहित्यिक और कलात्मक शिक्षा की उपेक्षा क्या उचित है? क्या इनकी प्रगति के अभाव में देश की प्रगति एकांगी नहीं रह जाएगी?

प्रश्न सुनकर आचार्य जी सतर्क हुए और उन्होंने उत्तर में कहना आरम्भ किया—"औद्योगिक और वैज्ञानिक शिक्षा की प्रगति देश में अभी इतनी हुई ही कहाँ है, जितनी होनी चाहिए? इस दिशा में तो हमें अभी बहुत आगे बढ़ना है। रही साहित्यिक और कलात्मक शिक्षा की उपेक्षा की बात, सो अभी तक तो केवल साहित्यिक और कलात्मक शिक्षा की ही प्रधानता थी, पर देश का क्या भला हुआ उससे? आज हमें औद्योगिक और वैज्ञानिक शिक्षा की प्रगति की जितनी आवश्यकता है, उतनी साहित्यिक और कलात्मक शिक्षा की नहीं।"

समय काफी हो चुका था। मैंने बात को समाप्त करने के विचार से उनसे अंतिम महत्वपूर्ण प्रश्न पूछा—आपको अपने शिक्षा-संस्थाओं से सम्बद्ध जीवन से अधिक संतोष मिला या राजनैतिक जीवन से?

प्रश्न सुनते ही आचार्य जी गम्भीर हो गए। फिर धीरे-से बोले—"संतोष तो कर्तव्य को पूर्ण करने में होता है। व्यक्तिगत रुचि उससे अलग चीज़ है।"

मुझे लगा जैसे आचार्य जी कहना चाहते हों कि मेरी व्यक्तिगत रुचि तो मेरे पूर्व के जीवन में ही थी, लेकिन अपना कर्तव्य पूर्ण करने का सन्तोष मुझे अपने उत्तर जीवन में भी मिला।

मैं चला आया, पर चलते-चलते मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि उनके सम्पर्क से मेरा अन्तर कुछ चिकना हो गया है। मैं उस समय कुछ इस तरह की सौम्य शीतलता का मानसिक अनुभव कर रहा था, जैसे किसी पवित्र नदी में पुण्य पर्व पर स्नान करने के बाद हम अनुभव करते हैं। मैंने सोचा—यह अनुभव उस चर्चा से भी अधिक महत्वपूर्ण है, जो मैं अभी कुछ देर पहले आचार्य जी से कर रहा था और बस मेरा मन उनके प्रति श्रद्धा की भावना से भर गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता में कथा को गूँथते वाल्मीक ने हमारे साहित्य का शिलान्यास किया था; तो कथा में कविता को गूँथते हमारे वर्चस्वी कलाकार भगवती प्रसाद वाजपेयी का जन्म बीता!
कविता का प्राण है संकेत, तो कथा का प्राण है स्पष्टता; वाजपेयी की कला सांकेतिक स्पष्टता का एक उत्तम नमूना है।
वे भी हैं, जो विज्ञान को लेकर कथा के आंगन में आते हैं और वे भी, जो निबन्ध की उंगली पकड़े प्रवेश करते हैं, पर वाजपेयी अकेले हैं कि इन्द्रधनुषी तूलिका से कथा की रेखाएँ यों खींचें कि कथा के प्रवाह में कविता की लहरें उठती रहें!
प्रशंसा और निन्दा से निरपेक्ष, चुपचाप साधना में लीन वाजपेयी जी—राष्ट्र की भावी पीढ़ियों के लिए गर्व की चीज़!

सड़क और सृष्टि

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी

"यह वीथिका है कभी सो नहीं पाती बेचारी। निरंतर जगने का इसे अभ्यास पड़ गया है। जब रात हो जाती है और स्टेशन पर गाड़ी के आवागमन का कोई समय नहीं होता, तब भले ही इस पर आने-जाने वाले कम हो जाते हों। शीत-ऋतु की घोर अँधियारी रातों में आठ बजते-बजते ही लोग इधर आना-जाना स्थगित कर देते हैं, लेकिन सब-कुछ जन-जीवन की आवश्यकताओं पर निर्भर है! ऐसा भी तो हो सकता है कि कोई दुर्घटना हो जाए, कहीं डाका पड़ जाए या दो दलों में लाठी चल जाए और कुछ लोग घायल हो जाएँ, तब जो भी गाड़ी मिले, उसी से कानपुर जाना अनिवार्य हो उठे। ऐसे समय कोई भी इस वीथिका पर आने से क्यों रुकेगा! तभी तो महक भी नहीं पाती बेचारी!"

"हाँ, यह आपने ठीक कहा ददुआ, यानी असली चीज़ है मनुष्य की आवश्यकता, क्योंकि मान लो लड़ाई-भिड़ाई-जैसी कोई खतरे की बात न भी हो, मगर ऐसा भी तो हो सकता है कि पास-पड़ोस के गाँव ही का कोई भला आदमी अकस्मात् ज़्यादा बीमार पड़ जाए, तब तो किसी भी समय उसे लाना पड़ेगा!"

"इसीलिए, मैंने अभी कहा कि इस मार्ग पर चलना कभी बंद नहीं होता! होता भी है, तो घड़ी-दो-घड़ी को, मगर तब भी जंगल के जानवर निकलते रहेंगे। सियार, भेड़िया, लोमड़ी, खरगोश, नेवला, मोर, कुत्ते और साँप—कौन नहीं निकलता होगा। जब चींटी बदन पर रेंगती है, तब आदमी सोते से जग ही पड़ता है, फिर ऐसे जानवरों का चलना! शिव-शिव! क्या नहीं सहना पड़ता होगा इस बेचारी को!"

× × ×

बैलगाड़ी चली जा रही थी। चारों ओर अंधकार था। निकट के गाँव से कभी कोई लालटेन टिमटिमाती देख पड़ती, कभी कुत्तों के भौंकने का स्वर सुनाई पड़ जाता! दाएँ-बाएँ नीम, आम, पीपल के वृक्ष, कँटीली झाड़ियाँ और हरे-भरे खेत मिलते रहते। गाड़ी कभी-कभी खाँचे में पड़कर दचका खा जाती, मगर बैलों की जोड़ी बड़ी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके गले की घंटियाँ बजती जाती थीं। वातावरण के सुहावने रूप के कारण गति की तीव्रता में कुछ भी कष्ट प्रतीत न होता था। धूल अलबत्ता उड़ रही थी। कभी-कभी कोयल बोल उठती—'कुहु!' तो वन्यपथ गूँज उठता—ऐसा प्रतीत होता, मानो निखिल सृष्टि सुखी और संतुष्ट है। जिन विरहिणियों के प्यारे परदेश में हैं, कोयल उनका मंगल-संदेश सुना रही है। मानो वह कह रही हो—तुम्हारे जो वह हैं, उन्होंने कहा है—"चिंता मत करो, मैं अब आ ही रहा हूँ!"

गाड़ी पर दो व्यक्ति बैठे परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। दूसरा कह रहा था—"मगर, यह तो जड़ है ददुआ! यह कैसे बोलेगी और इसको इन परिस्थितियों का अनुभव भी क्या होता होगा!"

"कौन कहता है, जड़ है? जड़ तो तुम हो, जो उसकी चेतना को समझ नहीं पाते और वह जो बोलती है तुम उसे सुन नहीं पाते।"

"बोलती है? हँ-हूँ! आप भी खूब हैं ददुआ! यानी सड़क भी आपको बोलती जान पड़ती है।"

"बोलती नहीं, तो मैं यों ही रुक रहा हूँ।"

"क्या बोलती है, बतलाइए?"

"मौन भाषा और नीरव स्वर में उसने अभी मुझ से कहा है–निरन्तर मुझ से कुचला जाता है। लोग मेरी देह पर सदा चलते ही रहते हैं। सदा मैं उनका भार सहन करती रहती हूँ। जब कोई खांचा पड़ जाता है और बैलगाड़ी का पुराना पहिया उसमें पड़ कर एकाएक उसी समय दम तोड़ देता है, तब मेरी पसलियां तक चरमरा उठती हैं। तीस-चालीस मन का बोझ एकदम मेरी छाती पर जैसा आघात पहुँचाता है, उसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। फिर अभी मेरी छाती कुट-पिस कर पत्थर-सी कहां बन पाई है! कच्ची देह ठहरी! रात को जिस समय लोग नींद की गोद में विश्राम करते हैं, उस समय साढ़े तीन सौ ईंटों से लदी भैंसा गाड़ी आ गई, तो उसका बोझा खींचने वाले मेरी छाती ही से तो गुजरते हैं। गाड़ी के नीचे लालटेन टिमटिमाती रहती है और गाड़ी के पहियों के बीच, अवन के साथ धुरे का घर्षण, सदा पीछे डोलने वाली लकड़ी का टुकड़ा, और उसे उलटते समय सुरक्षा का अवलम्ब देता है इन सबका मिश्रित घरर-घरर और खटर-खटर स्वर जब मेरे कर्ण-रंध्रों में प्रवेश करता है, जैसे मेरी सास बूढ़ी हो गई हो, फिर भी मेरी छाती पर उसका मूँग दलना न गया हो। हाय रे दुर्भाग्य!"

× × ×

अब ददुआ की आंखें सजल हो चली हैं। अन्तरात्मा की मर्मवाणी फूट पड़ी है। कण्ठ भर आया है। निर्जन वीथिका है, गहन यामिनी और बैलगाड़ी चली जा रही है। गाड़ीवान मौन था। शिष्य भी मौन था। पर वृद्ध वशिष्ठ ददुआ बोलते ही जा रहे थे—नई दुलहनें, कुमारियां, बालक, प्रौढ़ा नारियां, वृद्धाएँ, बाल-विधवाएँ, कुलटाएँ, नट-नटनी, कँजड़-कँजड़िनी, वेश्याएँ, काली-कलूटी, गोरी-सांवली, गहनों से लदी, अर्ध-नग्न, जीर्ण-जर्जर, खांसी-दमा-तपेदिक के रोगी, दुधमुँहे शिशु, इक्का-दुक्का और वृन्द के वृन्द जब मेरी देह के ऊपर से निकलते हैं, तब मैं उनकी साँस-साँस का स्वर सुनती हूँ, पीड़ा की कराह सुनती हूँ। अवगुण्ठन के बीच नववधुओं के दाड़िम-दशन और सजल नयन मैं देखती हूँ। हास-परिहास भी चलते हैं, मगर बहुत कम! कुछ ही दिन पहले उत्पन्न हुआ शिशु जननी का स्तन्यपान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता देख पड़ता है, मगर कभी-कभी ! फिर रोगी तो आते-जाते ही रहते हैं। जाने वाले लोगों की उदास-उदास डबडबाई आंखें देख कर प्राय: मेरे जी में आता है कि पूछ लूं—वह तुम्हारा कौन था ? पर यही सोच कर चुप रह जाती हूँ कि जीवन के अनन्त पथ में कोई किसी का नहीं होता। कुत्ते भोंकते हैं। सांड और बछड़े दौड़ते, उछलते, कूदते हैं ! बकरियां मिमियाती हैं गायें रँभाती हैं। बकरे इठलाते हैं। अनेक आवारे और गुण्डे, कुछ वयस्क, किन्तु भोली नव-वधुओं और कन्याओं को नाना प्रलोभनों में फँसा कर भगा ले जाते हैं और मैं टुकर-टुकर देखती रहती हूँ ! चोर-बदमाश राह-चलते यात्रियों से रुपये-पैसे छीन कर कपड़े तक उतरवा लेते और उन्हें नँगा करके छोड़ देते हैं और थोड़ा भी हस्तक्षेप नहीं कर पाती ! मेरी प्रभुसत्ता की सारी गरिमा ही नष्टप्राय है। गौतम-नारी की भाँति शाप-ग्रस्ता हूँ न ! सब-कुछ सह रही हूँ ! युग के युग बीत गये, लेकिन मुझे पाप से मुक्ति न मिली !

इतने पर भी मुझे कोई दुःख नहीं है। कर्म का फल सबको भोगना पड़ता है, मैं भी भोग रही हूँ। लोग सदा चलते रहेंगे। जन-जीवन का कारवां आगे बढ़ता रहेगा, मैं भी सब सहती रहूँगी; निरन्तर।

और साथ बैठा शिष्य देखता है कि ददुआ वास्तव में रो रहे हैं—सिसकियां ले-लेकर !

तभी वह बोल उठा—"परन्तु ददुआ, अपराध क्षमा हो, आप चित्र का एक ही पक्ष देख रहे हैं, जो है, उसका दुःख-दैन्य ! आश्चर्य है कि वीथिका का दूसरा पक्ष आपको क्यों नहीं दिखाई पड़ा ! वह देखो, दोनों किनारों पर इस गहन निशा में भी अपना अस्तित्वाभास देने वाली जो काली-काली मोटी धारियां-सी दिखाई दे रही हैं, वे हरी-हरी घास के रूप में उसकी सहेलियां हैं; अगणित दुर्वादलों को अपनी गोद में भरे हुए। कभी रसीले, पक्के, मीठे आम अपने-आप टपक कर उसे मधुर-मधुर रस पिलाते हैं, कभी किनारे की झाड़ियां और पलाश-पल्लवों के नीचे जो नन्हे-मुन्हे शशक-शावक अपनी मां का स्तन्यपान करते हुए क्रीड़ा करते हैं, वह भी वीथिका का वह स्कंध-प्रांत ही तो होता है, जहाँ से उसके वृक्ष की उष्ण मांसलता का सुकोमल प्यार-संभार प्राप्त होता है। हरे-भरे वृक्षों की प्रलंब शाखाओं पर जब गिलहरी दौड़ती, शुक युग्म संलाप करते, नीलकण्ठ उड़-उड़कर बैठते और कपोत-दंपति अपनी परिरंभण-लीला दिखलाते हैं, तब ?"

आचार्य तब तक आँसू पोंछ चुके थे। मुस्कराते हुए बोले—"तब यह वीथिका अपना निखिल जीवन-संघर्ष भूल कर सृष्टि का वह नैसर्गिक नाटक खेलती है, जो इस विश्वव्यापी मानवता का आदि सत्य है। मैं उसे देखता हूँ। वत्स ! क्योंकि उसी प्रांत में इधर-उधर ऐसे-ऐसे विषधर सर्प पड़े रहते हैं, जिनकी एक ही फूत्कार निखिल क्रीड़ा-वात्सल्य को विनाश में परिणत कर देती है।"

"तब उन विषधरों की भी तो दुर्गति हो जाती है, देव ! क्योंकि तभी नकुल और सारंग उन पर टूट पड़ते हैं।"

तब आचार्य के होंठों पर हास खेलने लगा। वह बोल उठे—"बस, यही इस सृष्टि का रहस्य है वत्स ! विनाश और विकास के सदन पास-ही-पास बने हुए हैं। मध्य में केवल एक दीवार का अन्तर है।

卐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रबर

★

श्री बसन्तकुमार शाक्य

★

रबर है,
इस लिए,
मन-अनुकूल
जिधर चाहते हैं,
जितना चाहते हैं,
मोड़ लेते हैं
और
वह मुड़ जाती है ।

रबर है,
इस लिए,
खींचते
इच्छाओं की तुष्टि तक,
और
वह खिंच जाती है ।

रबर है,
इस लिए,
फुलाते गुब्बारे को,
होते खुश
देख उसे,
क्योंकि,
वह फूल जाता है ।

रबर है,
उसकी तो ज़रूरत की—
बनाते हैं
एक नहीं,
सैकड़ों ही चीज़ें,
क्योंकि वह
सुविधा से
हर साँचे में
ढल जाती है ।

रबर है,
सैकड़ों ही पहलू
इसके अब भी,
अनकहे,
क्योंकि
जितने पहलू चाहो
कहो—कहे जाओ,
वे भी इसी की तरह
बढ़ेंगे—बढ़ते रहेंगे,
मर्ज़ी के साँचे में
ढलेंगे—ढलते रहेंगे,
इस लिए तुम भी,
मानिन्द रबर के
बनो—लचकीले,
जिसमें जड़ता न हो,
पहलू हों जितने भी,
पर वे होने चाहिएँ,
रबर की ही तरह,
सफलता की मुहर लगे
रजिस्टर्ड लेटर-से,
सुरक्षित और उपयोगी !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन दिनों हिन्दी और उर्दू के ऐरावत बाएँ और दाएँ से बढ़-हटकर टक्करें ले रहे थे, एक सहृदय शिल्पी हिन्दी-उर्दू के बीच संगम के लिए सेतुबन्ध रामेश्वर बना रहा था। सहृदय शिल्पी—श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय !

'शेर ओ शायरी' के बाद 'शेर ओ सुख़न' के पाँच भाग और तब 'शायरी के नये दौर' और 'शायरी के नये मोड़' के कई कई भाग लिखकर उन्होंने चुलबुली उर्दू को संजीदा हिन्दी के उपवन में इस तरह ला बैठाया कि खुशबू खूबसूरती से और खूबसूरती खुशबू से मिलकर कहीं महकी, तो कहीं लहक उठी।

थकान में चाय के प्याले की तरह वे छोटे छोटे टुकड़े संजोते रहे कि सेतुबन्ध में जड़ाव का काम दें—एक ऐसा ही टुकड़ा है यह बेचारी दुर्गी !

यह तो मैं पहले ही जानती थी !

श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय

दुर्गी अपढ़ और गवांर होते हुए भी बहुत चालाक थी। न उसे अच्छा भोजन बनाना आता था, न गत का सीना-पिरोना जानती थी, न किसी रीत-रिवाज से परिचित थी। फिर भी अपने सुघड़ होने का ढिंडोरा पीटती रहती थी। किसी-न-किसी कौशल से वह अपनी पड़ोसिनों से विधि पूछ लेती, और फिर कहती—"वाह बहन, तैंने यह कोई अनोखी बात नहीं बताई, यह तो मैं पहले ही जानती थी।"

पड़ोसिनें सुनकर खिसियानी-सी रह जातीं और निश्चय करतीं कि आइन्दा इस स्यानी को कुछ नहीं बताया जाएगा, मगर दुर्गी अपनी-वाक् चातुरी से उन्हें बताने को फिर मजबूर कर देती। दुर्गी की आए दिन की इस चालाकी से तंग आकर एक पड़ोसिन अवसर की ताक में रहने लगी। संयोग की बात उसी से एक दिन दुर्गी किसी व्रत की विधि पूछ बैठी। पड़ोसिन ने हैरानी का-सा भाव प्रकट करते हुए कहा—"ना, बहन ! इस व्रत के झमेले में तुम न पड़ना, यह व्रत बहुत अटपटा और बे ढंगा है। मैंने तो एक बार करके कानों के हाथ लगा लिया। इसका नाम सुनकर मुझे तो कपकपी होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगती है। ना बहन, मुझ से न तो इसकी विधि बताई जाएगी और न तुझ से ही यह सम्पन्न हो सकेगा।"

दुर्गी तमक कर बोली—"वाह बहन, ऐसा भी कोई कठिन व्रत है, जो मैं न कर सकूँ। तुम बताकर तो देखो, पीछे हटूँ, तो जो चोर का हाल, सो मेरा।"

पड़ोसिन कुछ संकोच का-सा, कुछ लाचारी का-सा अभिनय करते हुए बोली—ले बहन, जब तू ज़िद करती है, तो बताए बग़ैर भी चारा नहीं, मगर मैं कहती हूँ कि यह व्रत तेरे बसका नहीं है। बात बनाना सरल है, लेकिन अमल करना तलवार की धार पर चलना है। खैर, बताने में मेरा क्या बिगड़ता है। तो ले, तनिक ध्यान देकर सुन, कहीं ऐसा न हो कि कोई त्रुटि रह न जाए। ज़रा-सी असावधानी होने पर मनचाही ऋद्धि-सिद्धि देने के बदले इस व्रत का देवता कुपित होकर शनि का रूप ग्रहण कर लेता है।"

"व्रत के दिन रसोई का दर्वाज़ा अच्छी तरह बन्द करके खूब स्वच्छता पूर्वक स्नान करने के बाद अपने शरीर के बायें अंग को काले रंग से और दाहिने अंग को सिन्दूर से रंगकर निर्वस्त्र और मौन होकर कढ़ाई में पूए-पकौड़े तलने चाहिएँ। तलते समय कोई अपना प्यारा-मीठा कितनी ही आवाज़ दे, न तो उसकी बात का जवाब देना चाहिए, न घबराकर वस्त्र पहनने चाहिएँ। ध्यान रहे पूए-पकौड़े बनाते समय स्वयं व्रतदेव कुटुम्बियों का वेष बनाकर और उन्हीं के स्वर में शोर मचाकर दर्वाज़ा खोलने को मजबूर करते हैं। जो दृढ़वती अपने निश्चय पर अटल रहती है, वह सात सपूतों की मा और ५१ पौत्रों की दादी बनने का गौरव प्राप्त करती है। ऋद्धि-सिद्धि उसके सामने सेविकाओं की तरह हाथ बांधे खड़ी रहती हैं और जो घबराकर बोल पड़ती है या दर्वाज़ा खोल देती है, तो इस जन्म में तो वह मुँह दिखाने योग्य नहीं रहती और दूसरे भव में वह गधी बनती है।"

पड़ोसिन से विधि सुनकर दुर्गी आंख मटकाते हुए बोली—"वाह बहन, इस तनिक-सी बात के लिए ही मुझे डरा रही थीं। मैं तो डरी कि न जाने कितना बड़ा पहाड़ और समुद्र लांघना होगा। यह व्रत तो मैं कई वर्ष से करती आ रही हूँ। यह कोई तुमने अनोखी विधि तो बताई नहीं? यह तो मैं पहले ही जानती थी।

पड़ोसिन उस वक्त तो चुप रह गई, मगर जब दुर्गी को व्रत-पालन में तत्पर देखा, तो उसके पति और ससुर को कहला भेजा कि "वह तुरन्त घर आयें। दुर्गी रसोई का दर्वाज़ा बन्द किये न जाने क्या कर रही है? न जवाब देती है, न दर्वाज़ा खोलती है।"

वे घर आये तो रसोई का द्वार बन्द पाकर और छन-छनकी आवाज सुन कर उन्होंने घबराकर द्वार पीटना और शोर मचाना प्रारम्भ कर दिया। दुर्गी दर्वाज़ा क्यों खोलती? उसे तो विश्वास था कि स्वयं व्रतदेव आकर परीक्षा ले रहे हैं—और थोड़ी ही देर में वरदान देने वाले हैं। अतः दुर्गी चुपचाप पूए-पकौड़े तलती रही। रसोई के किवाड़ तोड़ने पर अन्दर का दृश्य देख कर ससुर तो हाथों से मुँह ढक कर एक तरफ खिसक गए, मगर पति ने दुर्गी पर चुड़ैल का प्रभाव समझ कर उसकी खूब मरम्मत की। इस मरम्मत से और जो हुआ, सो हुआ, पर दुर्गी के सिर चढ़ा 'यह तो मैं पहले से ही जानती थी' का भूत सदा के लिए उतर गया।

****

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेजर जनरल श्री यदुनाथसिंह;

महान जीवन, महान मरण

श्री घनश्याम नारायण सिंह

मेजर जनरल श्री यदुनाथसिंह जहाँ कश्मीर के अपने पराक्रम के लिए याद किए जाएँगे, वहाँ वे दस्यु-पीड़ित-क्षेत्रों के अपने प्रवास और प्रयत्न के कारण जन-मानस में छाए रहेंगे।

जनरल में अनेक खूबियाँ थीं। शान्ति-काल में सेना का क्या कर्तव्य है, इसकी तो एक क्रियात्मक अनुपम मिसाल ही उन्होंने-बस उन्होंने ही—पेश की थी। सेना से निवृत्त होने के बाद भी मनुष्य, व्यक्तिगत रूप से किस प्रकार अपनी मातृभूमि की सेवा कर सकता है, इसके वे आदि-निर्देशक थे।

अपने अन्तिम दिनों में जनरल यदुनाथसिंह हर्निया रोग से पीड़ित थे। कई बार दिल्ली, जम्मू एवं काश्मीर के मुख्य चिकित्सकों ने उनकी शारीरिक-परीक्षा की थी और उन्हें पूर्ण-विश्राम की सलाह दी थी, लेकिन डाक्टरों को उन्होंने हमेशा हँसकर यही कहा था—"आप लोगों की राय से मैं पूर्णतः सहमत हूँ। मुझे चम्बल के बीहड़ों का कार्य जरा समाप्त कर लेने दीजिए; बस फिर मैं पूर्ण विश्राम ही करूँगा।"

चम्बल के बीहड़ों का दौरा समाप्त कर वास्तव में ही वे विश्राम की चिर निद्रा में सो गए। कितने सही थे उनके उपर्युक्त वाक्य!

इस दौरे के सम्बन्ध में उनकी डायरी के कुछ पृष्ठ इस प्रकार हैं—"१७ मई १९६० को प्रातःकाल ५ बजे ही मध्यप्रदेश पुलिस की जीप लेकर सघन वनों की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा रहा हूँ। इस यात्रा का अन्त क्या होगा ? इस यात्रा के बाद वापसी होगी या नहीं, कुछ कह नहीं सकता, लेकिन वापस न लौटा तो क्या इस अभियान पर बुरा असर नहीं पड़ेगा ? अतएव हे मेरे देवता ! अपने उन बिछुड़े हुए बन्धुओं की खातिर, जिन्हें लोग डाकू कहते हैं, कम-से-कम एक बार फिर मुझे विनोबा के चरणों में वापस ले आना।"

और जब दौरा आरम्भ हुआ, तो वे अपनी निष्ठा के कारण पहले ही चरण में सफलता के द्वार तक पहुँच गए। उनकी डायरी में इस सफलता का चित्र इस प्रकार चित्रित है—

"काफी फासला तय कर बीहड़ों के द्वार पर आ गया हूँ। मेरे पास कोई शस्त्र नहीं है। डाकुओं का गुप्तचर जब मेरे पास आया, तब मैंने ऐसा ही वायदा किया था। कुछ लोगों ने इस प्रस्ताव पर पुनर्विचार करने के लिए कहा था। उन्होंने सलाह दी थी—आप बहाना करिए कि जँगली जानवरों से बचने के लिए कम-से-कम बन्दूक रखना जरूरी है, लेकिन मैंने कहा था—क्षत्रिय मौत से नहीं डरता, वचन-भंग से डरता है। क्या आप मुझे अपनी मृत्यु के पूर्व ही मौत के घाट उतार देना चाहते हैं? सलाहकारों के मुँह पीले पड़ गए थे।

बीहड़ों के द्वार पर पहुँच कर मुझे जीप रोक देनी है। ऊपर से चिलचिलाती धूप सिर पर पड़ रही है। डाकुओं के सम्मान में मैं टोप भी सिर पर नहीं रख सकता; क्योंकि आज मानवता, मानवता से खुलकर मिल रही है।

दैनिक भोजन-व्यवस्था में अव्यवस्था हो जाने के कारण आँखों से स्पष्ट नहीं दिखाई देता, लेकिन दूर शायद—वह प्रतिहारी डाकुओं द्वारा नियुक्त कोई गूढ़ पुरुष है। जीप से उतरने पर पत्तों की चरमर ने जीप की आवाज से कहीं अधिक असर किया। वह ध्यान से मेरी ओर देख रहा है। शायद इसका कारण यह है कि इस सघन वन में रहते-रहते उसके कान जीप से अधिक पत्तों की मरमर के अभ्यस्त हो गए हैं या हो सकता है वह जीप के यहाँ आने के काफी बाद इस तरफ आया हो।

हाँ, यह व्यक्ति वही है। कितने प्रेममय सकेत से अपने पास मुझे बुला रहा है। उसके शरीर पर कोई शस्त्र नहीं है—कितने भोले, निश्चल और प्रेममय हैं, ये लोग ! और इन्हें ही सब लोग डाकू कहते हैं।

मैं आगे बढ़ता हूँ—डाकुओं के बीच में जाता हूँ। चारों ओर से 'जुहार-जुहार' की आवाज आती है—प्रहार की नहीं। दस्यु-समस्या—आत्म-समर्पण पर-आद्योपान्त चर्चा होती है। इतने में ही ज्वार की रोटी सामने आती है, हम सब प्रेमपूर्वक उसे खाते हैं। मैं हर बार उठना चाहता हूँ, लेकिन चारों तरफ से प्रेमपूर्वक घेरकर वे मुझे बिठा देते हैं।"

अपने इस कार्य के सम्बन्ध में उनकी धारणा, उनकी निष्ठा कितनी ऊँची थी, यह उनके इस उल्लेख से स्पष्ट है—

"लोगों का कहना है, मैंने रोमेल की फौज के विरुद्ध अद्भुत पराक्रम का परिचय दिया था। कश्मीर के युद्ध में भी मैंने प्रचंड शौर्य प्रदर्शित किया था, लेकिन सच कहता हूँ मुझे इसका कुछ भी ज्ञान नहीं है; क्योंकि तब मैं होश में नहीं था। युद्ध एक नशा है, जो मनुष्य को बेहोश कर फिर उसे लूटता है। प्रेम एक नशा है, जो मनुष्य को होश में रखकर अपने को लुटाता है। मेरे प्यारे देश ने मुझे दोनों परिस्थितियों से परिचित कराया—यह बिरले का ही सौभाग्य होता है। मेरे प्यारे देश ! तेरे चरणों में मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नतमस्तक हूँ—केवल मेरी यही अन्तिम साधना पूरी करा देना कि इस समस्या को मैं हल कर सकूँ। फिर मैं कश्मीर लौट जाऊँगा अपनी बड़ी मंजिल की ओर।"

इस निष्ठा की हार्दिकता और गहराई उनकी डायरी के उन पन्नों से ज्ञात होती है, जो सम्भवत: फलफल बहते आँसुओं से भीग गए हैं और पढ़े नहीं जाते ! इस हार्दिकता का ही यह फल था कि तीन-तीन राज्यों की पुलिस के काबू में न आने वाले २० डाकुओं ने युगसन्त विनोवा के सामने बिना शर्त आत्म-समर्पण करना स्वीकार कर लिया।

अपने इस सफल अभिमान से लौटने के बाद ७ जुलाई १९६० को जनरल का आपरेशन किया गया। बख्शी गुलाममुहम्मद खुद आपरेशन-गृह में उपस्थित थे। २० जुलाई १९६० को वे अपने घर लौट आए। कमजोरी इस वक्त बेहद बढ़ी हुई थी। घर में ही चहल कदमी कर वे समय बिताते थे। २ अगस्त १९६० को वे प्रात:काल ५ बजे उठे। भगवान कृष्ण की पूजा वे नियमित रूप से करते थे। इसके पूर्व उन्होंने अपने पाले हुए दो बालकों—बशीर और खेमचन्द को उठाया और कहा—"उठो और सबक याद करो।"

फिर कुरसी पर बैठ गए और नौकर नन्हेंसिंह से कहा—"मुझे कमजोरी लग रही है, दूध लाओ।" जब तक नन्हें दूध लाया, वे कुरसी से उठकर चारपाई पर लेट गए। दूध भी पूरा नहीं पी पाए और नन्हेंसिंह से कहा—"मेरा अन्त निकट है, मुझे चारपाई के नीचे उतार दो।"

नन्हेंसिंह घबरा गया—उससे कुछ करते न बना। तब वे खुद सहारा लेकर चारपाई के नीचे उतर गए और जमीन पर पद्मासन लगाकर बैठ गए। भगवान कृष्ण का चित्र मंगवाया और उस पर ध्यानावस्थित होगए। फिर श्रीमद्‌भागवतगीता मंगवाई और वे ध्यानावस्थित ही थे कि लाई गई गीता पर उनका सिर लुढ़क गया।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने मृत्यु से एक दिन पूर्व लिखी अपनी अन्तिम कविता में मृत्यु को मित्र कहा था। मेजर जनरल यदुनाथसिंह अपनी मृत्यु के द्वारा उस कविता का भाष्य लिख गए। विश्व कवि रवीन्द्रनाथ महान थे, विश्व योद्धा यदुनाथसिंह महान होगए !

•

आत्मश्रद्धा हमारे हाथ में एक अमोघ शस्त्र है। किसी भी बात से मन में दुर्बलता आने लगे कि पहले उस बात का त्याग करना चाहिए। नहीं तो दिन दिन तुम्हारा मानसिक बल कम होता जाएगा और आख़िरश मुस्तक़िल तौर से नाश पाएगा।

—विवेकानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

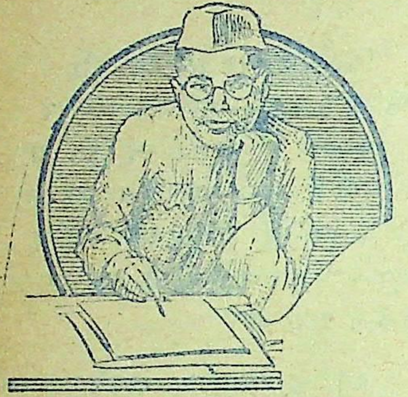

तुम्हें क्रोध क्यों नहीं आता?

श्री महेशप्रसाद विद्यार्थी

मुझे याद है, एक दिन मेरी अम्मा ने मुझसे कहा था—"भइया, मैंने तुमको कभी क्रोध करते नहीं देखा। क्या तुम्हें गुस्सा आता ही नहीं या आने पर भी उसका असर तुम पर नहीं होता?" मैंने कहा—"अम्मा, तुम्हीं ने तो मुझे ऐसा बनाया है कि मुझे किसी पर क्रोध आने के पहले अपनी नासमझी पर रहम आजाता है और जब मैं उस परिस्थिति को समझने की कोशिश करता हूँ, तो क्रोध के लिए फिर कोई स्थान ही नहीं रह जाता या तो गलती करने वाले पर दया आ जाती है या अपनी नासमझी पर हँसी।"

"मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझी।" उन्होंने पूछा—"मान लो, कोई आदमी तुम्हारे कमरे में आकर तुम्हारी मेज पर इतनी जोर से घूँसा मारे कि कलमदान में रखी हुई सारी स्याही उछलकर तुम्हारे कपड़ों को खराब कर दे, तो उस समय तुमको अपनी नासमझी पर रहम आएगा या उस पर दया?"

मैंने कहा—"अम्मा, यह एक अत्यन्त अप्रत्याशित घटना होगी, क्योंकि ऐसे आदमी को अचानक देखकर तो मुझे खुश ही होना चाहिए कि जिसे जिन्दगी में कभी नहीं देखा था, उसे देखने का यह अवसर मिला और जोशीला न होकर यदि वह पागल ही हो, तो फिर उससे नाराज होकर भी क्या मिलेगा?"

अम्मा ने कहा—"यह तो सब ठीक है, पर तुम्हारे अपने कपड़े? क्या उनके खराब होने का तुमको कुछ भी पश्चात्ताप नहीं होगा? और क्या इसी कारण उन्हें खराब करने वाले पर क्रोध आना भी स्वाभाविक नहीं है?"

मैंने कहा—"मा, पश्चात्ताप, दुःख, सहानुभूति और क्रोध ये सब अलग-अलग चीजें हैं, जो इनको अलग-अलग कर देख सके उसे क्रोध का स्वाद ही नहीं मालूम होता! क्रोध तो इन सबको एक साथ मिला देने और फिर उन्हें अलग न कर पाने के कारण अपनी असमर्थता पर ही आ सकता है। रही अपने कपड़े खराब हो जाने की बात, सो जब वह स्याही गिर जाने से एक बार खराब हो ही गए, तो क्रोध करने से भी साफ तो हो नहीं जाएँगे! अब कपड़े तो खराब हुए ही, ऊपर से अपना दिमाग भी खराब करने से क्या लाभ? फिर कपड़े तो धुल भी सकते है, बदले भी जा सकते हैं, पर दिमाग!"

"तो तुम इसी तरह हर चीज का—हर बात का विश्लेषण करते रहते होंगे और तुम्हें इसी से छुट्टी नहीं मिलती होगी, क्रोध कब करो।" अम्मा ने कुछ झुंझला कर कहा—"हाँ, कुछ-कुछ ऐसा ही समझ लीजिए!" कहकर मुझे हँसी आगई।

मैंने देखा—अम्मा भी मुस्करा रहीं थीं, किन्तु उनकी आँखों में आँसू भी छलछला रहे थे। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागपाल, जिन्हें हम सपेरा कहते हैं और जो नागों को पालते, अपनी बीन पर खिलाते और बालकों को रिझाते हैं, पर यह ओमप्रकाश नागपाल ?

न यह सपेरा है, न साँप पालता है, न उन्हें खिलाता है; कल तक यह एक कालिज का होनहार छात्र था, तो आज एक कालिज का प्राध्यापक है।

हाँ, फिर भी नागपाल; इस तरह कि यह समाज को उसने वाले साँपों को पकड़कर समाज को दिखाता है कि समाज सावधान हो, तो ओमप्रकाश नागपाल कि नागपाल न होकर भी नागपाल !

卐

ये शानदार जनाज़े !

★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★

श्री ओमप्रकाश नागपाल

★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★

"आपसे एक निवेदन करूँ ?"

"फरमाइये !"

"कृपया दो मिनट के लिए खड़े हो जाइये।"

"कारण ?"

"यह मैं आपको अभी बताऊँगा, पर पहले आप यह कष्ट करें।"

महीने की दूसरी तारीख थी। पैंट के लिए कपड़ा लेने एक दुकान पर गया था। धोती-कुर्ता पहने हुए वह दुकानदार, जिसकी आयु लगभग ५०–५५ वर्ष थी, निहायत गम्भीर तथा समझदार व्यक्ति लगता था। रात्रि के आठ बजे होंगे। मैंने एक कपड़ा पसन्द किया और उसके दाम पूछने लगा, तो दुकानदार ने उठने का निवेदन किया।

मैं हाथ का कपड़ा वहीं छोड़ कर खड़ा हो गया और वह दुकानदार भी। दुकान के सामने से एक बैंड, जिसकी थिरकती हुई फिल्मी धुनों पर सुरापान किए हुए शिक्षित तथा अशिक्षित युवक अपनी कमर, कूल्हे और गर्दन घुमाकर रॉक एन रोल कर रहे थे, गुज़रा। इसके पीछे गैसों की रोशनी में चमकते हुए हमारे नेताओं और देवी-देवताओं के चित्र।

फिर सौ सवासौ सुसभ्य व्यक्ति और सबसे पीछे स्वर्ण-जटित रथ पर मुकुटधारी एक रईसज़ादा।

बाज़ार से उस जलूस के गुज़र जाने पर बैठते ही दुकानदार बोला—"बाबूजी, हमारा यह दस्तूर है कि हमारी दुकान के आगे से यदि कोई जनाज़ा गुज़रे, तो हम शोक प्रकट करने के लिए खड़े हो जाते हैं।"

"क्या ?" मैंने क्रोध और आश्चर्य से पूछा—"क्या यह जनाज़ा है ? तुम पागल तो नहीं हो गए हो बुड्ढे ! यह तो मेरे भाई साहब के मित्र की बारात थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाचने वाले मित्रों में मेरे प्रोफेसर और भाई साहब भी थे !"

"हाँ बाबूजी, मैं पागल होगया हूँ, क्योंकि एक दिन इस तरह का जनाज़ा मेरे घर भी आया था। वह हँसता-गाता और खुशियाँ मनाता हुआ जनाज़ा उस युवक का नहीं था, जो सजी हुई मोटर में बैठा था, बल्कि वह जनाज़ा मेरी बेटी का था, जिसके दहेज में एक स्कूटर न दे सकने के कारण बारात बिना शादी किए वापिस लौट गई थी। बाबूजी, उसके वापिस लौट जाने पर मेरी बेटी ने गले में बिजली की तारें लपेट कर स्विच ऑन कर दिया था और उसके निष्प्राण होकर धरती पर गिरते ही मैं पागल होगया था बाबूजी !" उस पके हुए चेहरे से अश्रु की बूंदें टपक कर गिर पड़ी; उस कपड़े पर जो मैंने पैंट के लिए लिया था।

मैं कपड़ा लेकर दुकान से चल पड़ा घर की ओर; मेरे चारों ओर क्या होरहा है इससे बेखबर। एक साईकिल मुझ से टकराकर गुज़र गई, तो एक मोटर के नीचे आते-आते मैं बचा। एक साथ कई स्त्रियों, पुरुषों और बच्चों का करुणा-क्रन्दन मेरे मस्तिष्क में गूंजता रहा। ये जनाज़े? ये जनाज़े? —मुझे लगा जैसे हर एक घर से एक जनाज़ा उठ रहा है; बड़ी सजधज के साथ—खुशियाँ मनाते हुए बैंड बाजों के साथ। नाचते गाते हुए बारातियों के साथ।

"नहीं, नहीं ये जनाज़े नहीं हैं। विवाह हमारे देश का पवित्र संस्कार है।" मेरे मन के एक कोने से आवाज़ आई और मुझे दिखाई दी—किसी युवक और युवती के विवाह की रोशनियों में जगमगाती हुई, उनके मा-बाप की वर्षों से संजोई हुई कामनाओं की इतराती हुई; दो मासूम हृदयों की रंगीन कल्पनाओं को साकार करती हुई एक तसवीर। मन ने कहा—इसे जनाज़ा कहना उन सब लोगों का अपमान करना है, जिन्होंने वर्षों की जमा की हुई पूँजी को आज खुले दिल से, खुले हाथों, कौड़ियों की तरह लुटाया है।

तभी मन के दूसरे कोने से कड़कती आवाज़ आई—तुम जानते हो इस बारात का स्वागत करने वाला व्यक्ति, इन डेढ़-दो सौ व्यक्तियों का आतिथ्य-सत्कार करने वाला व्यक्ति समाज में झूठी प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए अपनी बेटी के दहेज में हज़ारों रुपयों का सामान देने वाला व्यक्ति, इस घटना के कुछ वर्ष पश्चात् किसी नदी में नहाने जाएगा और फिर वापिस नहीं आएगा; क्योंकि उसकी गैरत, वे ताने, वे अपमानजनक शब्द तथा व्यंग सुनने से इन्कार कर देगी, जो उसको सुनने पड़ेंगे, इसलिए कि लड़की की शादी के लिए हज़ारों रुपयों के कर्ज़ में से वह कुछ भी वापिस नहीं कर सकेगा। तुम जानते हो उसके वियोग में घुलघुल कर उसकी पत्नी जान दे देगी और माता पिता के परलोक सिधार जाने पर उनके नन्हें नन्हें मासूम बच्चे लुच्चे और आवारा बनने पर मजबूर हो जाएंगे !!

जिसे तुम बारात कहते हो, वह हमारे समाज के मुख पर एक काला धब्बा है। नशे में सड़कों पर झूम-झूम कर नाचने वाली ये खुशियाँ हमारी सभ्यता के नाम पर कलंक हैं। किसी घर के रंग-बिरंगी रोशनियों से जगमगाने वाले ये बल्ब इस बात के सूचक हैं कि कुछ वर्षों के पश्चात् इस घर में हमेशा के लिए अंधकार छा जाएगा।

हमारी शराफत और इन्सानियत के जनाज़े, समाज में झूठी प्रतिष्ठा को बनाए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखने की प्रेरणा देने वाले सोचने की शक्ति के जनाज़े, धन के अभाव में हज़ारों नवयुवतियों की सूनी मांगों पर अट्टहास करने वाली तहज़ीब के जनाज़े अब बन्द होने चाहिएँ।

आज आवश्यकता है इस बात की कि विवाहों में व्यय बिल्कुल न किया जाए। ये बैंड-बाजे, ये आतिशबाजियाँ, ये जगमगाती हुई रोशनियाँ, ये बड़े-बड़े आदमियों की दावतें और सबसे बढ़कर ये लम्बे-चौड़े दहेज़ बिल्कुल बन्द होने चाहिएँ।

कहा जा सकता है कि जिन लोगों के पास धन है, वे क्यों न खर्च करें? इसलिए कि धन जिनके पास नहीं है, वे उन्हीं लोगों की नकल करते हैं, जिनके पास धन है; क्योंकि देखने में दोनों का रहन-सहन एक-सा है। धनवान व्यक्ति इसलिए शानशौकत का त्याग करें कि धनहीन व्यक्ति उससे कुछ प्रेरणा प्राप्त कर सकें—धनवान व्यक्ति इसलिए सादगी से जियें कि समाज में क्रान्ति लाने का श्रेय उन्हीं को मिल सकता है और धनवान व्यक्ति इसलिए भी यह सब करें कि स्वेच्छा से समाज में क्रान्ति न हुई, तो विवशता में फूट पड़ने वाली क्रान्ति सबसे अधिक उन्हें ही खाएगी! यदि एक धन-हीन परिवार ने विवाह आदि पर व्यय नहीं किया, तो इसलिए कि उसके पास धन था ही नहीं, किन्तु यदि एक धनवान व्यक्ति व्यय नहीं करता, तो यह उसका कंजूसपन नहीं, उसका त्याग प्रकट करना है।

निश्चय ही दहेज़ न लेने और बारात न ले जाने का बलपूर्वक प्रस्ताव वरपक्ष की ओर से होना चाहिए। जब तक इस देश में विवाहादि के अवसर पर वरपक्ष को महत्त्व देने की कुप्रथा है, तब तक तो वर को चाहिए कि वह घोषणा करे कि यदि विवाह होगा, तो इसी शर्त पर कि न तो उसकी जलूसनुमा बारात निकलेगी और न वह दहेज़ लेगा। यदि वरपक्ष इस बात का दावा करे, तो वधु-पक्ष को यह अच्छी बात मानने में खुशी होगी!

खेद इस बात का है कि आज का पढ़ा-लिखा युवक बजाए इस क्षेत्र में कुछ सुधार करने के अपनी विद्या, योग्यता और अच्छी नौकरी का मूल्य अपनी नीलामी के द्वारा लड़की के माता-पिता से वसूल करना चाहता है।

धिक्कार है हमारी इस शिक्षा पर, जो हमारी आँखों पर झूठी शान का रंगीन पर्दा डालती है। धिक्कार है हमारी इस योग्यता पर, जो आज बीच चौराहे पर खड़े कर हमारी नीलामी कराती है। धिक्कार है हमारे ऊँचे-ऊँचे सरकारी पदों पर, जो हमें हँसते गाते हुए जनाज़े निकालने की प्रेरणा देते हैं। आज कर्तव्य है देश के प्रत्येक नवयुवक का कि वह आगे आए और झुर्रियाँ पड़े हुए वृद्ध चेहरों से परेशानी की काली घटाओं को दूर कर उन पर मुस्कान की रोशनी फैला दे। आज कर्तव्य है देश के प्रत्येक युवक का कि वह किसी नवयौवना की कल्पनाओं के संसार में उतरने से पूर्व उसके माता-पिता को आश्वासन दे कि वह उनकी लड़की को लेकर उन पर कोई अहसान नहीं कर रहा है, बल्कि वह उनका आभारी है, जिनकी कृपा से उसकी सूनी और वीरान ज़िन्दगी में बहारें लाई जा रही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरदार वल्लभभाई पटेल;

एक सर्वांगपूर्ण व्यक्तित्व

श्री प्रद्युम्न पण्डित

★

वल्लभभाई से मैं पहली बार जब मिला था, तब की मुझे अच्छी तरह याद है। उन दिनों इलाहाबाद की कायस्थ-पाठशाला में शायद मैं नवीं कक्षा का छात्र था, और वल्लभभाई पटेल इलाहाबाद आकर आनन्द-भवन में ठहरे थे। वैसे देखा तो इसके पहले भी कई बार था, लेकिन भय कहूँ या अपनी बाल सुलभ लज्जा, उनके सामने जाने की हिम्मत कभी नहीं पड़ी थी। इस बार भी जब उनसे साक्षात्कार करने का अवसर मिला, तो अकेले उन तक पहुँचने का साहस नहीं संजो पाया। स्कूल के कुछ साथियों को वल्लभभाई के दर्शनों की इच्छा थी और चूंकि मैं मौके-बे-मौके इस बात की डींग मारा करता था कि देश का कोई भी ऐसा नेता नहीं है, जिससे मेरा वैयक्तिक परिचय न हो, वल्लभभाई से उन लोगों को मिलाने का भार मुझ पर ही डाला गया। मुझे याद है, कई दिनों तक इस बात को टालने की मैं भरसक कोशिश करता रहा था, लेकिन आखिर में अपनी शान की रक्षा के लिए मुझे यह काम करने को कमर कसनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही पड़ी थी। अपने साथियों को आनन्द-भवन के बरामदे में बैठाकर काफी साहस के साथ जब मैंने वल्लभभाई के कमरे की चिक उठाई, तो मेरे पाँव आगे चल रहे थे और दिल पीछे दौड़ रहा था।

वल्लभभाई उस समय वहाँ बिलकुल अकेले थे और शायद अपने किसी कपड़े की तह कर रहे थे। मुझे देखते ही जब उन्होंने अपनी चिर गम्भीर मुद्रा के साथ यह पूछा कि मैं किस काम से आया हूँ, तो एक बार फिर मेरे दिल में यही खयाल आया कि मैं उल्टे पावों लौट जाऊँ और साथियों से यह कह दूँ कि वल्लभभाई इस समय व्यस्त हैं और किसी से नहीं मिल सकते, लेकिन मुड़ने के पहले ही जब उनकी वही आवाज़ दुबारा कानों में पड़ी, तो जवाब देने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं बचा और सहमते-सहमते मुझे अपनी बात कहनी पड़ी। उत्तर में वे बोले—"तो खड़ा क्यों है, बुला क्यों नहीं लाता!" —और दुबारा जब मैं अपने साथियों के साथ उनके कमरे में घुसा, तो गर्व से मेरा सीना तना जा रहा था।

वल्लभभाई से वह मेरी पहली भेंट थी, लेकिन उस पहली ही बार में उनके प्रति मुझे जितना भय, जितना संकोच था, वह पूरा का पूरा घुल गया और मुझे लगा कि इस आदमी से तो आसानी के साथ बातचीत की जा सकती है!

उसके बाद अनेक बार मुझे वल्लभभाई से मिलने का अवसर मिला और हर बार ही मेरी इस धारणा में कमी आती गई कि वे हम लोगों से अलग किसी खास क़िस्म के आदमी हैं और साधारण जन खुल कर उनसे बातचीत नहीं कर सकता। कई बार तो ऐसा हुआ कि जब मैं एक पत्रकार के रूप में घन्टों उनके साथ रहा हूँ, दुनिया की हर एक चीज़ के बारे में उनकी राय जानने की कोशिश की है और अपने निजी अनुभव के बल में यह कह सकने में समर्थ हूँ कि एक बार भी मुझे उनके बातचीत करने के ढंग से असन्तोष नहीं हुआ। उत्तर देने का उनका ढंग बिल्कुल अनोखा होता था, समझाने की शैली भी उन जैसी मैंने अन्य किसी में नहीं पाई। हर एक बात में उनका बिल्लौरी पत्थर जैसा साफ़ दिमाग़ ही सामने आता था और तार्किक दृष्टि मे भी किसी के लिए उनकी उपेक्षा सम्भव नहीं थी।

एक बार मेरी एक वैयक्तिक समस्या के सम्बन्ध में अपनी राय देते हुए उन्होंने मुझे लिखा था—"ठीक बात करना ही काफ़ी नहीं, यह भी जरूरी है कि वह बात ऊपर से भी ठीक मालूम दे। वह ठीक है, सत्य है, इतना ही पर्याप्त नहीं है। व्यक्तिगत सत्य, सामाजिक सत्य नहीं होता। इस दशा में तुम्हारे अक्खड़पन को मैं मूर्खता समझता हूँ, क्योंकि तुम्हारी बात अगर सही भी है, तो तुम्हारे साथियों की सहानुभूति उस ग़लत आदमी के साथ हो जाएगी, जो चुप है।"

इसी समस्या-विशेष को लेकर बाद में व्यक्तिशः जब मैं उनसे मिला, तो वे बोले थे—"सभ्यता के अर्थ निर्बलता नहीं हैं, सभ्यता के अर्थ ये हैं कि हमारा व्यवहार ऐसा हो, जिसको समाज ठीक समझे और जिसके प्रति उसकी सहानुभूति हो। व्यवहार की सुन्दरता की यही परिभाषा है। इसका साधन न चिल्लाना है, न रोना और न भय। कुछ लोग व्यवहार में जताते हैं कि वे बहुत धनी हैं, कुछ यह कि उनका पद बड़ा है, कुछ यह कि वे कितने विद्वान हैं और कुछ यह कि वे कितने प्रभावशाली हैं, लेकिन चतुर मनुष्य केवल यह बताएगा कि वह कितना अच्छा है और अच्छे के अर्थ

111315

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह नहीं कि वह कितना सीधा है, बल्कि यह कि पूर्ण शक्तिमान होते हुए भी वह कितना मित्र है। निर्बल वह है, जो मित्र हो, शक्तिमान नहीं। निर्दयी वह है जो शक्तिमान हो, परन्तु मित्र नहीं। मूर्ख वह है, जो न शक्तिमान हो और न मित्र; लेकिन चतुर वह है, जो शक्तिमान भी हो और मित्र भी !"

तभी उन्हें रोकते हुए मैंने प्रश्न किया था कि तब तो चतुर और धूर्त में अन्तर करना ही मुश्किल हो जाएगा। बहुत-से लोग ऐसे हुए हैं, जिन्होंने मित्रता का बाना पहन कर अपनी शक्ति के बल दूसरों को मटियामेट कर दिया है, और लोग आखिर तक उन्हें अपना शुभचिन्तक ही समझते रहे हैं—

मेरी बात पूरी होने से पहले ही वे बोल उठे थे—"उन दोनों में फ़र्क यह है कि चतुर अपनी शक्ति के प्रवाह में बांध लगाए रहता है और धूर्त अपने थिथले जल का ढाल इतना तेज़ कर देता है कि लगे बहुत जल बह रहा है। बात यह है कि धूर्त चतुर से अधिक भड़कीला होता है। वह अधिक गुर्राता और चिल्लाता है, अधिक रौब दिखलाता है, किन्तु ये सब बातें केवल एक ही चीज की परिचायक हैं और वह है भय।"

यह बात मैं तब की लिख रहा हूँ, जब मैंने अपने जीवन का बीसवाँ वर्ष भी नहीं पूरा किया था और वल्लभभाई दर्शकों से देश की राजनीति के प्रमुखतम स्तम्भ थे। पाठक कल्पना करें कि अठारह बीस साल के एक अल्हड़ छोकरे की समस्या में जो व्यक्ति इतनी रुचि ले सकता है, वह देश या समाज की किस गतिविधि से अछूता रह सकेगा ? वल्लभभाई की यही खूबी थी कि, बाह्य रूप से निस्पृहतम पृष्ठभूमि का आवरण रखते हुए भी जीवन का कोई भी अंग ऐसा नहीं था, जिसकी यथेष्ट जानकारी उन्हें न हो। उनसे मैंने साहित्य-चर्चा की है, संस्कृति की चर्चा है, कला की चर्चा की है, परन्तु किसी भी क्षेत्र में मैंने उन्हें कोरा नहीं पाया।

इस दिशा में एक उदाहरण ही काफ़ी होगा। आज़ादी मिलने के शायद कुछ ही महीनों बाद की बात है। उन दिनों मैं बम्बई में था और हम कुछ नवयुवकों ने एक बहुत ही छोटे पैमाने पर प्रेमचन्द-जयन्ती आयोजित की थी। संयोग से उन दिनों वल्लभभाई बम्बई आए हुए थे और उनसे मिलने पर जब मैंने अपने इस आयोजन की चर्चा चलाई, तो प्रेमचन्द एवं उनके साहित्यिक व्यक्तित्व की जितनी स्पष्ट व्याख्या उनके मुँह से सुनने को मिली, वह प्रेमचन्द के किसी अध्ययन कर्ता के लिए भी प्रस्तुत करना मुश्किल है।

"तुम्हारी हिन्दी में तो मैं केवल प्रेमचन्द को जानता हूँ"—उन्होंने कहा था—"और मेरे खयाल में आज के हिन्दी-लेखकों में वे ही ऐसे हैं, जिनकी अमरता युग-युग तक अक्षुण्ण रहेगी।" भारतीय राजनीति के प्रमुखतम स्तम्भ के मुख से एक साहित्यकार के प्रति इन उद्गारों को सुन कर मैं ही क्या, जितने लोग भी वहाँ उपस्थित थे, वे सब आश्चर्य से चकित हो उठे थे। सच कहूँ, तो वही पहला दिन था, जब यह विश्वास अपने पूरे प्रकाश के साथ मुझ में जग सका कि हिन्दी को कोई भी नहीं मार सकता, उसका अस्तित्व अमर है और दुनिया की बड़ी-से-बड़ी शक्ति भी उसके विकास के मार्ग में रोड़ा नहीं बन सकती।

उसी दिन भारत की आन्तरिक प्रगति के सम्बन्ध में भी उनसे बात चली थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई लोग उस समय वहाँ ऐसे उपस्थित थे, जो देश की तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति से सन्तुष्ट नहीं थे। उनके अनुसार देश की गृहनीति दूरदर्शिता की दृष्टि से प्रशंसनीय नहीं थी। वल्लभभाई ने उन सबकी बातें ध्यान से सुनीं। जब तक लोग आलोचना करते रहे, उन्होंने अपने मुँह से एक शब्द भी नहीं निकाला, लेकिन जैसे ही उन लोगों की बातें खत्म हुईं, मुझे मालूम दिया, जैसे कोई महापुरुष बोल उठा हो।

वल्लभभाई ने उनसे कहा था—"आज की परिस्थिति में कोई भी सरकार इससे अच्छी नहीं हो सकती—भारत में ही नहीं, दुनिया के किसी भी कोने में। बीमारी की अवस्था में रोगी को उतना भय नहीं होता, जितना तब, जब कि वह आधा अच्छा हो जाता है। बीमारी की हालत में मृत्यु का भय होता है, पर उसकी जिम्मेदारी मरीज पर नहीं होती। आधा अच्छा होने पर मरीज में कुछ शक्ति आ जाती है, इससे भय भी उसकी ओर से बढ़ जाता है। गुलाम भारत मरीज था, आज वह आधा अच्छा है, पूरा अच्छा हो जाने पर भय समाप्त हो जाएगा। आज के हिन्दुस्तान की वह हालत है, जो आधे अच्छे रोगी की होती है। वह कुछ ही दिनों पहले बीमारी से उठा है और इसी से उसमें हलचल भी है, लेकिन यह अवस्था ही तो जीवन की निशानी है। इसी से आज की अव्यवस्था भी प्राकृतिक है और इस अव्यवस्था से लोगों का असन्तोष भी प्राकृतिक है। समझदारी की बात यह है कि अव्यवस्था को प्राकृतिक समझा जाए, व्यवस्था के लिए प्रयत्न हो, किन्तु आशावाद उसका निश्चित अङ्ग हो। घबराहट का उसमें कोई स्थान नहीं है!"

इतना कहने के बाद वे चुप हो गए थे, लेकिन लगता था कि जैसे एकाएक सबके मन की अशांति घुल गई हो। गंगा में स्नान करने के बाद जिस आन्तरिक सन्तोष की प्राप्ति होती है, कुछ वैसा ही आभास मुझे उस दिन, उस समय हुआ था।

वल्लभभाई के दोनों ही रूप मैंने देखे हैं। सूरज की तरह देश के शत्रुओं की आँखों की ज्योति क्षीण करने वाला उनका रूप भी मैंने उतनी ही निकटता से देखा है, जितनी निकटता से उनका वह रूप, जिसमें अंजन की भाँति अपने साथियों को दृष्टिदान करते थे। पहले में आग जैसी तेजी थी, दूसरे में चन्दन जैसी शीतलता। देखा जाए, तो इनमें कोई भी गुण आपस में किसी से हेय नहीं है। दोनों का अपना स्थान है, दोनों ही जीवन की पूर्णता के लिए आवश्यक हैं, लेकिन वल्लभभाई के अतिरिक्त मैंने कोई भी दूसरा व्यक्ति ऐसा नहीं देखा, जिसने अपने कार्य-व्यवहार में इन दोनों का इतना उत्तम समन्वय किया हो।

अलग-अलग ये गुण आपको बहुतों में मिल जाएंगे, विश्लेषण करने से पता चलेगा वे बिजली के इकहरे तार हैं, जिनमें एकांगीपन नहीं था, इसी से दूर से देखने पर उनसे भय होता था और लगता था कि कहीं इनकी ज्वाला हमें भस्मीभूत न कर दे, लेकिन ज्वाला का काम जलाना ही तो नहीं, प्रकाश देना भी तो होता है। आग उसी को जलाती है, जो अज्ञानी हो, ज्ञानवान व्यक्ति के पास तो वह सर्वोपरि निधि के रूप में ही उपस्थित होती है। वल्लभभाई का यह प्रकाश-तत्व ही उन्हें अपने निकटवर्तियों का सहोदर, जनता का विश्वासी और हम जैसे बच्चों का मार्ग प्रदर्शक बना सका था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाल की बात है, एक मित्र आ गए। लेखक हैं, अच्छे और पुराने लेखक। अच्छी भाषा एवं भाव के धनी, पर अब लिखना छोड़ रखा है; कुछ और काम में लग गए हैं। बातें चल पड़ीं और मैंने कहीं कह दिया कि हमारे लिए तो आप खो गए। बस, घाव में ठेस लग गई। उन्होंने अपनी दुर्दशाओं और विपत्तियों की एक लम्बी कहानी हमें सुना दी। सुन कर दुःख हुआ। दुःख उनके साथ होने वाले व्यवहार पर और दुःख उनकी मनोवृत्ति और प्रतिक्रिया पर भी।

मुझे अपने और अपने गुरुजनों के दिन याद आए। खुद की कहूँ, तो न जाने कितने फाके इस कलम के पीछे हुए हैं।

नए लेखकों के सम्बन्ध में

अभाव और उपेक्षा से मत डरो

श्री रामनाथ 'सुमन'

卐

कभी दो मुट्ठी चने खा कर रह गया हूँ, कभी उबले चावल में नमक मिला कर खा लिया है, पर लिखने का नशा नहीं छूटा।

मैंने जीवन में जो सहन किया है, वह उस उपेक्षा के सामने कुछ नहीं है, जो हमारे गुरुजनों एवं अग्रजों को मिली और उन्हें सहन करनी पड़ी है। उन्होंने सम्पादन किया और पत्र-पत्रिकाएँ स्वयं पढ़-पढ़ कर सुनाते फिरे। वे मुफ्त में सम्पादन करते, लेखों को पूरा का पूरा फिर से लिखते और प्रूफ देखते थे। मुझे अपने स्व० गुरुदेव लाला भगवानदीन जी की याद है, जब वे 'लक्ष्मी' का अवैतनिक सम्पादन करते थे और बदले में उन्हें केवल पाँच प्रतियाँ मिलती थीं।

मुझे प्रसाद जी की याद आती है, जो पैसे के मामले में निश्चिंत थे और जिन्होंने हिन्दी को वह गौरव दिया, जो कोई और नहीं दे सका, पर उन्हें भी 'यह बनिया क्या लिखेगा!' और 'उसे कलम की जगह तराजू पकड़नी चाहिए!' जैसे तिरस्कार भरे वचन सुनने पड़े।

प्रेमचन्द जी हिन्दी में, उर्दू छोड़कर आए। उनकी रचनाओं का स्वागत हुआ। कभी-कभी ऐसा हुआ है कि पुस्तक की प्रतियाँ प्रेस से आ गई हैं, पर मित्रों के पास भेजने के लिए पोस्टेज के पैसे नहीं हैं।

प्रसाद और प्रेमचन्द अन्दर से भरे हुए थे। इसलिए इन परिस्थितियों में भी रिक्त नहीं हुए और उनके दान की धारा अन्त तक नहीं टूटी। प्रसाद जी के पास इन उपेक्षाओं और तिरस्कारों के स्वागत के लिए एक मधुर, पर गूढ़ मुसकान थी और प्रेमचन्द के पास तो वह अट्टहास था, जिसके तूफानी प्रवाह में सम्पूर्ण कर्दम बह जाता था।

इस प्रकार के उदाहरण गुणित किये जा सकते हैं। हमारे ही युग और हमारे ही देश में नहीं, प्रत्येक युग और प्रत्येक देश में यही हुआ है। शेक्सपियर मारा-मारा फिरता रहा और बहुत थोड़ी रकम में उसे अपने नाटक दे देने पड़े।

आइन्सटीन, जो संसार के वैज्ञानिकों का शिरोमणि बन गया, वर्षों तक अपने ही आदमियों द्वारा उपेक्षित होता रहा। प्रारम्भ में तो लोगों के लिए कल्पनातीत था कि वह आगे चल कर किसी प्रकार की भी प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा। इस उपेक्षा के बीच केवल वायोलिन उसका सहारा था।

एलेन पो का नाम अमेरिकी साहित्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारों एवं कवियों में विख्यात है। उसने साहित्य को अमर रचनाएँ दी हैं, पर इन रचनाओं के बदले उसे पेट भर भोजन कभी न मिला। उसकी प्यारी पत्नी और सुख-दुःख की साथिन वर्जीनिया क्लेम सदा गरीबी के दुःख भोगती रही। पो ने अपनी अत्यन्त प्रसिद्ध, बल्कि अमर रचना 'रेवेन' की पूर्ति में दस साल व्यय किए, किन्तु वह केवल दो पौंड में बिक सकी। इस से भी आश्चर्य की बात यह है कि इसी रचना की मूल पांडुलिपि, बाद में हजारों पौंड में बेची गई।

गरीबी की मार सहते-सहते पो की जीवनसंगिनी को क्षय हो गया, पर पो उसके लिए नियमित रूप से रोटी भी न जुटा पाता। अपनी झोंपड़ी का किराया तो वह शायद ही कभी दे पाया हो। कभी-कभी कई-कई दिनों तक दोनों निराहार रह जाते और वसन्त में जब उनके आंगन में 'डंडेलायन' (एक पीले फूल वाला पौधा) फूलता, तो उसे ही उबाल कर खा लेते और सो रहते।

सो भी क्या पाते होंगे, क्योंकि वर्जीनिया जब तिल-तिल कर मर रही थी, तब भी पो कपड़ों का बिछौना उसके लिए न जुटा सका, न सर्दी से बचाने के लिए काफी कपड़े ही उसे उढ़ा पाया। अक्सर वह उसके पाँवों को अपने हाथों से रगड़ता कि उनमें कुछ गर्मी आ जाए। जब उसकी प्यारी पत्नी मरी, तो पो उसके कफन का प्रबन्ध भी न कर सका और वह पड़ौसी की कृपा एवं दान से दफनाई जा सकी। हाँ, पो अपना अगाध प्रेम लिए महीनों तक उसकी समाधि पर बैठा रहता था—उसके ध्यान में निमग्न। वह चली गई और उसी अवस्था में उसने वे प्रेमगान लिखे, जो साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

अप्टन सिनक्लेयर की रचनाएँ लाखों की संख्या में बिकती रही हैं। रूसी क्रांति के बीज इन्हीं रचनाओं के प्रभाव से बोए गए थे। संसार की अनेकानेक भाषाओं में इनके अनुवाद हो चुके हैं, पर उसे वर्षों तक पेट भर खाना नसीब नहीं हुआ। कभी एक-दो लुक्मे पेट में पड़ जाते, कभी एकदम फाका ही हो जाता।

विश्वविख्यात संगीतकार और वाद्यकार मोजार्त्त तो अपने कमरे को गरम करने के लिए लकड़ी के चैले भी न खरीद पाता था। भूख और ठण्ड से ठिठुर कर वह क्षय का शिकार हो गया और अमर संगीत की सृष्टि करने वाला मोजार्त्त केवल पैंतीस साल की अवस्था में दुनिया से चल बसा। उस की शवयात्रा का प्रबन्ध भी बड़ी कठिनाई से किया जा सका।

ओ० हेनरी, जिस की कहानियों का लाखों पाठकों ने अभिनन्दन किया है, युगों तक विपदाओं से जूझता रहा। मार्कोनी को रेडियो के आविष्कार पर गोली मारने की चेष्टा की गई। संसार में ऐसी प्रतिभाएँ इनी-गिनी हुई हैं, जिनका पालन वैभव की गोद में हुआ हो। प्रायः प्रतिभा काँटों के बीच पलती है, कठिनाइयों और आपदाओं के बीच विकसित होती है और गरीबी के अमृत से उसका अभिनन्दन होता है। जिनके अन्तर में स्वप्न होते हैं, जिनकी आँखों में दृष्टि होती है, वे उपहास, उपेक्षा, अभाव तथा तिरस्कार के बीच भी अपनी यात्रा जारी रखते हैं, क्योंकि वे बैठ नहीं सकते। वे चलते हैं उपेक्षा की भूमि को अपने पदचाप से मुखरित करते हुए, उपहासों एवं अभावों की प्रेयसी का चुम्बन लेते हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने पढ़ने के कमरे में

किन्नरखेड़ा में राम-राज्य

गुजरात राज्य में पोरबन्दर सामुदायिक विकास खण्ड में किन्नरखेड़ा नामक एक गाँव है। इस गाँव में एक चौराहे पर डाक टिकटों का एक बक्सा रक्खा रहता है, जिसमें कोई ताला नहीं है। रुपये-पैसे भी इसी खुले बक्से में पड़े रहते हैं। कोई डाक बाबू भी वहाँ निगरानी नहीं करता। गाँव के लोग इसमें पैसे डाल कर टिकट, पोस्ट कार्ड ग्रादि ले लेते हैं। यह ईमानदारी इन लोगों को सामुदायिक विकास खण्ड ने सिखाई है।

पिछले दो साल से यह बक्सा ऐसे ही रखा हुग्रा है। गांव में करीब एक हजार लोग रहते हैं, लेकिन किसी भी व्यक्ति ने किसी भी दिन एक पैसे की भी गलती या बेईमानी नहीं की।

यही नहीं, कुछ वर्षों से इस गांव के किसी भी व्यक्ति ने कचहरी का मुँह तक नहीं देखा। ग्रापस में कभी कोई छोटा-मोटा झगड़ा हो भी जाता है, तो गांव की पंचायत ही उसे तै कर देती है। इस गांव में कभी किसी चोरी का भी समाचार नहीं मिला। खेतों में, किसान ग्रपने हल ग्रादि छोड़ कर चले जाते हैं ग्रौर ग्रगले दिन उन्हें वह सामान जहाँ का तहां मिल जाता है।

इस गांव में कोई व्यक्ति छुग्राछूत या जात-पांत नहीं मानता। पुरानी रूढ़ियां तेजी से लुप्त हो रही हैं। मृत्यु-भोज ग्रौर बाल-विवाह की प्रथा लगभग समाप्त है।

गांव के सरपंच दूदाभाई के परिश्रम का ही फल है कि गांव में ऐसा सतजुगी वातावरण ग्रा सका है। इनके पास ५० बीघा जमीन है। दूदाभाई की इच्छा सुधरे तरीकों से खेती करके उपज बढ़ाने की थी। ग्रत: वे एक महीने की शिक्षा लेने के लिए लोक-विद्यालय में भर्ती हो गये। यह शिक्षण सनोसारा की लोक-भारती देती है। इस शिक्षण ने दूदाभाई का दृष्टिकोण ही बदल दिया। शिक्षा पाने के बाद तो वे गांव की उन्नति में कमर कस कर जुट गए। सबसे पहला काम उन्होंने यह किया कि गाँव की ६ साल पुरानी बेजान पंचायत में नवजीवन फूँका।

नई पंचायत ने तै किया कि सबसे पहले गांव के हरेक स्त्री-पुरुष ग्रौर बालक को पढ़ाया जाए ग्रौर ग्राज इस गांव की शत-प्रतिशत जनता साक्षर है। शिक्षा से इन लोगों को बहुत फायदा हुग्रा। खण्ड-विकास ग्रधिकारी जो पुस्तकें ग्रौर पत्रिकाएँ मँगवाते हैं, उनसे गांववालों को देश भर में होने वाले विकास कार्यों की जानकारी मिली। ग्रब ये लोग समझने लगे हैं कि देश की उन्नति में, उनके गाँव की उन्नति का भी बहुत बड़ा हाथ होगा। उन्हें ग्रामोन्नति के नये उपायों का भी ज्ञान हुग्रा।

जब से किन्नरखेड़ा के किसानों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक तरीकों से खेती शुरू की है, उनकी उपज ६० से ७० प्रतिशत तक बढ़ गई है। गांव के लोग हर काम में चाव लेने लगे हैं और एक-दूसरे की जी-जान से मदद करते हैं। एक-दूसरे के दुःख में सारा गांव सहायता करता है। इस प्रकार इस गांव में रामराज्य का दृश्य दिखाई देता है।

['ग्राम सुधार' में श्री सम्पादक]

एक साक्षर

रेफ्रीजरेटर में रखे हुए सन्तरे के रस को, दोपहर के समय, पीने से जब मेरा साथी इंकार कर देता है, तब मैं सुबह की रखी हुई रोटियां खा कर ड्राम में हाथ धो डालता हूँ।

अपनी कक्षा के अध्यापक को मेरा साथी जब ट्यूशन के लिए घर पर बुलाता है, तब मैं उनसे शुल्क-मुक्ति का फार्म माँगता हूँ।

कक्षा में मेरे साथी की शरारत पर मुझे पीट दिया जाता है। परीक्षा में उसके नम्बर अधिक आते हैं और मैं फेल हो जाता हूँ।

मेरी मां आर्थिक दुश्चिन्ताओं में फँसी रहती है। चिन्ता झुंझलाहट को जन्म देती है। फलस्वरूप प्याला मां के हाथ से फूटता है और मार मुझ पर पड़ती है। हर समय माँ की छाती पर सवार रहता हूँ, इसलिए घर से बाहर निकाल दिया जाता हूँ।

और इस प्रकार मैं मां की गाली देना सीख जाता हूँ।

सुबह के समय मेरे पिता जी मुझे बेहद प्यार करते हैं। उस प्यार में बाप के हृदय की गहराई होती है। मगर शाम के समय यह प्यार दुत्कार में बदल जाता है और पराकाष्ठा पीटने से होती है।

बहुत दिनों तक मैं नहीं समझ सका कि ऐसा क्यों होता है? मैं जानता था कि कारण मां जानती है पर मुझे बतलाना नहीं चाहती। पता नहीं, ये बड़े सब एक क्यों होते हैं। बहुत दिनों बाद मेरे एक साथी ने बताया—साले, तेरा बाप शराब पीता है, शाम के समय, समझा? और शराब पीकर आदमी दूसरों को पीटने लगता है, समझा? नालियों में लेट जाता है, समझा?

मैं समझ गया था। पिता जी सौ रुपये एक नौकरी से कमाते थे, जिसमें से अधिकांश अपने पर खर्च कर देते थे। फलस्वरूप मेरा चेहरा निस्तेज था। त्वचा पर हीनता का आवरण चढ़ा था। मेरी माँ की धोती फटी हुई थी। वह दो समय रोटी खाती थी और बचपन के जमाने में बने हुए खून की किन्हीं बूँदों को खर्च करके वर्तमान जीवन का एक दिन जी लेती थी।

चौथी या पांचवीं किसी कक्षा से मेरा नाम कट जाता है और मैं भारतवर्ष के साक्षरों की गिनती में आ जाता हूँ।

मेरे हृदय का विवेक मां को सुखी करना चाहता है। इसी अन्तर्द्वन्द्व में कुछ वर्ष गलियों में, रिक्शेवालों में, गेटकीपरों में काट देता हूँ।

इन गेटकीपरों से मैंने सुलफा पीना सीखा है। उन्होंने आमदनी के तरीके भी बताये। एक केले पर एक पैसा मेरा। सिनेमा के इण्टरवल में मैं केले, चाय, पान, बीड़ी, सिगरेट इत्यादि बेचने लगता हूँ।

सात महीने से मैंने अपने पिता से बातें नहीं की हैं, क्योंकि आखिरी शो समाप्त होने के बाद ही घर पहुंचता हूँ।

जब मैं मात्र चार वर्ष का था, तब एक सुबह पिता जी की गोद में बैठा हुआ था और वे मा से कह रहे थे; "मेरा बेटा हिन्दुस्तान का प्रधान मन्त्री बनेगा।" छह-सात महीने में ही मेरी तरक्की हो गई। मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिनेमा का हैड हॉकर बन गया हूँ।

मेरे कहने के तरीके में अवश्य बहुत-सी त्रुटियाँ रह गई होंगी, क्योंकि अपनी एक त्रुटि तो मैंने ही पकड़ ली। अभी तक आप को अपने पिता जी का नाम नहीं बताया—उनका नाम दीनदयाल है।

सिनेमा भवन में कभी-कभी मैं किसी को कहते सुनता हूँ, यह दीनदयाल का लड़का है। बाप ने शराब में अपनी मट्टी पलीत कर ली। लड़का आवारा होकर केले बेचता है।

मुझे ऐसे व्यक्ति बहुत बुरे लगते हैं।

एक दिन इण्टरवल के समाप्त होते ही सिनेमा भवन के अंधेरे में एक व्यक्ति ने मुझ से पान माँगा। पान देते समय मेरे हाथ से छुट गया और उस व्यक्ति के कपड़े शायद खराब हो गए। उसने मेरे गाल पर एक चांटा भी मार दिया।

मैं भी आत्म-सम्मान रखता हूँ। फलस्वरूप चांटा मारने वालों को बहुत देर तक पीटता रहा। हाल में शोर मच गया। हंगामे की आशंका से हाल की बत्तियाँ जला दी गईं। रोशनी में मैंने देखा कि जिस व्यक्ति को मैं पीट रहा था, उसका नाम दीनदयाल था। उसने शराब पी रखी थी।

['धर्मयुग' में श्री लाडली मोहन]

दो ज्योतिषी

देवगुरु बृहस्पति से एक बार देवाधिपति इन्द्र ने प्रश्न किया—"महाराम! क्या आप ज्योतिष के अनुसार किस व्यक्ति के किस स्थान पर कितने तिल हैं, यह बता सकते हैं?" और इतना कहकर दैत्याचार्य शुक्र का जन्माङ्ग उनके हाथों में थमा दिया।

तत्काल ही जन्माङ्ग देखकर देवगुरु ने उत्तर दिया—"इस जन्माङ्ग वाले व्यक्ति के मुख में २६ तिल होने चाहिएँ।" शीघ्र ही देवराज ने देवगुरु की बात अपुष्ट करने के लिए तपाक से कहा—"लेकिन उनके तो २६ नहीं, ४० तिल हैं।"

अपनी बात को मिथ्या समझ कर देवगुरु क्षण भर को विस्मित-से हो गए। क्षण भर विस्मित होने के उस अवकाश में ही आचार्य शुक्र ने कहा—"महाराज! देवगुरु ठीक ही कह रहे हैं। तिल तो २६ ही हैं, बाकी सब तिलनियाँ हैं।"

आचार्य शुक्र के इस व्यंग्य को देवाधिपति इन्द्र ही नहीं, अपितु सभी सभासद् भली भाँति ताड़ गए और सभी के होठों पर मुस्कान-सी उभर आई। तत्काल ही देवगुरु के हाथों से जन्मकुण्डली छीनकर आचार्य शुक्र के हाथों में थमाते हुए देवाधिपति इन्द्र बोले—"अच्छा तो आप ही बताइए, इस व्यक्ति का रंग गोरा है या काला?"

अपनी ही कुण्डली जानकर आचार्य शुक्र ने तत्क्षण उत्तर दिया—'गोरा!" महाराज इन्द्र ने कहा—लेकिन वह तो काला है। अपने उत्तर पर स्वयं विस्मित हो आचार्य शुक्र भी क्षण भर को कुछ सोचने लगे। अवसर पाते ही देवगुरु बृहस्पति ने सहज भाव से व्यंग्य कसा—महाराज! आचार्य शुक्र भी ठीक ही तो कहते हैं, अधिक तिलों के कारण गोरा व्यक्ति भी काला जान पड़ता है।

महाराज इन्द्र ने हँसते हुए कहा—"तब तो आप दोनों ही दुनिया के किसी भी कोने में कमा-खा सकते हैं।" सारी सभा मारे हँसी के लोट-पोट होगई।

['सहयोगी' में श्री वागीश]

卐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तार—बम्बई—'साहूजैन'
ध्रांगध्रा—'कैमिकल्स'
आरूमुगनेरी—'कैमिकल्स'

टेलीफोन:—बम्बई—२५१२१८-१९-१०
(तीन लाइन)
ध्रांगध्रा—३१ एवं ६७
कयालपटनम—३०

ध्रांगध्रा कैमिकल वर्क्स लिमिटेड

१५ ए - हार्निमन सर्किल

फोर्ट, बम्बई—१

प्रसिद्ध 'हॉर्स शू' छाप कैमिकल्स के निर्माता

सोडा ऐश, सोडा बाईकार्ब, केलशियम क्लोराइड, नमक और इलेक्ट्रोलीटिक कास्टिक सोडा

(९८ प्रतिशत N&OH Purity)

मैनेजिंग एजेण्ट्स—

साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) प्राइवेट लिमिटेड

ध्रांगध्रा (गुजरात राज्य)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

111315

रजिस्टर्ड नं० ए, ७१७

मनोहर और आकर्षक पैकिंग

आपकी बिक्री को बढ़ाता है

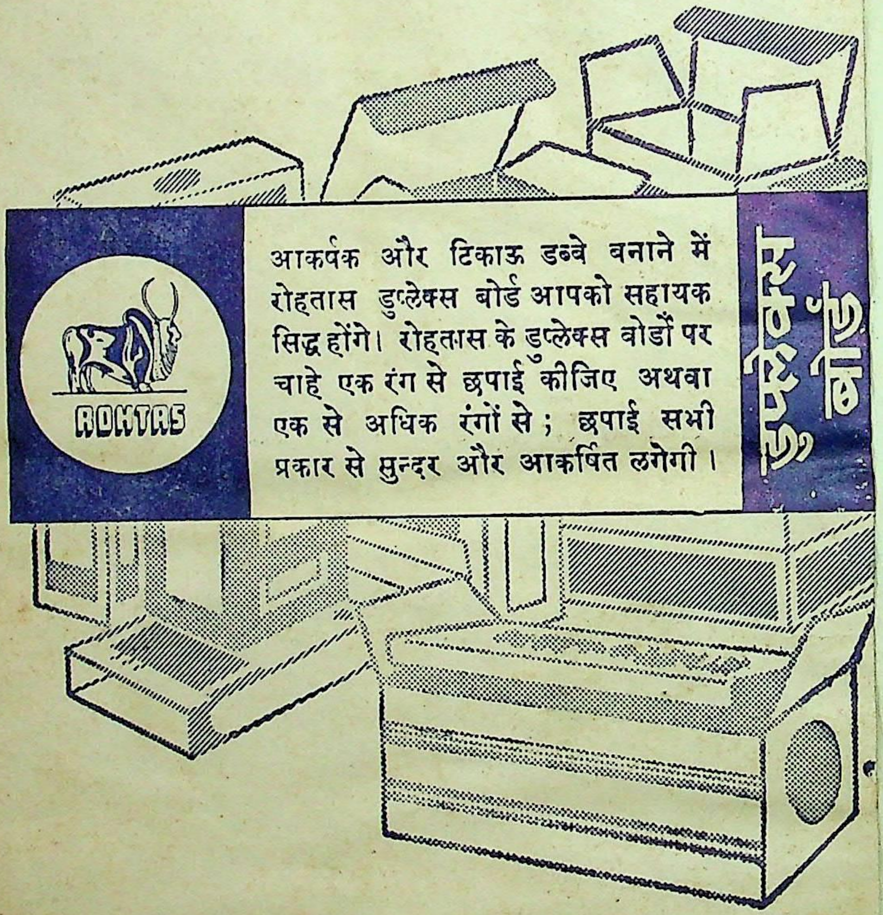

साहू जैन इंडस्ट्रीज़

रोहतास इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड

डालमियानगर, बिहार

देश में कागज और बोर्ड के सब से बड़े निर्मात

मुद्रक—अखिलेश द्वारा विकास प्रिंटिंग वर्क्स, सहारनपुर में मुद्रित-प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

Mothly

Vikas Printing Works, Shaharanpur

1960

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar